दूध-गाछ

देवेन्द्र सत्यार्थी

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

प्रथम संस्करण, १९५८

मूल्य : छः रुपये

प्रकाशक :
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
दिल्ली

मुद्रक :
श्री गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस,
दिल्ली

अम्माँ भी नहीं, बाबुल भी नहीं
खाने को न चावल का दाना
तन पर न रहा कोई बाना

बुझता जाता जीवन - प्रदीप
लो मूक हुआ मीठा गाना
मन-मुरली को जब पहचाना

जीवन-मटकी अब टूट गई
सब दूध गया तब बिखराना
इस दुख पर मनुआ पछताना

जब दूध-गाछ पीछे छूटा
तो कहाँ स्नेह-दर्शन पाना
फिर माँ की डगर बता जाना

मलयालम कथा-शिल्पी
'श्यामलालयम्' के एक गीत का
भावानुवाद

अपने उस महान् गीत के नाम
जो भारतीय संगीत के 'रंगीले रसिया' की चौखट पर
सर पटक कर रह गया !

उपन्यास नहीं, महाकाव्य

१

मैं ऐसे संसार से घृणा किये बिना नहीं रह सकता, जो यह नहीं देखता कि संगीत उसके नपे-तुले ज्ञान और दर्शन से परे है—कि यही वह मदिरा है जो नये विचारों का प्रेरक है, और मैं हूँ सुरादेव, जो मदिरा को क्षमता देता है कि वह लोगों को मग्न बना दे।[1]

—बिथोविन

'दूध-गाछ' में भारतीय संगीत को आधार-चित्र बनाया गया है। बचपन से ही शास्त्रीय संगीत में मेरी रुचि रही है। हमारे गाँव के सरदारों के निवास-स्थान पर जब भी कोई सिद्धहस्त गायक संगीत-गोष्ठी में गाने बैठता, और मैं अपने को श्रोता-मण्डली में पाता, तो संगीत की विशेष जानकारी के बिना भी रस आने लगता। इसे कला का चमत्कार ही कहना होगा। जाने यह कैसी तन्मयता थी, कैसी अनन्यता। गायक हमारी सूझ-बूझ का मार्ग प्रशस्त करता चलता। उन्हीं गोष्ठियों में मुझे सर्वप्रथम राग-रागिनियों के नाम सुनने को मिले।

गाँव से बाहर जाने पर, विशेष रूप से लोकगीत-यात्राओं में अनेक बार शास्त्रीय संगीत की अमर कला-थाती का रसास्वादन करने का

1. Alice M. Diehl, *The Life of Beethoven*, p. 243.

अवसर मिला। हर बार शास्त्रीय संगीत के माध्यम से परम शान्ति का आनन्द लाभ हुआ। कभी आशा की ज्योति दृष्टिगोचर होती, तो कभी वेदना के सात पाताल में उतर जाता, जहाँ आध्यात्मिक तत्त्वकी अनुभूति होते देर न लगती।

मुड़-मुड़कर मन में चाह उठती कि संगीत-मन्दाकिनी के प्रवाह के साथ-साथ चल पड़ूँ, और इस चित्रपट पर एक कथा कहता चला जाऊँ। इसमें संकोच रहा तो यही कि शास्त्रीय संगीत में मात्र निष्ठा रखकर ही कैसे कथा-शिल्प का निर्वाह कर पाऊँगा, जिसका आधार तत्त्व शास्त्रीय संगीत हो।

ऐसे लोगों की बातें भी सुनने को मिलतीं, जिनकी शास्त्रीय संगीत में तनिक भी निष्ठा नहीं थी। ऐसे लोग भी देखे, जो रेडियो की सुई घुमाकर झट दूसरा स्टेशन ढूँढ़ने लगते थे, जहाँ से हल्का-फुलका संगीत आ रहा हो।

२

सन् १९४२ में, जब मैं लाहौर में था, सर्वप्रथम रेडियो खरीदकर लाया, तो लगा कि मौज हो गई। घर बैठे देश-देश का संगीत सुनने का इससे अच्छा उपाय दूसरा न था।

एक रात, जब मैं दत्तचित्त होकर विश्व के महान् संगीतकार बिथोविन की 'नाइन्थ सिम्फोनी' सुन रहा था, सहसा मैंने देखा कि रेडियो बन्द हो गया।

यह पता चलते देर न लगी कि मेरी पत्नी ने हाथ बढ़ाकर रेडियो का स्विच बन्द कर दिया था।

श्रीमतीजी का यह तर्क था, "जो चीज़ समझ में नहीं आती, उसे सुनने से क्या लाभ?" यह सिद्ध करना सहज न था कि मैं इसे समझने की क्षमता रखता हूँ।

मुझे याद है, बिथोविन के सम्बन्ध में मैंने श्रीमतीजी से बहुत-कुछ कह डाला, और फिर बलपूर्वक कहा, "यह थी 'नाइन्थ सिम्फोनी'—बिथोविन की अमर रागिनी।"

मैंने बताया कि बिथोविन ने अपनी अन्तिम वसीयत में ये शब्द लिखे थे :

"जो कोई भी मुसीबत का मारा भाग्यहीन व्यक्ति हो, उसे यह सोचकर धैर्य रखना चाहिए कि मैं उस जैसा ही अभागा और विपत्ति में सहायता करने वाला उसका प्रिय बन्धु और सखा हूँ।"

मैंने यह भी बताया, "बिथोविन सत्तावन वर्ष की आयु में ही चल बसा था, जब रोग उसके रोम-रोम में घर कर गया था। सिर के रूखे-घने बाल सफेद हो गए थे। माथे पर गहरी झुर्रियों ने जाल बुन डाला था। चेहरे का यह हाल था कि ऊपर का मोटा होंठ नीचे के होंठ को ढाँपे रखता था। बेढंगी-सी ठोड़ी और गालों की उभरी हुई हड्डियों ने नाक-नक्शा बुरी तरह बिगाड़ डाला था। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि बिथोविन की आँखों की अद्‌भुत चमक भी दब गई हो।"

मैं देख रहा था, श्रीमती जी को मेरी बातों में तनिक भी रस नहीं आ रहा। मैंने कथा को आगे बढ़ाया, "बिथोविन जीवन-भर विवाह न कर सका। निर्धन, एकाकी, कानों से बहरा।"

श्रीमतीजी ने व्यंग का बाण छोड़ा, "पत्नी होती भी तो वह कौन-सा उसे प्रेम कर सकता था? कलाकारों को तो कला ही प्रिय होती है न!"

"यह बात नहीं!" मैं कथा को बढ़ा ले चला, "२६ मार्च, १८२७ के दिन बिथोविन की मृत्यु हुई। पर २४ मार्च को उसने अपने दो साथियों से कहा था—'तालियाँ बजाओ। शीघ्र ही इस दुःखान्त नाटक का पटाक्षेप होने जा रहा है।"

श्रीमतीजी ने कहा, "मृत्यु तो रुकती नहीं। कलाकार का लिहाज़ भी कैसे कर सकती है मृत्यु।"

मैंने कहा,, "बिथोविन की माँ उसके बाल्यकाल में ही चल बसी थी। पिता को घर की तनिक भी चिन्ता नहीं रहती थी। भाइयों ने सदा बिथोविन से घृणा ही की। अब यह तो बिथोविन का दोष न था कि वह देखने में असुन्दर था। छोटा और स्थूल शरीर तो प्रकृति की देन था। जिस रोग ने बेचारे बिथोविन की श्रवण-शक्ति छीन ली, उसने २६ वर्ष की आयु में ही धावा बोल दिया था। उसका व्यवहार रूखा और अशिष्ट था। इसका बड़ा कारण यही था कि अपनी प्रतिभा और रचना-शक्ति का पूर्ण ज्ञान था, और आलोचकों के मारे उसका सदा नाक में दम रहता था, जो उसके संगीत को नीरस और निरर्थक बताना ही धर्म मान बैठे थे। आज दूसरी बात है। संसार के महान संगीतकारों में बिथोविन का नाम लिया जाता है। वियना में, जहाँ बिथोविन की मृत्यु हुई थी, उसे समाधि देने के लिए बीस हज़ार लोगों का जमघट हो गया था। उसकी जीवनी में यह प्रसंग भी आता है कि मृत्यु के पश्चात उसकी खुली हुई आँखें एक अपरिचित व्यक्ति ने बन्द कर दी थीं।"

यह कहानी श्रीमतीजी को उतनी नीरस नहीं लग रही है, मैं देख रहा था। मैंने बताया, "आज से पन्द्रह वर्ष पहले की बात कहता हूँ। २६ मार्च १९२७ को, यहाँ लाहौर में भी, यूरोप और एशिया के अनेक नगरों के समान ही बिथोविन की मृत्यु-शताब्दी मनाई गई थी, और उस समय बिथोविन की यह 'नाइन्थ सिम्फोनी' भी बजाई गई थी, जिसे तुमने आज रेडियो का स्विच दबाकर बन्द कर दिया।"

श्रीमतीजी बोलीं, "अपराधिनी को क्षमा किया जाय। मैं यह कथा तो नहीं जानती थी।"

मैंने बलपूर्वक कहा, "संगीत का ऐसा ही जादू है। देशी संगीत हो चाहे विदेशी, उसमें देश और जाति के भेद नहीं रहते।"

उस दिन के बाद मुझे कई बार लगा जैसे बिथोविन से मेरा मानसिक परिचय और भी घनिष्ठ हो गया।

'दूध-गाछ' की रचना करते समय जब केरल के अन्तर्गत वर-

कला के नयनाभिराम सागर-तट पर गुरु रुद्रपदम् का कल्पना-चित्र बनाया, तो उसमें बिथोविन की रूप-रेखा का कितना हाथ रहा, यह कैसे कहूँ ?

३

'दूध-गाछ' नाम का भी एक इतिहास है। सन्थाली भाषा में 'तोश्रा' दूध को कहते हैं और गाछ के लिए 'दारे' शब्द चलता है। 'तोश्रा दारे' का सन्थाली प्रयोग ही दूध-गाछ की मूल प्रेरणा है। सन्थाली भाषा में 'तोश्रा-दारे' माँ का प्रतीक है। इस सन्थाली प्रतीक को केरल की कलामयी धरती पर स्थापित करने की जिम्मेदारी मेरी है। मातादेवी की अति पुरातन प्रतिमा मोहेनजोदड़ो से प्राप्त सिन्धु सभ्यता के अवशेषों में विशिष्ट स्थान रखती है। उसके बाद की पुरातत्व सामग्री में मातादेवी कभी पद्माश्री बनकर सामने आती हैं, कभी किसी अन्य ऐसे ही रूप में। 'दूध-गाछ' में मातादेवी अथवा पद्माश्री की मूल प्रेरणा को आगे बढ़ाते हुए कलाकार की सृजन-शक्ति को प्रतीक बनाया गया है।

केरल के साथ मेरा परिचय अठारह वर्ष पुराना है। दो वर्ष पूर्व दोबारा केरल जाने की आवश्यकता हुई, क्योंकि प्रथम परिचय बहुत अधूरा लगा।

'दूध-गाछ' की कहानी केरल और बम्बई के बीच झूलती है। इस में प्रश्न उठाया गया है कि शास्त्रीय संगीत को बहुजन हिताय उपयोग में लाने की दिशा में हम क्या कर रहे हैं ?

मैंने इसे महाकाव्य मानकर लिखा है, भले ही मेरा माध्यम पद्य नहीं, गद्य है। कथा के पीछे गहरा पैठता जाता है आधार-चित्र, जो कला की देन है। करुणा तथा उत्कण्ठा के स्वर विविध, व्यापक और तीव्र हुए बिना नहीं मानते। जीवन की आन्तरिक परतों तथा असंगतियों में कहाँ कितना समझौता चल रहा है ! परम्परा का पालन, मौलिकता

की माँग, संगीत में गुरु-गौरव की प्रतिष्ठा, बहुजन हिताय की पुकार, संगीतकार कला और परम्परा पर दृष्टि रखे या सेठ को स्वामी मानकर कला को रसातल में जाने दे, ऐसे-ऐसे अनेक प्रश्न जहाँ-तहाँ उभरते हैं।

४

पद्य के बारे में मेरी ऐसी धारणा है कि उसकी चरम सीमा वहाँ है, जहाँ वह गद्य के समीप पहुँच जाता है। पद्य गद्य के समीप जाने पर सशक्त बनता है, तो यह भी कह सकते हैं कि गद्य भी पद्य के समीप जाने पर ही सशक्त बनता है। उपन्यास गद्य में लिखा हुआ महाकाव्य है, मैं इस स्वीकृति को लेकर चला हूँ। गद्य को गद्य रखना तो अभीष्ट था ही। फिर भी इसे पद्य के समीप ले जाने का मोह बराबर बना रहा। गद्य एकदम पद्य से जा टकराया, शायद कहीं-कहीं यह स्थिति दिखाई दे। इस दोष से बचने का यत्न करता भी तो कैसे, जब मन में यह बात बैठ गई हो कि मैं उपन्यास नहीं महाकाव्य लिख रहा हूँ।

निष्ठा से सच्ची कला जन्म लेती है, यह मानकर चला हूँ। पर शंका को स्थान ही नहीं मिला, यह कैसे कहूँ?

'दूध-गाछ' की अपनी दुनिया है। मानवीय मूल्यों पर मेरी दृष्टि रही है, फिर भी आपको कहाँ तक सन्तोष मिलेगा, नहीं जानता।

५

शायद आप कहें, 'दूध-गाछ' तो अधूरा है।

शायद आप कहें, बात नहीं बनी।

शायद आप कहें, यह कहाँ का उपन्यास है?

तब मैं विनम्र भाव से यही कहूँगा, इसे एक बार फिर पढ़िए, और अब की बार इसे 'महाकाव्य' मानकर पढ़िए, परखिये।

हो सकता है, दोबारा पढ़ जाने पर भी आपकी यह धारणा बनी ही रहे कि 'दूध-गाछ' तो असमाप्त-सी रचना है। तब मैं कहूँगा—

आइए, हम मिलकर इस युग के महान् चित्रकार पाब्लो पिकासो की इस विचारधारा पर मनन करें :

"...कला साक्षात् मनुष्य है—उसकी भी आत्मा है—

"...विश्व की कोई मशीन कलाकार को उत्पन्न नहीं कर सकती।

"...एक चित्र समाप्त हो सकता है, परन्तु एक महान् चित्र सदा असमाप्त होता है। एक चित्रकार अपने एक चित्र में अपने को समाप्त कर देता है, परन्तु दस वर्ष के पश्चात् कोई अन्य कलाकार नई सम्भावनाएँ देखकर नया चित्र बना सकता है। एक महान् चित्र में सदा एक प्रकार की अपूर्णता रहती है।

"...जहाँ कलाकार समाप्त करता है, दर्शक वहाँ से प्रारम्भ करता है।"[1]

चित्र देखकर जो काम दर्शक को करना होता है, पुस्तक पढ़कर वही काम पाठक को करना होता है।

काव्यात्मक सत्य का अंचल थामे बिना उपन्यासकार ऐतिहासिक चेतना की किसी मंज़िल पर नहीं पहुँच पाता। कवि-कर्म अथवा कथा-शिल्प पर मोरिएक (Mauriac) की बात ठीक उतरती है : "हम कभी वह पुस्तक नहीं लिख पाते जिसकी हम इच्छा करते हैं, कृति हमें वही प्राप्त होती है जिसके हम योग्य होते हैं।"

'दूध-गाछ' को आप एक उपन्यास ही मानें, तो मुझे आपत्ति नहीं होगी। इसमें यदि आपको जहाँ-तहाँ अधूरे-से चित्र नजर आएँ और आपकी कल्पना अथवा सूझ-बूझ उन्हें आगे ले चले, तो मेरा अहोभाग्य।

प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार जब दोहद के अवसर पर कोई सुन्दरी अशोक वृक्ष के मूल पर पदाघात करती थी तो उसकी डाली-डाली लाल-लाल फूलों से लद जाती थी। पाठक का सौन्दर्य-बोध 'दूध-

---

१. पाब्लो पिकासो, 'कला का मूल्य', 'साहित्य परिचय', [सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद] दिसम्बर १९५५ से उद्धृत।

गाछ' में नूतन सम्भावना और उपलब्धि के फूल खिलायेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

सुपुत्री कविता वसुमती का योग-दान निरन्तर उपलब्ध रहा, जिसके सहारे यह 'दूध-गाछ' पनप सका।

सर्वश्री राजेन्द्रसिंह बेदी, बलराज साहनी, रामचन्द्र शर्मा 'महारथी' क्षेमचन्द्र 'सुमन', युगजीत नवलपुरी, ठाकुर पुँछी और मलयालम कथा-शिल्पी 'श्यामलालयम्' का आभारी हूँ, जिनके मूल्यवान सुझावों से 'दूध-गाछ' में प्राण-प्रतिष्ठा हो सकी।

—देवेन्द्र सत्यार्थी

'कल्पना'
५-सी/४६, रोहतक रोड, नई दिल्ली
१५ मई, १९५८

दूध-गाछ

माँ ही नहीं, कलाकार भी दूध-
गाछ है। अनुभूति के लिए
चिरन्तन सत्य को भी प्रसव-
वेदना तो सहनी ही पड़ती है।
पुरानी सूक्ति है : हर समय,
हर जगह उपस्थित नहीं रह
सकते थे भगवान्, इसीलिए
उन्होंने माताएँ बनाईं। माँ ही
महान् है। शिशु हो चाहे
कलाकृति, दोनों को ही प्यार-
दुलार चाहिए। कलाकार को
माँ बनना ही पड़ता है।

दो परछाइयाँ

एक

"भीतर जाकर रेल-बाबू से पूछो, गाड़ी आने में कितनी देर है।"

एक पचास-वर्षीय विशालकाय पुरुष ने घुटे सिर पर मुट्ठी-भर मोटी और दो बित्ता लम्बी शिखा को झटका देते हुए कहा। "अभी पूछ कर आता हूँ, गुरुदेव!" कहते हुए एक युवक लम्बे घुँघराले बालों में हाथ से कंघी करता टिकट-घर की ओर चल दिया।

वयोवृद्ध पुरुष विचारधारा में खो गया :

यह है वरकला—त्रिवेन्द्रम् से तीस मील उत्तर और कोइलोन से चौदह मील दक्षिण। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक उत्तर भारत से आने वाले यात्रियों के लिए एर्णाकुलम् से कोइलोन तक जल-मार्ग ही सुगम था। अब तो रेल का सुख है। तिन्नावेली से कोइलोन तक पाँच सुरंगों में से होकर गुज़रती है रेलगाड़ी। एक सुरंग दो हज़ार आठ सौ फुट लम्बी है। पाषाण की कठोर विराट् दीवार से रास्ता पा लेना कम जोखिम का काम नहीं था। पीछे कोइलोन से त्रिवेन्द्रम् तक भी रेल-मार्ग बन गया। मलयाचल अथवा मलयगिरि के नयनाभिराम दृश्य देखते और मन्द-सुरभित मलयानिल का आनन्द लेते यात्री वरकला धाम पहुँचते हैं।

जनार्दन स्वामी के मन्दिर के कारण वरकला का एक नाम जनार्दन-पुरम् है। वरकला धाम को उत्तर भारत के यात्री 'दक्षिण काशी' भी कहते हैं। त्रिवेन्द्रम् में पद्मनाभ के मन्दिर का माहात्म्य है। नागरकोइल

और चिदम्बरम् के मन्दिर भी दर्शनीय हैं। मदुरा के मीनाक्षी मन्दिर का सहस्र-स्तम्भ-मण्डप और कुम्भकोणम् के रामस्वामी मन्दिर की कला अद्वितीय है। दक्षिण में कन्याकुमारी की यात्रा तो और भी आवश्यक है। कन्याकुमारी में धरती के अन्तिम छोर पर हम भारत-माता के चरणों की कल्पना करते हैं। पूर्व सागर, पश्चिम सागर और हिन्द-सागर का पावन संगम ! सागर से सूर्य उदय होता है और इसी में लय हो जाता है।

भारत-माता के चरण-प्रान्त में दक्षिणाभिमुख यात्री अपने सम्मुख दक्षिण ध्रुव तक सागर के अनन्त विस्तार की कल्पना में खो जाता है, पीछे की दिशा में उत्तर ध्रुव तक विपुला-विजयन्ती वसुन्धरा का अखण्ड राज्य उसकी कल्पना को छू-छू जाता है।

वरकला आये बिना गति नहीं। वैसे भी हमारा वरकला दर्शनीय है।

युवक पता लाया, गाड़ी एक घण्टा लेट है। पूस के कुहासे में दूर की पहाड़ियाँ खो गई थीं। थोड़ी दूर पर खड़े व्यक्ति भी छाया-चित्र-से लगते थे।

"कुछ देर हो गई, गुरुदेव !" कहते हुए गंजे सिर वाला एक अधेड़ आयु का व्यक्ति पास आकर युवक के घुँघराले बालों पर प्यार से हाथ फेरने लगा, "कहो, शंख ! मौज हो जायगी अब तो, गोबिन्दन आ रहा है।"

"बाल्य-काल के मित्र किसे प्रिय नहीं होते ?" वयोवृद्ध पुरुष ने कहा, "गाड़ी एक घण्टा लेट ही सही। भगवान् से प्रार्थना करो, गोबिन्दन इस गाड़ी से अवश्य उतरे।" और फिर कुहासे में लुप्त सूर्य की ओर हाथ उठाकर बोले, "सूर्य भगवान् ! नित-नित दूर के यात्री यहाँ देव-दर्शन को आते हैं। आज तो गोबिन्दन ही देखने को मिल जाय। मैं उसे फिर से शिक्षा दूँगा—मातृ-देवो भव, पितृ-देवो भव, आचार्य-देवो भव !"

"और यदि आज भी न आया गोबिन्दन ?" गंजे सिर वाला व्यक्ति हँस पड़ा।

"ऐसा मत बोलो !" युवक चुप न रह सका ।

इतने में स्टेशन के विश्राम-घर की ओर से भिखारी-बालकों का गीत सुनाई देने लगा :

अम्मायुम् एनी क्किल्ला
अच्छनुम् एनी क्किल्ला
उण्मानुम् उड्क्कानुम् वलियुमिल्ला
[न माता है,
न पिता है,
न अन्न है, न वस्त्र !]
मङुन्नु जीवनालम्
मौनमाय तीर्न्निडुन्नु
मन्मनो मुरली तन् मधुरगानम्
[बुझ-बुझ जाती है जीवन-बाती
मौन हो चला,
मन-मुरली का मधुर गान !]
जीविता चाष कत्तिन
चिल्लुकल तकर्न्नता
क्षीरत्तिल कणिक कल किदप्पितेड्डुम्
[जीवन की यह टूटी मटकी
और दूध की बूँदें छिटकीं
इधर-उधर वे बिखर गईं ।]
एड्डेन्टे क्षीर तरु ?
एड्डेन्टे क्षीर तरु ?
अड्डोट्ट पोकुवान काणिच्चालुम्
[कहाँ अरे वह दूध-गाछ ?
कहाँ अरे वह दूध-गाछ ?
मुझे वहाँ जाने दो, मार्ग दिखाओ !]

पास से किसी की आवाज़ आई, "वह रहे संगीताचार्य रुद्रपदम् और उनका शिष्य शंखधरन, जो मूर्तिकार का पुत्र होकर भी गुरुदेव से संगीत सीख रहा है।"

वयोवृद्ध व्यक्ति ने प्रशंसा-सूचक दृष्टि से उधर देखा जिधर से यह आवाज़ आ रही थी; पर बात करने वाले व्यक्ति शायद गाड़ी के एक घण्टा लेट होने की सूचना पाकर पास के किसी रेस्तराँ में कॉफ़ी पीने चले गये थे। मैं हूँ संगीताचार्य रुद्रपदम्! सब मुझे जानते हैं। मेरे साथ मेरे शिष्य शंख को भी पहचानने लगे हैं। यह सोचकर रुद्रपदम् की आँखें चमक उठीं।

गंजे सिर वाला व्यक्ति था वरकला का नया डाक-बाबू देशमुख। उसकी मातृभाषा थी मराठी। वह बोला, "क्या यह बात ठीक है गुरुदेव, कि सर्वाधिक मलयालम ही संस्कृत-प्रधान है?"

हाँ में सिर हिलाते समय रुद्रपदम् की मोटी-लम्बी शिखा मौन-अटल अपनी जगह जमी रही, पर जब मन में आवेश आया, तो झूमते सिर पर शिखा भी नाच उठी।

"संस्कृत तो देव-भाषा है," रुद्रपदम् मुस्कराये और झूम-झूमकर उच्च स्वर में गायन करने लगे :

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥

"हमारे पल्ले तो कुछ नहीं पड़ा," देशमुख जैसे अभाव में मुस्करा पड़ा।

रुद्रपदम् ने समझाया कि 'मार्कण्डेय पुराण' में आया है यह श्लोक, जिसमें मलय पर्वत की गिनती सात कुल-पर्वतों में करने का उल्लेख है। 'मलै' पर्वत-वाची तमिल शब्द है, पर देव-भाषा में वह एक विशेष पर्वत का नाम हो गया। नालमलै से एलामलै तक सभी पर्वत मिलकर मलय पर्वत को रूप देते हैं। महानदी, गोदावरी और वेणगंगा के बीच की पूर्वी पर्वत-श्रृङ्खला का बड़ा अंश किसी समय महेन्द्रगिरि के नाम से

प्रसिद्ध था, और उसमें अब भी उस नाम का एक पर्वत है। महेन्द्रगिरि से मलय होते हुए हम सह्याद्रि-श्रेणी की ओर घूम जाते हैं। चौथे पर्वत शुक्तिमान् की भले ही पूरी पहचान नहीं हो पाई, पर इसे गोलकुण्डा का पठार समझना चाहिए, क्योंकि इन सात पर्वतों के नाम परिक्रमा के क्रम में आये हैं। सह्याद्रि के उत्तरी छोर से पूर्व दिशा में मिलता हुआ ऋक्ष पर्वत है। उसके पूर्वी छोर से उत्तर में हैं विन्ध्य और पारियात्र। रुद्रपदम् मेघ-गम्भीर स्वर में बोले, "ये सातों पर्वत हुए हमारे देश के भीतर के कुल-पर्वत ! हिमालय और अन्य 'मर्यादा-पर्वतों' से ये भिन्न हैं। कुलगिरि और मर्यादागिरि के विवेचन के लिए देखिए 'श्रीमद्भागवत' ! यह सब देव-भाषा का प्रसाद है !"

"संस्कृत देवताओं की भाषा है, तो क्या प्राकृत चोरों की ?" देशमुख हँस पड़ा, "गुरुदेव, ये मेरे शब्द नहीं। पन्द्रहवीं शताब्दी में मराठी सन्त-कवि एकनाथ ने ऐसा ही प्रश्न किया था।"

रुद्रपदम् ने देशमुख का स्वभाव समझ लिया था। दिन-भर तो देशमुख को डाक-घर के कार्य से अवकाश न मिलता, पर साँझ-सवेरे भेंट हो जाती, तो वह रुद्रपदम् को छेड़ने से न चूकता।

हाथ की घड़ी में समय देखते हुए देशमुख हँस पड़ा, "सात पर्वतों की परिक्रमा में ही आपने सात मिनट खो दिए और वे बेचारे भिखारी-बालक गला फाड़-फाड़कर गाते रहे। आपको तो भला क्या रस आया होगा, गुरुदेव !"

शंखधरन ने अपनी जेब से एक कागज़ निकालकर दिखाते हुए कहा, "वह गीत मुझे अच्छा लगा; मैंने उसे उतार लिया।"

"यह तो तुमने बहुत अच्छा किया, शंख !" देशमुख उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरता रहा।

रुद्रपदम् बोले, "यह सदा याद रखो शंख, ब्रह्मा से भरत मुनि ने सीखी संगीत-विद्या, और उन्होंने आगे यह विद्या हमें दी !"

"शास्त्रीय संगीत देवताओं से आया, तो क्या लोक-संगीत चोरों

से ?" देशमुख बाण छोड़ हँस दिया ।

रुद्रपदम् बोले, "यह मैंने कब कहा ?"

शंखधरन दूध-गाछ वाला गीत गुनगुनाने लगा ।

"शाबाश !" देशमुख ने शंख की पीठ पर थपकी देते हुए कहा, "गीत की धुन तुमने ठीक पकड़ ली । शास्त्रीय संगीत में मेरी निष्ठा नहीं । मैं तो कहता हूँ कि शास्त्रीय संगीत से हमारे डाक-घर की मुहर ही अच्छी है । हम तो प्रतिदिन इस पर नई तिथि डाल देते हैं ।"

रुद्रपदम् ने मस्तक पर त्योरी न आने दी । मेघ-गम्भीर स्वर में बोले, "हमारी संगीत-विद्या सामवेद जितनी ही प्राचीन है । यह भी कहा गया है—भले ही संगीत के स्रष्टा ब्रह्मा हैं, पर उसके पुण्य-सम्पर्क से संसार को परिचित कराने का श्रेय महादेव को है । एक स्थल पर यह उल्लेख भी आया है—संगीत के आदि-स्रष्टा स्वयं महादेव ही थे । उत्तर भारतीय परम्परा के अनुसार महादेव के संरक्षण में हैं छः राग—भैरव, मालकोष, हिण्डोल, दीपक, मेघ और श्री । आरम्भ में यही छः राग थे, और तीन रागिनियाँ थीं—टोडी, असावरी और रामकली । फिर तो हमारे पुरखों के हाथों में अनेक राग-रागिनियों के रूप निखरे । दक्षिण में संगीत-विद्या का प्रसार हुआ । कर्णाटकी संगीत का उल्लेख स्वयं भरत मुनि ने अपने 'नाट्य-शास्त्र' में किया है ।" और फिर उन्होंने शंखधरन की ओर देखकर कहा, "जो विद्या तुम सीख रहे हो शंख, उसका माहात्म्य भी तुम्हें साथ-साथ समझना चाहिए । हमारे परिवार में बीस पीढ़ियों से संगीत-साधना चली आती है । गोबिन्दन इस साधना को बीच से छोड़कर भाग गया । वह जहाँ से आरम्भ करेगा, तुम उससे बहुत आगे हो । बम्बई में उसने पाँच बरस व्यर्थ ही गँवा दिए होंगे । आये तो सही, मैं उसे समझा लूँगा । और तुम भी समझ लो यह बात । पुरानी सूक्ति है—मनुष्य को यह सोचकर कार्य करना चाहिए कि मृत्यु ने उसके सिर के बाल पकड़ रखे हैं ।"

"बाल या शिखा ?" देशमुख हँस पड़ा । 'कुरुमुलकु' (काली मिर्च)

तो केरल की ही उपज है। फिर इसे खाते समय सी-सी क्यों ?"

"तुम्हारा व्यंग्य अब मैं सह सकता हूँ !" रुद्रपदम् मुस्कराये, "अब मैं इसे दोशे में डाले गए मसाले से अधिक नहीं समझता।"

"छोटा-सा वरकला पाँच-छः मील के घेरे में फैला पड़ा है, गुरुदेव !"

"अच्छा तो यहीं से पेंशन पाना ! वरकला में जो भी एक बार आ गया, यहीं का हो रहा। बीस पीढ़ियों से हमारा परिवार यहाँ आ बसा। कहाँ कुम्भकोणम् और कहाँ वरकला ! घर में अब भी हम तमिल ही बोलते हैं, पर उस पर कहीं-कहीं मलयालम की छाप लग जाती है।"

"गोबिन्दन के नाम को ही लो, गुरुदेव ! यह भी तो केरलीय परम्परा में है। तमिलनाड की परम्परा पालते तो गोबिन्दम् होता। और देखिए गोबिन्दन लौटकर आ रहा है। पिता को यह अधिकार नहीं कि पुत्र को अपने ही रास्ते पर चलाये। शंखधरन मूर्तिकार का पुत्र होकर संगीताचार्य बनने जा रहा है, तो गोविन्दन भी चाहे तो मूर्तिकार बन सकता है।"

कुहासा और भी सघन हो गया था। रुद्रपदम् कहना चाहते थे कि यह पूस तो बहुत भला है, अपने साथ कुहासे की गठरियाँ बाँधकर लाता है; जब चाहता है गठरी खोलकर कुहासा बिखेर देता है।

गाड़ी आने में अब अधिक देर न थी। बहुत से यात्री जमा हो गए थे, जो त्रिवेन्द्रम् की ओर जा रहे थे।

रुद्रपदम् बोले, "देखो शंख ! मैं तो एक दिन न बीज रहूँगा न फूल। हाँ, मैं खाद बन जाऊँगा। तब मैं कुछ उगा सकूँगा। यही गुरु-शिष्य परम्परा है। धीरे-धीरे गुरु लुप्त होकर खाद बन जाता है। और वह बात सदा याद रखो, शंख ! वही कि मृत्यु ने तुम्हारे सिर के बाल पकड़ रखे हैं और मरने से पहले तुम्हें अपनी साधना को अवश्य पूर्ण कर लेना है।"

"अभी से मृत्यु की बात इसके कान में क्यों डालते हो, गुरुदेव !"

देशमुख बोल उठा। "अभी तो शंख बच्चा है, कोमल फूल है। वैसे बहुत समझदार है। भिखारी-बालकों का दूध-गाछ वाला गीत कागज़ पर उतारकर तो इसने सुरुचि दिखाई।"

"इसका भविष्य उज्ज्वल है," रुद्रपदम् मुस्कराये, "देखो शंख, पहला गुरु है माता, दूसरा गुरु पिता, तीसरा गुरु आचार्य !"

"यह सब तो गोबिन्दन को समझाना !" देशमुख मुस्कराता हुआ बोला, "जो पहले ही समझदार हैं, उसे क्या समझा रहे हैं ? पर एक बात है। गोबिन्दन बम्बई में पाँच बरस बिताकर घर आ रहा है। बम्बई भी बहुत-कुछ सिखाती है। मेरी तो जन्म-भूमि है बम्बई। मैं बम्बई-छाप का चमत्कार जानता हूँ।"

रुद्रपदम् बोले, "गोबिन्दन को यह समझाने में तो तुम मेरी सहायता कर सकते हो, देशमुख बाबू, कि जब बीस पीढ़ियों से हमारे परिवार में संगीत-साधना चली आ रही है, तो उसे इक्कीसवीं पीढ़ी में भी अवश्य चलना चाहिए !"

"पहले वह आये तो सही," देशमुख ने चुटकी ली, "क्या ख़बर, इस बार फिर वह चकमा दे जाय !"

गाड़ी के पहियों की घरघराहट गूँज रही थी।

गाड़ी प्लेटफार्म पर रुकी। कुहासे में गाड़ी से उतरते यात्रियों को पहचान सकना सहज न था।

रुद्रपदम् बोले, "वह इस गाड़ी से न उतरा तो मुझसे कहीं अधिक गोबिन्दन की माँ को ही दुःख होगा !"

इतने में एक युवक आकर रुद्रपदम् के चरणों पर झुक गया।

"तुम आ गए, बेटा !" रुद्रपदम् ने गोबिन्दन को छाती से लगा लिया।

फिर गोबिन्दन ने शंख को गले लगाया।

रुद्रपदम् बोले, "इनके भी चरण छुओ, बेटा ! यह हैं हमारे नये डाकबाबू श्री देशमुख !"

गोबिन्दन ने झट देशमुख के चरण छू लिये।

"तुम्हारी शिखा कहाँ गई, गोबिन्दन ?" शंख चुप न रह सका।

"वह बम्बई में रह गई," गोबिन्दन हँस दिया, "मेरी शिखा बोली, मैं बम्बई में रहूँगी।"

मुण्डु (वेष्टी) के स्थान पर गोबिन्दन ने पेण्ट पहन रखी थी। उसके सिर पर नई तराश के घुँघराले बाल दिखाई दे रहे थे। उसका यह रूप देखकर रुद्रपदम् के मन पर चोट लगी, पर वे कुछ न बोले।

देशमुख बोला, "मैं तुम्हारे परिवार की यश-गाथा सुन चुका हूँ, गोबिन्दन ! तुम्हारे दादा थे कल्याण सुन्दरम्, जो बहुत बड़े संगीताचार्य थे; लंका तक उनकी धाक थी। तुम्हारे परदादा थे अनन्तशयनम्, जिन्होंने दिग्विजय प्राप्त की थी और उत्तर भारत से उन्हें वर्ष में तीन बार निमन्त्रण आता था। बीस पीढ़ियों से तुम्हारे परिवार में संगीत-साधना चली आती है।"

"मैं तो इसे इसी की इच्छा पर छोड़ता हूँ।" रुद्रपदम् मुस्कराये, "यह चाहे तो मूर्तिकार बने, चाहे कोई और काम सीखे। पढ़ना चाहे पढ़े। बस अपनी माँ की आँखों से ओझल न हो !" और फिर वह कुहासे में लुप्त सूर्य की ओर हाथ उठाकर बोले, "मेरे गोबिन्दन को सुमति दो, भगवान् ! यह परिवार के यश को आगे बढ़ाए। मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव !"

देशमुख ने गोबिन्दन की पीठ पर थपकी देते हुए कहा, "गोबिन्दन तो पहले से समझदार होकर आया होगा। बम्बई किसी को व्यर्थ ही अपने पास नहीं रखती। बम्बई बहुत-कुछ सिखाकर वापस भेजती है।" और फिर उसने आत्मविभोर रुद्रपदम् की आँखों में झाँककर कहा, "हम अपनी फीस अवश्य लेंगे, गुरुदेव ! कहो तो गोबिन्दन के कान में वह मन्त्र फूँक दें कि वह बम्बई जाने का नाम न ले, और कहो तो दूसरा ही मन्त्र फूँक दें कि वह वरकला में तीन दिन भी न काटे और फिर बम्बई का टिकट कटा ले। कहिये, गुरुदेव ! क्या इच्छा

है ?" और फिर उसने गोबिन्दन की ओर देखकर व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहा, "मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव ! देखो गोविन्दन ! तुम्हारी माँ हैं श्रीमती अन्नपूर्णा रुद्रपदम्, जिनसे तुम शीघ्र ही मिलोगे, पिता हैं गुरुदेव रुद्रपदम् जो तुम्हारे गुरु न बन सके। और तुम्हारा आचार्य है डाकबाबू देशमुख, जो तुम्हें अपने जैसा ही बाबू बना सकता है !"

शंख और गोविन्दन एक साथ हँस पड़े और गलबहियाँ डाले वे कुहासे की सघन चादर में लुकते-छिपते प्लेटफार्म से बाहर निकल गए।

माँ ही नहीं, कलाकार भी दूध-गाछ है। अनुभूति के लिए चिरन्तन सत्य को भी प्रसव-वेदना तो सहनी ही पड़ती है। पुरानी सूक्ति है : हर समय, हर जगह उपस्थित नहीं रह सकते थे भगवान्, इसीलिए उन्होंने माताएँ बनाईं। माँ ही महान् है। शिशु हो चाहे कला-कृति, दोनों को ही प्यार-दुलार चाहिए। कलाकार को माँ बनना ही पड़ता है। इसी भाव-भूमि पर वरकला के संगीताचार्य रुद्रपदम् के पैर टिके हैं।

बहुत दूर से उठती है सागर की बड़ी लहर, जो माँ है; उससे छोटी लहर, भाई; और उससे भी छोटी लहर, परम सुन्दरी बहन। तीनों लहरें एक-दूसरे का निरन्तर पीछा कर रही हैं। रुद्रपदम् सब जानते हैं, सब समझते हैं। सागर की लहरों का यह क्रम उन्हें पुरानी कथा का स्मरण करा जाता है।

परशुराम ने आवेश में आकर सागर में अपना परशु फेंक दिया था। जितनी दूर परशु गिरा, वहाँ तक केरल की धरती निकल आई। केरल की जन्म-कथा पर लोग भले ही विश्वास न करें, यह तो सभी मानते हैं कि वरकला की धरती सागर की देन है। अन्नपूर्णा, स्नेहमयी स्वर्ण-मेखला : वरकला की गेरुआ धरती !

वरकला का एक-न-एक बालक सागर-तट पर रेत के घरौंदे बनाते समय सागर-संगीत की कुछ-न-कुछ थाह पाता आया है और बड़ा होकर संगीत-मार्ग पर चल पड़ा है। इसी प्रक्रिया द्वारा रुद्रपदम् संगीताचार्य बने;

इसी ने उनके गुरु कल्याण सुन्दरम् को संगीताचार्य बनाया; और इसी ने कल्याण सुन्दरम् के गुरु अनन्तशयनम् को संगीत की दीक्षा दी थी।

रुद्रपदम् के घुटे सिर पर मुट्ठी-भर मोटी और दो बित्ता लम्बी शिखा बात करते समय हिलती-डोलती रहती है। ऊँची-लम्बी-नुकीली नाक एक बार देखकर भुलाई नहीं जा सकती। ऊँचा-भरा शरीर, छः फुट से निकलता हुआ। चलते हैं तो मानो धरती उनके नीचे दबी जा रही हो। मेघ-गम्भीर स्वर मानो चराचर की अनुभूति से अनुप्राणित। कमर में 'मुण्डु'। कन्धों पर बड़े अनौपचारिक ढंग से डाला हुआ पटका। कुर्ता पहनने का ध्यान तो उसी समय आता है, जब सभा में जाना हो।

कला में कोई ऐसा प्रसंग नहीं, जिसमें रुद्रपदम् रस न ले सकते हों अथवा जिस पर वे एक मेधावी के समान कुछ बोल न सकते हों। निर्भयता उनकी अभिरुचि है, परम्परा और अनुभूति का सन्तुलन उनकी आस्था, और कला में चिरन्तन सत्य का मूल्याङ्कन उनका महा-व्रत।

जनार्दन स्वामी के मन्दिर के दक्षिण में है ब्राह्मण-पाड़ा, जहाँ रुद्रपदम् का पुश्तैनी घर है, पर जब से त्रिवांकुर-नरेश ने रुद्रपदम् के संगीत पर मुग्ध होकर मन्दिर के उत्तर में वरकला की पहाड़ी पर स्थित अपने प्रासाद को संगीत-विद्यालय में परिणत कर दिया है और उन्हें वहाँ का आचार्य बनाकर वहीं उनके रहने की भी व्यवस्था कर दी है, रुद्रपदम् ने अपना घर किराये पर उठा रखा है।

जनार्दन स्वामी के मन्दिर और चक्रतीर्थ-सरोवर के बीच होता हुआ रास्ता सागर-तट तक गया है। यह है पाप-नाशा। यहाँ स्नान करके सब पाप कट जाते हैं। मन्दिर से पाप-नाशा को जाने वाले रास्ते पर दाएँ हाथ सागर-तट से सटा है धरती का धानी आँचल। इसे देखकर ही कवि ने धरती को सागर-मेखला कहा होगा।

मन्दिर के पूर्व-द्वार के दोनों ओर चला गया है मन्दिर-बाज़ार। यहाँ की दुकानें यात्रियों का मुँह देखती हैं।

मन्दिर-बाज़ार से एक रास्ता पूर्व में धरती के धानी आँचल के साथ

घूमता-घामता वरकला रेलवे स्टेशन को जा छूता है।

जहाँ मन्दिर बाज़ार उत्तर में समाप्त होता है, चक्रतीर्थ सरोवर के उत्तर-पूर्वी कोने से बल खाता मार्ग संगीत-विद्यालय तक पहुँचता है, जहाँ वाटिका की चारदीवारी पर कुहनियाँ टेके रुद्रपदम् जब चाहे सागर का दर्शन-लाभ कर सकते हैं।

मन्दिर के दक्षिण में, जहाँ बाज़ार पीछे रह जाता है, मार्ग चक्कर काटता राजकीय विद्यालय के सामने से होकर गगन चौक में पहुँचता है। वहाँ खड़े होकर पश्चिम की ओर देखें तो सागर के साथ-साथ सघन वृक्षावली दीखती है। ध्यान से देखें तो सागर की सूक्ष्म-सी रेखा भी झलक दिखा जाती है। गगन चौक में खड़े होकर, हर प्रकार के शब्द के लिए अपने कान बन्द करके, रुद्रपदम् दूर से आते सागर का जय-घोष सुनने लगते हैं, जैसे वह अपने शक्तिशाली संगीत के लिए एक सच्चे कलाकार के समान उस क्षण का आह्वान कर रहे हों, जब स्वर-शक्ति अपने प्रभाव से एक नूतन इतिहास लिपिबद्ध कर सकेगी—उस युग का इतिहास, जब धरती ने सागर में से बाहर आना आरम्भ किया।

गगन चौक से एक रास्ता रेलवे स्टेशन को जाता है। उस रास्ते पर चौक से आगे तक बड़ी दुकानें और रेस्तराँ हैं। इनमें नव-युग की चमक-दमक है, क्योंकि इन पर बाहर से आये यात्रियों के अतिरिक्त वरकला के दानी-मानी परिवारों का वरद-हस्त रहता है।

जिन यात्रियों को वापस जाने की जल्दी होती है, वे गगन चौक के किसी रेस्तराँ से कॉफ़ी पीकर और इडली-दोशा खाकर झट गाड़ी का समय पूछते हैं, और स्टेशन की ओर चल देते हैं; पर जो बहुत जल्दी में नहीं होते, वे गगन चौक से थोड़ा दक्षिण में रेलवे लाइन के उस पार शिवगिरि मठ की यात्रा को चल पड़ते हैं, जहाँ ईल्वा लोगों के गुरु नारायण स्वामी की समाधि है।

गगन चौक से एक रास्ता वरकला के पर्वतीय आँचल के काजू-वन को जाता है। रुद्रपदम् प्रत्येक यात्री को यह सलाह देते हैं कि वह

नारायण स्वामी की समाधि से लौटकर इस काजू-वन के सौन्दर्य का आनन्द भी अवश्य ले।

किसी-किसी यात्री को तो रुद्रपदम् अपने साथ ले जाकर वरकला का काजू-वन दिखाते हैं। यहीं से होकर चिलाक्कोर सागर-तट पर पहुँचते हैं। वहाँ वरकला का मछुआ-टोला है। चिलाक्कोर पहुँचकर लगता है जैसे संसार का सबसे बड़ा धन्धा मछली मारना हो। एक नाव सागर के भीतर जा रही है। एक नाव अभी-अभी आई है। बड़ी-बड़ी मछलियाँ उतारी जा रही हैं। दूर तक मछलियाँ सूखने के लिए फैला रखी हैं। न्यूनतम वेश-भूषा अर्थात् एक लंगोटी, प्रत्येक संघर्ष से जूझ सकने वाली बलिष्ठ काया, और विशेष रूप से उनकी बातचीत से, जिसमें ज्वार का-सा द्रुत वेग होता है, सचमुच ऐसा लगता है कि ये मछुए सच्चे सागर-पुत्र हैं।

चिलाक्कोर के मछुओं के लिए कभी सागर-मन्थन नहीं हुआ। उनके लिए सागर से न कभी अमृत निकला न विष। सागर से निकलती हैं मछलियाँ, जो वरकला के पाँच हज़ार प्राणियों में से इन दो हज़ार मछुओं का जीवन हैं।

इन सागर-पुत्रों को सागर-संगीत प्रिय है।

रुद्रपदम् यात्रियों को यह बताने में नहीं सकुचाते कि चिलाक्कोर का वातावरण इन सूख रही मछलियों की हीक से भरा रहता है तो क्या, चाँदनी रात में इन सागर-पुत्रों की धुन सुनने वे इधर आ निकलते हैं।

सागर-पुत्रों के मुखिया हैं मुक्कुवन मुत्तु, जिन्हें हर कोई मुत्तु बाबा कहता है।

"एन्तु वर्तमानम् मुत्तु अच्छण्टच्छन् ?" [क्या समाचार, मुत्तु बाबा ?] रुद्रपदम् के मुख से यह अभिवादन सुनते ही मुत्तु बाबा खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। मुत्तु बाबा ने भी कई भाषाओं के कुछ वाक्य स्मरण कर रखे हैं। रुद्रपदम् के साथ वाला यात्री आन्ध्र देश का हो तो मुत्तु बाबा उसी की भाषा में पूछते हैं, "एमण्डा, एमी समाचारम् ? [क्यों जी, क्या

समाचार ?] यात्री तमिल-भाषी हो तो मुत्तु बाबा पूछते हैं,"एन्नय्या, एन्न समाचारम् ?" [क्या जी, क्या समाचार ?] यात्री कन्नड़-भाषी हो, तो भी मुत्तु बाबा को कुछ कठिनाई नहीं होती, "एनु समाचार ?" [क्या समाचार ?] और उत्तर भारत के यात्रियों की आँखों में मानो सागर-गम्भीर दृष्टि से झाँकते हुए "क्या समाचार ?" अथवा "क्या खबर ?" वायु में उछालते हैं।

और रुद्रपदम् यात्री की उपस्थिति को भूलते हुए-से वरकला के वर्णन में विभोर हो जाते हैं :

"माँ की ममतामयी गोद-सी फैली है वरकला की गेरुआ धरती।

"नारियल-गाछ माँ के आँचल पर हरी बुँदकियाँ बने हैं, सागर की लहरें अपने क्षण-क्षण चुम्बन से उस पर नीली गोट टाँक जाती हैं।

"मुझे वरकला प्रिय है, क्योंकि लालिमा, हरीतिमा और नीलिमा के बीच से झाँक रहा है, सगर्व अपनी युग-युग की परम्परा में दीप्त सुनहरा मन्दिर-कलश।

"ये चारों रंग धरती पर बिखरकर एक नूतन रंग को जन्म देते हैं, जिसके सम्मुख मानव अनायास नतमस्तक हो जाता है।

"मैं उस दिन की बात सोचता हूँ, जब यह गैरिक-चरणा धरती माता अगाध-अपार सागर के भीतर से सद्यःस्नाता के समान निकल आई होगी। यह सागर, यह धरती और यह जनार्दन स्वामी का मन्दिर युग-युग से अपनी गाथा सुनाते आ रहे हैं।

"सागर की ओर से चलती है पछवा, जिसके सुहावने झकोरे वरकला को निहाल कर जाते हैं। प्रत्येक ऋतु-उत्सव और व्रत-मंगल में सम्मिलित होती है पछवा; लगता है, पछवा के स्पर्श-मात्र से वरकला की गेरुआ मिट्टी नाच उठी।

"सागर अपनी आदि-भाषा में कहता है—यह सब धरती कभी मेरे अन्तराल में थी। मेरा मन भी ऐसा ही कुछ कहता है।

"सागर के साथ-साथ ऊँचे पथरीले रक्ताभ कगार साढ़े तीन मील

तक चले गए हैं। लगता है, ऐरावतसहित अनेक हाथी निर्भय हो एक पाँत में आ खड़े हैं।

"सागर के भीतर तक, विशेष रूप से पाप-नाशा पर, लाल नुकीली चट्टानें घुस आई हैं, मानो हाथियों के बच्चे खेल-खेल में सूँड में लाल समुद्री घास भरकर बिखेर आए हैं। यह कल्पना मुझे बचपन में बड़ी प्रिय लगती थी, यद्यपि आज मुझे इस पर हँसी आती है।

"वरकला के सागर-तट का यह दृश्य मेरे मन में बीते युगों की घण्टियाँ बजाता आया है। ऊँचे पथरीले कगारों पर खड़े हैं गगन-चुम्बी नारियल-गाछ। केरल अर्थात् 'नारियल-गाछ का देश', जिसकी सत्यता को सिद्ध करते हैं वरकला के नारियल-गाछ।

"धातु-मिश्रित पथरीली गेरुआ मिट्टी सागर का खारा जल मिलने से लाल नुकीली चट्टानों का रूप लेने लगती है। कभी सागर इन चट्टानों को लील लेता है, पर नई चट्टानें भी बनती-उभरती रहती हैं। नाचती-इठलाती लहरें दिन-रात इन चट्टानों का पूजन-अर्चन करती हैं।

"चिलाक्कोर के समीप से आरम्भ होती है वरकला की नहर, जो सागर-जल को आगे एक सुविस्तृत झील से जा मिलाती है।

"इस नहर के निमित्त वरकला की पहाड़ियों को काट-काटकर दो सुरंगें बनानी पड़ीं।

"चिलाक्कोर के समीपवर्ती काजू-वन में पहले हम उस सुरंग तक पहुँचते हैं, जो मील-भर लम्बी है।

"दूसरी सुरंग का मुँह भी इसी काजू-वन में ही खुलता है। यह कोई डेढ़ मील लम्बी होगी।

"दूसरी सुरंग का दूसरा मुँह शिवगिरि मठ के रास्ते में खुलता है। उस पर त्रिवांकुर राज्य का राज्य-चिह्न 'शंख' खुदा है। शंख के नीचे बड़े-बड़े अंकों में लिखा है—१८८०। उसी वर्ष यह सुरंग बनी होगी।

"१८८० के बाद से यह सम्भव हो सका कि त्रिवेन्द्रम् से माल ढोने वाली नाव सागर के साथ-साथ तीस मील चलकर वरकला पहुँचे और

फिर पक्की ईंटों से बने किनारों वाली दस फुट चौड़ी नहर के रास्ते आगे वाली झील से होकर कोइलोन जा सके। उससे आगे तो अर्नाकुलम तक सुविस्तृत जल-मार्ग पर बड़े-बड़े स्टीमर चलते हैं।

"धन्य थे वे हाथ जिन्होंने वरकला की यह नहर तैयार की। धन्य था वह परिश्रम, जिसके फलस्वरूप ये लम्बी सुरंगें खोदी गईं।"

यात्री देखता है कि यह प्रशस्त मस्तक वाला संगीताचार्य वरकला की समूची विशेषताओं का प्रतीक है।

"न मुझे अपनी उच्च संगीत-विद्या पर इतना घमण्ड है कि मैं सागर-पुत्रों की धुन को हीन समझने की भूल करूँ। न मैंने अपने व्यक्तित्व को छोटे-से घेरे में ही बन्द रखने का प्रयत्न किया है।" रुद्रपदम् मुस्कराकर यात्री की ओर देखते हैं, जैसे वे कह रहे हों, 'हम बाहर से आने वाले यात्रियों के आभारी हैं।'

"जैसे पछवा के झकोरे हमें निहाल करते हैं, वैसे ही आप लोग बाहर से आकर दर्शन देते हैं, तो पाँच मील के घेरे में बसा हुआ वरकला मानो पाँच सौ मील के घेरे में फैल जाता है। कल का दिन ठहरें तो हमारे संगीत-विद्यालय में भी पधारें।"

"यह आपकी विशाल-हृदयता और उदारता है गुरुदेव!" यात्री कृतज्ञता जताता है, "हमें तो आज ही चलना है।"

और रुद्रपदम् मुत्तु बाबा की ओर देखकर पूछते हैं :

"एन्तु वर्तमानम् ?" [एक बात पूछूँ ?] मुत्तु बाबा की आँखों में मानो कोई ज्वाला भभक उठती है, "उस समय तो हम अछूत न थे, जब जनार्दन स्वामी के मन्दिर को सागर लील गया था और हम इन्हीं हाथों से देवमूर्ति को ढूँढ़ लाये थे। फिर दोबारा मन्दिर बना तो हमारे लिए मन्दिर बन्द कर दिया गया!"

"धैर्य ही अच्छा है, मुत्तु बाबा!" रुद्रपदम् मानो समस्त द्विज-समाज की ओर से कहते हैं, "वह दिन दूर नहीं, जब मनुष्य जाति-भेद की मिथ्या बात को साँप की केंचुली के समान उतार फेंकेगा।"

तीन

मूर्तिकार दामोदरन की दुकान मन्दिर बाजार में थी, जहाँ रुद्रपदम् का अड्डा था। अब तो देशमुख भी यहाँ की गोष्ठी में रस लेने लगा था।

देशमुख का विचार था कि दामोदरन ऊपरी मन से ही सबकी हाँ-में-हाँ मिलाये जाता है, अपनी बात नहीं कहता। यहाँ बैठकर वह दामोदरन की आँखों में झाँकता, तो उसे लगता कि यहाँ तो युग-युग की लम्बी दृष्टि की छाप है, पर संकोच भी कम नहीं। उसे इस भक्ति-भावना से चिढ़-सी थी, जिसमें उपासक देव-मूर्ति के सम्मुख 'देहि-देहि' की टेर लगाता नहीं अघाता। प्रश्न-मुखर दृष्टि से वह दामोदरन की आँखों में झाँकता, मानो वह उसके व्यक्तित्व के दीये में नूतन बाती संजो रहा हो।

दोपहर का समय था। आज दामोदरन अकेला था। मूर्ति की घिसाई करते-करते बोला, "कहो, देशमुख बाबू, कन्याकुमारी की यात्रा कर आए?"

"मुझे तो कन्याकुमारी के मन्दिर में कोई विशेषता दिखाई नहीं दी।" देशमुख ने नाक-भौं सिकोड़कर कहा,"नाम बड़े और दर्शन थोड़े!"

इतने में रुद्रपदम् भी आ गए। बोले, "शंख कहाँ गया?"

"गोबिन्दन के साथ घूम रहा होगा, दादा!" दामोदरन ने हँसकर कहा, "तुम जानो, तुम्हारा शंख, तुम्हारा गोबिन्दन।"

"और हमारी फीस, गुरुदेव!" देशमुख पास से मुस्कराया।

"फीस भी मिल जायगी," रुद्रपदम् मुस्कराये, "पर योग्यता भी तो सिद्ध कीजिये। अभी तो तुम्हारे गोबिन्दन के प्राण बम्बई की सड़कों पर ही घुमड़ रहे हैं। जाने कब रास्ते पर आयेगा मेरा गोविन्दन !"

"स्नान को गये होंगे," दामोदरन सोचकर बोला, "मैं भी दुकान बढ़ाता हूँ। देशमुख बाबू को भी ले चलते हैं। अरे दूर-दूर के यात्री आते हैं पाप-नाशा पर सागर-स्नान को, फिर हम वरकला में रहकर भी क्यों इससे वंचित रह जायँ ?"

"वे स्नान के लिए ही गये होंगे," देशमुख हँस पड़ा। "मन्दिर में जाकर मूर्ति के सामने हाथ बाँधे खड़े रहने से सागर-स्नान करना फिर भी अच्छा है।"

"पाप-नाशा भी बुरा नहीं," दामोदरन मुस्कराया, "पर कन्या-कुमारी की दूसरी ही बात है।"

"सागर-स्नान हमारी संस्कृति का अंग है," रुद्रपदम् मुस्कराये, "अब दुकान बढ़ाओ। धन्धा तो कभी समाप्त नहीं होता। आज सागर से बातें की जायँ, संस्कृति का मनन भी।"

"यह संस्कृति क्या बला है, गुरुदेव ?" देशमुख अपनी बात पर स्वयं हँस पड़ा।

"ओऽम् तत्सत् !" रुद्रपदम् आँखें चढ़ाकर बोले, "पराधीनता जो न कराये वही ठीक।"

"देशमुख बाबू को कन्याकुमारी का मन्दिर अच्छा नहीं लगा, दादा !" दामोदरन भी चुप न रह सका।

"केवल कन्याकुमारी ही गये या रास्ते में कुछ और भी देखा ?" रुद्रपदम् की मोटी-लम्बी शिखा नाच उठी।

"त्रिवेन्द्रम् से आगे वह सरोवर भी देखा, जिसके साथ गौतम और अहल्या के आश्रम की बात जोड़कर दक्षिण वालों ने अपनी बुद्धि का परिचय दिया है।"

"ठीक तो है, दादा !" दामोदरन ने मानो रुद्रपदम् की ओर से कहा,

"वहीं तो गौतम का आश्रम था। तुमने देखा होगा, वहाँ मेंढक नाम को भी नहीं। दादा समझा सकते हैं कि यह सब इन्द्र के शाप के कारण हुआ।"

रुद्रपदम् बोले, "दक्षिण की यही मान्यता है कि इधर ही था गौतम-आश्रम। यहीं इन्द्र ने अहल्या को छला था। मेंढक कोलाहल कर रहे थे। इससे पूर्व कि उसे गौतम का शाप लगे, उसने मेंढकों को ही शाप दे डाला कि वहाँ उनका वंश-नाश हो जाय।"

"सचाई तो कुछ और ही है, गुरुदेव !" देशमुख ने गम्भीर होकर कहा, "उस सरोवर के जल में गन्धक है। इस कारण मेंढक नहीं जीते।"

"यह नास्तिकता यहाँ नहीं चलेगी देशमुख बाबू !" रुद्रपदम् ने त्योरी चढ़ाई।

"पर भौगोलिक पचड़े को भी तो सुलझाइए !" देशमुख चुप न रहा, "भगवान् राम ने जनकपुर जाते समय मार्ग में अहल्या-उद्धार किया था, ऐसी ही जनश्रुति है। श्री राम के चरण छूते ही शिला अहल्या होकर जी उठी थी। वहीं तो गौतम-आश्रम रहा होगा, फिर वह इतनी दूर दक्षिण में कैसे सरक आया ?"

रुद्रपदम् ने प्रसंग टालकर कहा, "चिदम्बरम् का मन्दिर भी देखा ?"

"चिदम्बरम् का मन्दिर तो दर्शनीय है।" दामोदरन बीच में ही बोल पड़ा, "वहीं तो इन्द्र शाप-मुक्त हो पाये थे। दादा विस्तार से बता सकते हैं कि किस प्रकार गौतम के शाप से इन्द्र सहस्राक्ष या सहस्र-योनि हुए। चिदम्बरम् में प्रायश्चित करके वह देवताओं को मुँह दिखाने योग्य हुए।"

रुद्रपदम् बोले, "चिदम्बरम् का मन्दिर तो अति भव्य है।"

"दैवयोग से उस दिन इस मन्दिर का वार्षिकोत्सव था।" देशमुख भी चुप न रह सका, "लकड़ी के तीस पहियों वाले डेढ़ सौ फुट ऊँचे रथ पर इन्द्र की मूर्ति विराजमान थी। इन्द्र के शाप-मुक्त होने के उपलक्ष्य में उनकी शोभा-यात्रा निकल रही थी। सहस्रों यात्री इन्द्र के रथ को हाथों

से खींच रहे थे। मैं अकेला होता तो वहीं रम जाता। मैं एक मित्र की कार में था जो उसी दिन कन्याकुमारी पहुँचकर सूर्यास्त का दृश्य देखना चाहता था।"

"चिदम्बरम् के मन्दिर में वे खम्भे नहीं देखे? पत्थर के टुकड़े जोड़-जोड़कर ऐसे बनाये गए हैं कि उन पर चोट करने से संगीत के सातों स्वर गूँज उठते हैं।" रुद्रपदम् बोले, "कभी फिर जाओ तो वे खम्भे अवश्य देखना।"

"कभी साथ ले चलिए। धृष्टता क्षमा हो! वास्तव में चिदम्बरम् का मन्दिर देखने के बाद कन्याकुमारी का मन्दिर तो बौना-सा लगता है।"

"ओ३म् तत्सत्! मन्दिर सभी पवित्र हैं, महान् हैं—ऊँचे हों तो भले, नीचे हों तो! मन्दिर के सम्बन्ध में ऐसा कहना अशुभ है।" रुद्रपदम् मुस्कराये, "तुमने रेत के टीलों पर बैठकर सूर्यास्त का दृश्य देखा होगा। चिदम्बरम् के मन्दिर से शिव ने ढेर चावल कन्याकुमारी से विवाह करने के उपलक्ष्य में भिजवाये थे। विवाह न हो सका। कोई विघ्न पड़ गया। शिव के शाप से चावल के ढेर रेत के टीलों में परिणत हो गए।"

"ये सब तो कपोल-कल्पित कथाएँ हैं, गुरुदेव!" देशमुख हँस पड़ा, "सारा दक्षिण मन्दिरों और देव-कथाओं के नीचे कराह रहा है। गोबिन्दन से भी मेरी बातें हुई हैं।"

दुकान बढ़ाकर वे पाप-नाशा पहुँचे। शंख और गोबिन्दन ने उनका अभिवादन किया और फिर से लहरों के साथ जूझने लगे।

रुद्रपदम् ने सागर-जल से आचमन किया और सूर्य की ओर हाथ उठाकर प्रार्थना की, "मेरे गोबिन्दन को विवेक दो, भगवान्! उसकी बुद्धि में यह बात आ जाय कि संगीत से ही देश का उद्धार होगा।"

दामोदरन बोला, "मूर्तियाँ बनाते समय मूर्तिकार के श्वास चुक जाते हैं।"

"संगीताचार्य का भी क्या ठीक है?" रुद्रपदम् मुस्कराये, "कौन जाने किस राग-रागिनी की गली में प्राण साथ छोड़ दें।"

"फिर तो नाम शेष रह जाता है। और दादा, नाम का भी क्या भरोसा है ?"

"यह तो ठीक है। जो कलाकार है, वह भी विदा लेता है। जो कलाकार नहीं है, वह भी चल देता है। फिर कला का भी क्या गर्व किया जाय ?"

देशमुख जाकर गोविन्दन और शंखधरन के साथ हँसने-खेलने और झाग के छींटे उड़ाने लगा।

"अन्न-जल की बात है, दादा !" दामोदरन ने सहानुभूति जताई, "अब गोविन्दन यहीं रहेगा। वह पिता को अब और नहीं सतायेगा।"

"सबसे अधिक चिन्ता तो इसकी माँ को रहती थी।" रुद्रपदम् ने सूर्य की ओर हाथ उठाकर कहा, "सर्वंसहा नारी का दुःख तुमसे छिपा तो नहीं, भगवान् ! यह हमारी कुलदेवी युग-युग से वेदना का भार ढोती आ रही है। उसके पुत्र उसे छोड़-छोड़कर भागते रहे।" और फिर सागर की ओर हाथ फैलाकर बोले, "हे वरुणदेव, हमारा गोविन्दन आज्ञाकारी बने ! पहले माँ की बात सुने, फिर पिता की। माँ ही प्रथम गुरु है। उसी से ज्ञान आरम्भ होता है।"

"थोपी हुई बुद्धि तीन दिन भी नहीं टिकती और भीतर की बुद्धि तीन युग तक काम आती है, दादा ! मैं शंख से कहूँगा, यह बात गोबिन्दन के कान में डाल दे।" बात करते-करते दामोदरन हँस पड़ा, "देशमुख ठीक कहता है, बम्बई नगर में रुपया कमाकर घर पहुँचते-पहुँचते जेब में चवन्नी भी नहीं बचती। पर गोविन्दन कुछ तो लाया ही होगा कमाकर ?"

"कमाई की न पूछो। कभी नाव सागर पर, तो कभी सागर नाव पर ! अपना वरकला ही भला है।"

"बम्बई भी बुरी नहीं होगी, दादा !" दामोदरन ने आवेश में कहा, "देशमुख कहता है, मरते-मरते भी उसका मुख बम्बई की ओर ही रहेगा ! परदेश में न माँ होती है, न सहोदर भाई !"

"राजा माने तो रानी ! अपना वरकला ही भला। बम्बई की तो

वह बात होगी—सुहागिन ने विधवा के चरण छुए तो बोली, कि तू भी मुझ-सी हो जा। जो स्वयं घर से भागकर वहाँ पहुँचते होंगे, वे दूसरे को भी क्या अच्छी राय देंगे ? जय जनार्दनस्वामी ! मेरा गोबिन्दन लौट आया !"

"घर-घर नारियल-गाछ छत्र झुलाता है ! वरकला की क्या बात है, दादा ! कोई राह-चलता यात्री भी क्यों न आ जाय, कच्चे नारियल का रस तो उसे पिलाकर ही छोड़ते हैं। कहा भी है, ढोल की आवाज एक कोस तक जाती है तो आतिथ्य की भावना सौ कोस !"

देशमुख ने पास आकर पूछा, "क्या ज्ञान-गोष्ठी चल रही है ? मैं सब सुन रहा था। बम्बई में दोष निकाले बिना क्या वरकला का गुण-गान सम्भव नहीं ?"

गोबिन्दन और शंखधरन का मन अभी स्नान से भरा नहीं था। वे देर तक लहरों से जूझते रहे। आज पूस ने कुहासे की गठरियाँ नहीं खोली थीं। धूप में तितलियाँ जैसे भरतनाट्यम् के पश्चात् कथकली नाचने लगी थीं।

स्नान के पश्चात् वे लौट पड़े, तो दूर से एक कन्या आती दिखाई दी। पास से गुज़रते हुए वह बोली, "मूर्ति बनाना तो छोड़ा ही था शंख, क्या अब वीणा में भी मन नहीं रमता ?"

"यह कौन कन्या है ?" रुद्रपदम् ने पूछ लिया।

"यह नीलू है, गुरुदेव !" शंख मुस्कराया, "माधवन नम्पूतिरिप्पाड की कन्या !"

"अच्छा तो ये लोग आ गए ? त्रिवेन्द्रम के कालेज में प्रिंसिपल थे न नम्पूतिरिप्पाड ! पाँच बरस पहले ही पेंशन कराकर प्रिंसिपल महो-दय घर आकर रहेंगे, यह तो हम तीन महीने से सुन रहे थे।" रुद्रपदम् गद्गद स्वर में बोले, "माधवन ने बंगाली कन्या से विवाह किया था—मलयाली और आर्य रक्त का संगम। यह हुई नीलू ! क्या यह ठीक है कि नीलू ने एम० ए० किया है ? वह चाहे तो संगीत विद्यालय में आ

सकती है।"

देशमुख ने हँसकर कहा, "आपका वश चले गुरुदेव, तो सारे वर-कला को अपने संगीत विद्यालय में समेट लें ! इतना स्थान भी है ?"

रुद्रपदम् प्रसंग बदलकर बोले, "प्रागैतिहासिक युग में चिर-काल तक केरल के नाग-वंशियों के साथ आर्यों का संघर्ष हुआ था। नाग-वंशी तो कुलदेवी को ही कुल-माता मानते थे। माँ से ही उनका परिवार चलता था जैसा आज भी केरल की अनेक जातियों में चलता है। आर्यों ने यहाँ पिता की पद-प्रतिष्ठा कराई। बहुत सी बातों में केरल के नाग-वंशियों के सम्मुख आर्यों की पराजय हुई। शिव को नागवंशी अपना महादेव मानते थे। आर्यों ने उसे अपना देवता मान लिया। केरल की प्रधान जाति है नायर। मलयालम के नागर शब्द का अपभ्रंश है नायर। नागर का अर्थ है 'गले में नाग डालने वाला'। केरल की कुछ जातियों की स्त्रियाँ आज भी नाग-फन जैसा जूड़ा बाँधती हैं। केरल के मन्दिरों में नागस्वरम् बजाते हैं। नागस्वरम् के नाम में भी नाग-पूजा का भाव निहित है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि आर्यों के वंशज हैं हमारे नम्पूतिरिब्राह्मण, जो आज केरल में नाग-पूजा के महापुरोहित कहे जा सकते हैं।"

देशमुख ने हँसकर कहा, "यह सब अनुसंधान तो बहुत बड़ा पचड़ा है, गुरुदेव ! और देखिए आपकी सुनाई हुई वह कहानी तो मेरे मन नहीं लगती। यह कैसे हो सकता है कि जब एक नम्पूतिरि त्रिवेन्द्रम् के लिए घर से चला तो काबू-कुण्डा का नागराज अंगरक्षक के रूप में उसके साथ हो लिया और फिर इस बात पर तो हँसी आये बिना नहीं रहती कि रास्ते में उस नम्पूतिरि ने नागराज से कहा कि आप यहीं ठहरिए, मैं महाराज से मिल आऊँ, फिर हम इकट्ठे घर चलेंगे। और इससे भी अधिक हँसी वाली यह बात है कि वह नम्पूतिरि दूसरे ही रास्ते लौट गया, और नागराज के उपलक्ष्य में वहीं एक काबू बन गया। बताइये, इन कपोल-कल्पित कथाओं से जनता को कब तक बुद्धू बनाया जायगा ?"

चार

"हे कुल-देवी ! हे तुलसी ! कच्चे नारियल का भोग स्वीकार करो। गोबिन्दन को सुमति दो। वह पिता की आज्ञा में रहे। ददिहाल और ननिहाल में उसका यश बढ़े। सातों दिन स्थिर-वाक् रहे। बारहों मास शुद्ध संस्कार रहे। प्रति पल ब्रह्म-योग में लीन रहे !..." अन्नपूर्णा तुलसी वेदी पर घी का दीप संजोकर प्रार्थना कर रही थी।

"कोई वरदान छूट न जाय, माँ !" तुलसी-वेदी के पीछे से गोबिन्दन हँस पड़ा।

"अरे तुम पीछे छिपे खड़े थे ! यह तो शुभ हुआ।" अन्नपूर्णा गोबिन्दन के सिर पर प्यार से हाथ फेरने लगी, "पीछे न जाने हाथी दौड़े या हथिनी। संगीत सीखो और पिता को प्रसन्न करो। संगीत तो तुम्हारे रक्त में है। बम्बई भागकर तुमने पंसेरी में पाँच सेर की भूल की थी। सिर पर पिता का हाथ रहे। अभी कुछ नहीं बिगड़ा।"

"पर तुम्हीं तो कहा करती थीं माँ, कि मेरे पैर में चक्कर है। चलते-चलते मैं बम्बई पहुँच गया। इसमें तो पैर के चक्कर का ही चमत्कार था।"

"पैर का चक्कर ही तुम्हें लौटा लाया, बेटा !"

"यात्रा से मनुष्य बनता है, माँ !"

"पाँच बरस यात्रा में बिता दिए। उन बीते बरसों को तो हाथी भी नहीं पहुँच सकते। पिता की छाया में बैठो, कभी तो डाल झुकेगी।

जो सीखता है, उसी की विद्या है। भावना से विद्या फलती है। और विद्या की तो वह बात है बेटा, कि बात छोटी, कथकली लम्बी ! अब फिर बम्बई न भाग जाना। शंख तो पहले ही बहुत आगे निकल गया।"

"शंख से मैं क्यों ईर्ष्या करूँ, माँ ?"

"बिना ऋतु गाछ नहीं फलते, बेटा ! विद्या सीखने की यही आयु है। बम्बई में कौनसे लड्डू बँटते हैं ? समय-समय की रागिनियाँ हैं। जो समय को नहीं देखता, वही मूर्ख है। मैं तो यही कहूँगी, बेटा ! घर में रह और माँ का आशीर्वाद ले—बढ़-बढ़ रे चन्दन-गाछ !"

"लय पर पैर उठते हैं, माँ ! बम्बई में भी मैंने अपना समय व्यर्थ नहीं गँवाया। मैंने कुछ खोया नहीं। पहले तो पिताजी सामने से बात ही नहीं करने देते थे, माँ ! बस यही कहते—ब्रह्मा के आगे वेद बाँचता है !"

"मौनं सर्वार्थसाधनम् ! यह मानकर देखो, बेटा ! फिर तुम देखोगे—शंख और पायसम् (खीर) से भरा ! वरकला में ही रहो, यहाँ तो सात वार नौ त्यौहार का योग रहता है।"

"बम्बई ने भी मेरा कुछ बिगाड़ा नहीं, माँ ! सूखे शंख तो अटपटे बजते हैं। सारी बात तो चार पैसे कमा सकने की है। बम्बई जो कहे सो सवा बीस। और बम्बई भी यही कहती है—सोंटी लगे चमचम, विद्या आवे घमघम ! सोने को जंग नहीं लगता। परिश्रमी के लिए बम्बई में सोने का सूर्य उगता है।"

"सौ बरस पर शताब्दी होती है, बेटा ! पिता की छाया तो सौभाग्य से मिलती है।"

"जहाँ सौ वहाँ सवासौ। मन तो यही कहता है, फिर बम्बई चलो। मैं फिल्मों में धुनें बना सकता हूँ। संगीत मेरे रक्त में है। संगीत-निर्देशक बनूँ, यही मेरी इच्छा है।"

"संगीताचार्य क्यों नहीं ?"

"इस कार्य में उतने पैसे नहीं, पिताजी की दूसरी बात है, माँ !

त्रिवांकुर-नरेश उनके संरक्षक हैं। पर मैं तो इसे दान अथवा भिक्षा से अधिक नहीं मानता। ऐसा युग आने वाला है, जब ये राजे-महाराजे नहीं रहेंगे। और मैं पूछता हूँ, शास्त्रीय संगीत को हमारे देश में कितने लोग समझ सकते हैं?"

"हाथी के पैर में सबका पैर, बेटा! हमारे त्रिवांकुर-नरेश चिरंजीव हों—गुणियों के संरक्षक। यह सच है कि उनके राज में हाथी हाथी से ही तुलते हैं, लेकिन पासंग में गधे भी तुल जाते हैं। उनके राज में हाथी तुलते हैं और गधे पासंग में तुलते हैं।"

"बम्बई में तो चमत्कार को ही नमस्कार है।"

इतने में रुद्रपदम् आ गए। बोले, "सर्वंसहा मातृमूर्ति को सदा प्रणाम करो, बेटा गोबिन्दन! स्वयंसमर्पिता। यज्ञ की समिधा-सी। सदा श्रद्धामयी। सदा करुणावती।"

वाटिका की चारदीवारी से चाँदनी रात में सागर का ज्वार बहुत भला लग रहा था।

अन्नपूर्णा बोली, "हे जनार्दन स्वामी, मेरे गोबिन्दन को तुम्हीं बुलाकर लाए। हे महात्मन्, श्री महाबलि, आपने अपनी धरती वामन को दे डाली थी। प्रतिवर्ष एक दिन के लिए तुम अपनी प्रजा को देखने आते हो, जब हम ओणम् मनाते हैं। मेरा गोबिन्दन घर लौट आया। मेरे लिए हर दिन ओणम् बन गया।" फिर वह ओसारे के समीप नागमूर्ति के सम्मुख खड़ी होकर बोली, "हे नागराज, तुम्हारे वरदान से ही गोबिन्दन का जन्म हुआ था! तुम तो सात पाताल के वासी हो, नाग देवता! पर धरती की सब सुध-बुध रखते हो। बम्बई तुमसे कौन दूर है! तुम मेरे गोबिन्दन को बुला लाये। तुम कितने कृपालु हो, नागराज!..."

रुद्रपदम् की कल्पना में इक्कीस वर्ष पहले की घटना घूम गई। अन्नपूर्णा ने जनार्दनस्वामी के मन्दिर के समीप छतनार पीपल के नीचे निष्ठापूर्वक पाषाण की नागमूर्ति रखकर 'नाग-प्रतिष्ठा' की थी।

"तुम केवल पाँच महीने के थे गोबिन्दन, जब हमने मन्नरशाला कावु की यात्रा की थी।"

गोबिन्दन जानता था, प्रत्येक नम्पूतिरि घर में पाताल-कोठरी रहती है जहाँ नाग-मूर्ति को भोग लगाते हैं, और घर के समीप रहता है 'कावु' अथवा नाग-कुण्डा, जिसे पुराने वन का अवशेष ही समझा जाता है। समूचे केरल में हज़ारों कावु थे। इन सभी कावुओं में मन्नरशाला कावु की महिमा सर्वाधिक थी।

"स्वर्णकार को अपनी स्वर्ण-माला देकर तुम्हारी माँ ने नाग-मूर्ति बनवाई थी, बेटा!"

"नाग-पूजा तो सनातन रीति है!" अन्नपूर्णा मुस्कराई, "नाग-पूजा में केरल का मन रमता है। नम्पूतिरि ब्राह्मणों के 'इल्लम्' (घर) की पाताल-कोठरी में नाग-मूर्तियों के साथ-साथ जीवित सर्प भी रहते हैं। 'इल्लम्' के उत्तर-पश्चिम में रहता है कावु। केरल के पन्द्रह हज़ार कावुओं में एक भी मन्नरशाला कावु को नहीं पहुँचता। वहीं वार्षिक ननकम् उत्सव पर हम तुम्हें लेकर गये थे, गोबिन्दन!"

"मन की बहँगी पर मनुष्य परम्परा का भार ढोता आ रहा है, गोबिन्दन बेटा! मन्नरशाला कावु की कथा तो तुम जानते ही होगे।"

"मन्नरशाला के नम्पूतिरि इल्लम् का एक ब्राह्मण वेट्टिकोट्टु-इल्लम् की एक नम्पूतिरि कन्या को वधू बनाकर लाया!" अन्नपूर्णा कहती चली गई, "उसके माता-पिता उसे कन्यादान में एक नाग-मूर्ति ही दे पाए। ससुराल में आकर वह इस मूर्ति की पूजा करने लगी। ससुराल का सौभाग्य बढ़ता गया। वह गर्भवती हुई। उसने एक साथ एक बालक और एक नाग को जन्म दिया। घर की पाताल-कोठरी में, जहाँ जीवित सर्प भी रहते थे, इस नाग-शिशु का पालन-पोषण होने लगा। वहीं से मन्नरशाला कावु का इतिहास चलता है। और इस नम्पूतिरि-इल्लम् के वंशधर आज तक अपने नाम के साथ उस नम्पूतिरि माँ और नाग का नाम जोड़कर गर्व अनुभव करते हैं।"

गाबिन्दन एक बार सात वर्ष की आयु में भी मन्नरशाला के नवकम् उत्सव में सम्मिलित हुआ था। चित्रकुडम् (शिला-पीठिका) पर अनेक नाग-मूर्तियों के बीच नागराज और नाग-यक्षी की मूर्तियाँ स्थापित थीं। वे दिन उसकी आँखों में घूम गए। जैसे चौदह वर्ष पहले का समय अभी कल की बात हो। जैसे गोरस में गुँधे आटे का भोग लगाया जा रहा हो। इस भोग का श्रुति-मधुर नाम था 'नूरुम् पलम्', जिसे सदा इल्लम् की बूढ़ी माँ ही बनाती थी। जैसे बूढ़ी माँ कावू में नागराज और नाग-यक्षी की पूजा से पूर्व उन्हें स्नान करा रही हो। शिवरात्रि के दिन सहस्रों दर्शकों की भीड़। उसी तरह विधिवत् पाँच पूजाएँ की जा रही हैं। सवेरे की पूजा में फल और दूध का भोग, दोपहर को 'वेल्ला नैवेद्यम्' (पकाया हुआ चावल), फिर 'मलार' (भुना हुआ अन्न), तत्पश्चात् विशेष नैवेद्यम् रखा गया, जिसमें केसर, कच्चे नारियल का दूध, केला तथा घी सम्मिलित था। जैसे इल्लम् की बूढ़ी माँ बता रही हो—'बचा हुआ नैवेद्यम् किसी नदी अथवा सरोवर में गिरा आने की प्रथा है!' नव-कम् के उपलक्ष्य में सभी नाग-मूर्तियों को उठाकर शोभा-यात्रा निकालने का दृश्य उसकी आँखों में घूम गया, जैसे पुरातन परम्परा के अनुसार बूढ़ी माँ ने उठा रखी हो। फिर उसके चिन्तन में वह दृश्य घूम गया—वह अभी पाँच महीने का शिशु है, और माँ की बाँहों से उचक-उचक जाता है, जैसे उसकी माँ स्वर्ण-निर्मित नाग-मूर्ति भेंट कर रही हो। सभी स्त्रियाँ अपनी-अपनी भेंट लाई हैं—केसर, कालीमिर्च, रेशम, आभू-षण, केले, तेल और घी। पुल्लुवन जाति के लोग—जिनका धन्धा है गाँव-गाँव घूमकर, घर-घर सर्प-गीत गा-गाकर प्रसन्नता का प्रसार। उनके तन्त्र-वाद्य पर तुम्बे की जगह मिट्टी का घट लगा है।

अन्नपूर्णा ने भोजन परोस दिया। पिता-पुत्र बड़े प्रेम से भोजन पाते रहे। सागर-ज्वार की द्रुत रागिनी उनकी कल्पना पर थाप लगा रही थी।

भोजन के पश्चात् वे चारदीवारी पर कुहनियाँ टेके खड़े थे। इतने

में देशमुख की आवाज सुनाई दी, "कहिए, गुरुदेव घर पर हैं न !"

"आइये, आइये!" रुद्रपदम् और गोबिन्दन एक साथ बोल उठे। और अगले ही क्षण देशमुख भी आकर खड़ा हो गया।

"मैं तो यही कहने आया हूँ गुरुदेव ! कि गोबिन्दन को बम्बई जाने से न रोकें।" देशमुख ने हँसकर कहा, "बम्बई में गोबिन्दन ने पाँच बरस विताये। मेरा मतलब है, इसने वहाँ पाँच बरस से बीज बोये, धीरे-धीरे वे बीज उगेंगे, फल लायेंगे। फिल्मों के म्यूज़िक डाइरेक्टर को स्वयं गाना नहीं पड़ता, बस धुनें बनानी पड़ती हैं। और संगीत तो गोबिन्दन के रक्त में है।"

रुद्रपदम् ने कहा, "देशमुख बाबू, मैंने तुम्हारी फीस नहीं दी, इसलिए यह दूसरा मन्त्र इसके कान में डाल रहे हो !"

पाँच

मन्दिर के सामने खड़ा गोबिन्दन सोच रहा था—यहाँ तो कुछ भी नहीं बदला। ये लोग ऐसे ही खड़े रहेंगे, अर्घ्य देते रहेंगे, फूल चढ़ाते रहेंगे। कब से वे पापों का प्रायश्चित करते रहे हैं! जैसे यह जन-समूह एक ही व्यक्ति हो—सहस्रबाहु, सहस्रपाद! जैसे इसकी मुखाकृति ही बदलती रही हो; हाथ-पैर वैसे-के-वैसे रहे हों। सिर पर परम्परा का भार, चतुर्दिक् देव-कथाओं का घेरा। जैसे यह मन्दिर इस सहस्रबाहु, सहस्रपाद भक्त-समूह के सिर पर बना हो।

मैं इनका साथ दूँ, यह नहीं होगा। देवता से वर माँगते नहीं थकते—'देहि-देहि! शत सहस्र देहि! सहस्र कोटि देहि!' युग-युग की लम्बी दृष्टि से देख रहे हैं। सागर-फेनोज्ज्वल मुस्कान। द्रुत और विलम्बिता आरती। इस भक्ति का मूल्य कितना! पाप-नाश दूर नहीं। एक लहर आती है, फिर दूसरी, फिर तीसरी; तीनों लहरें फेन छोड़ चली जाती हैं। दिन में सूर्य—प्रकाश का आदि-स्रोत और ऋतु-क्रम का प्रवर्तक; रात को चन्द्रमा—स्नेह-प्रणेता। इन्हें इस बात की क्या चिन्ता कि अहल्या-भूमि इन्द्र के पाप से रास्ते की शिला बनी अभी तक किसी राम की बाट जोह रही है। इन्द्रियभोगी इन्द्र सहस्र-योनि बनकर भी कभी का शाप-मुक्त हो चुका है। भद्र-जन का वेष धरकर आया वामन। बोला—श्रीमान् महाबलि, त्रिपाद भूमि देकर दानशीलता दिखाइए। और तृतीय पाद में ले ली समस्त केरल भूमि! वामन का राज है। महाबलि पाताल

में निर्वासित हैं। यह तो बच्चे की आँखें पोंछने वाली बात है कि ओणम् के दिन बरस में एक बार महाबलि को अपनी भूमि में आने की पूरी छूट है।

गोबिन्दन की कल्पना में बम्बई घूम गई, जहाँ वह पाँच बरस विता आया था। वहाँ कितनी भाग-दौड़ थी ! छोटे पथ, बड़े पथ; आने वालों के साक्षी, जाने वालों के सखा। दिन के पहियों की घरघराहट; रात की स्वप्न-रागिनी। सुमन-यौवन आरती। फिल्मों की चुलबुलिया रंग-स्थली। समाचार-पत्रों की चित्र-विचित्र ऋतु-क्रम-सी सूचनाएँ और टिप्पणियाँ। सहस्रपाद छन्द, सहस्राक्षु रूपक, सहस्राक्षर उपमाएँ, सहस्र-बुद्धि भाव, सहस्र-रश्मि अलंकार, सहस्र-जिह्वा रस, सहस्र-वाक् लक्षण। फिल्मी गीत, जिनका समाँ ही कुछ निराला है। टनन्-टनन् ट्रामें। फिल्म के चित्रपट पर रंग-बिरंगे सरगम। स्वयंसिद्ध नृत्य, नयनतारा और अपराजिता के फूल। सपनों के दाने चुगते कबूतर। आइए श्री गोविन्दन, संगीत-निर्देशक ! बम्बई आपका स्वागत करती है। हम आपका जुलूस निकालेंगे। आइए संगीताचार्य रुद्रपदम् के सपुत्र ! आइए म्यूज़िक डाइरेक्टर महोदय ! परम्परा का भार उतारिए। नई प्रतिभा का साथ दीजिए। यह हैं मिस गौरी—बम्बई की सुविख्यात प्ले-बैक गायिका। यह हैं मिस सन्ध्या। यह हैं मिस उषा। यह हैं नयनतारा। यह हैं अपराजिता ! ···उसने चौंककर इधर-उधर देखा। मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ़कर वह भीतर प्रांगण में आ गया था। यह है वरकला। वरकला का जनार्दन स्वामी का मन्दिर। यह बम्बई नहीं। यह बम्बई का फिल्म-स्टुडियो नहीं।

शंख और नीलू ने मन्दिर के प्रांगण में प्रवेश किया।

"देवता पर दो फूल भी न चढ़ाओगे ?" नीलू हँस पड़ी, "हमें साथ क्यों नहीं लाये, दादा ?"

मन्दिर के भीतर गर्भ-गृह में जाने के लिए वे मुख-मण्डप से होकर गुजरे। देव-प्रतिमा के सम्मुख घी के दीप जल रहे थे। उन्होंने प्रतिमा

पर फूल चढ़ाये, भेंट-पूजा की, तीर्थ-पुरोहित से प्रसाद लिया।

प्रांगण में आकर उन्होंने मुँह मीठा किया।

मुख-मण्डप के छज्जे पर बाहर की ओर बाएँ हाथ सरस्वती की मूर्ति थी, दाएँ हाथ लक्ष्मी की। गोबिन्दन के लिए इसमें कुछ भी नया न था। सरस्वती और लक्ष्मी को इन्हीं मुद्राओं में वह बचपन से ही देखता आया था।

मुख-मण्डप से थोड़ा हटकर प्रांगण में एक ओर था ब्रह्मा-मण्डप। ब्रह्मा ने यहीं खड़े होकर भगवान् जनार्दनस्वामी से भिक्षा माँगी थी। पहले लक्ष्मी और सरस्वती ने ही बाहर दर्शन देकर ब्रह्मा को सन्तुष्ट किया था। मुख-मण्डप पर उनकी मुद्राएँ आज भी उसी युग की याद दिलाती हैं।

नीलू बोली, "ब्रह्मा को यह गर्व था कि वही अखिल विश्व के स्रष्टा हैं।"

"इसी अहं से मुक्त होने के लिए तो ब्रह्मा को यहाँ खड़े होकर कहना पड़ा था—'भिक्षां देहि !' इसीलिए गुरुदेव कहते हैं कि कलाकार को घमण्ड से बचना चाहिए।"

शंखधरन ने सगर्व गम्भीर स्वर में कहा, "ब्रह्मा को वरकला में यज्ञ भी रचाना पड़ा था। उसी से तो वरकला की मिट्टी गेरुआ हो गई। पर डाकबाबू देशमुख इन कथाओं पर हँसते हैं। गुरुदेव नहीं हँसते। उनकी मान्यता है कि वरकला के काजूवन में अबरखिया जल के स्रोत भी ब्रह्मा के यज्ञ से ही फूट निकले थे।"

नीलू ने भाँप लिया कि गोबिन्दन का मन उखड़ा-उखड़ा-सा है। उसने कॉलिज की बातें छेड़ दीं। "कॉलेज की सुगन्ध अभी बन्द रखो, नीलू!" शंख ने गम्भीर होकर कहा, "इस समय हम मन्दिर में बैठे हैं। हमारे सपने देव-कथाओं में ही विचरने चाहिएँ। भविष्य की कल्पना गढ़ने में जनार्दनस्वामी के मन्दिर की कथा तो अवश्य सुनिए।"

"सुनेंगे," नीलू मुस्कराई। उसने वेणी में नीला फूल खोंस

रखा था।

"कल्पना के प्रवेश-द्वार पर मैं इस कथा को बन्दनवार के सदृश सजाऊँगा।" शंख ने भूमिका बाँधी।

"सौ बार सुनी हुई कथा में तुम कुछ नया तो डाल नहीं सकोगे।" गोविन्दन मुस्कराया। "कथा छोड़ो, नीलू से गीत सुना जाय—कोई नीलवर्ण गीत!"

"नील-वर्ण गीत!" नीलू हँस पड़ी, "गीत का भी रंग होता है?"

उसकी वेणी का नीला फूल झहर-झकोर गोबिन्दन को छू गया।

"फूल नहीं, गीत की लय पास आनी चाहिए!" माथे पर अजीब-सा भाव लाकर गोबिन्दन तना-तना-सा रहा।

"यह तो ठीक ही है!" शंख हँसकर बोला, "ब्रह्मा-मण्डप में कथा और गीत का ही मेल है। आज जो यात्री दर्शन करके आये हैं, इनमें बम्बई के भी हैं, एक-दो परिवार! मैं तो बम्बई जाने की बात नहीं सोचता। बम्बई स्वयं वरकला को दर्शन देने चली आ रही है। अच्छा तो अब कथा सुनिए।"

"कथा मैं सुनाऊँगी।" नीलू गम्भीर मुद्रा बनाकर बैठ गई:

"एक था राजा। उसे अपनी देह की दो परछाइयाँ दीखने लगीं।

"कभी वह सोचता, सेवा-भाव से जीवन बिताना चाहिए। कभी वह त्याग और सेवा के आदर्श भूल वासना और विलास में डूब जाता। और यह बात छिपी न रहती कि एक मार्ग विरक्ति की ओर जाता है, तो दूसरा आसक्ति की ओर। देह की दो परछाइयाँ मन की दुविधा की प्रतीक हैं।

"राजा को सपने में भविष्यवाणी हुई। वह यात्रा पर चल पड़ा। पूर्व सागर के साथ-साथ चलता हुआ वह कन्याकुमारी पहुँचा। फिर पश्चिम सागर के साथ-साथ चलता हुआ वरकला धाम पहुँच गया। यहाँ उसे सागर-तट पर पड़ी भगवान् की मूर्ति के दर्शन हुए। एक ही परछाईं रह गई। राजा ने मन्दिर बनवाया, जिसे सागर ले गया। फिर दोबारा मन्दिर बनाया गया थोड़ा हटकर। और अब इस मन्दिर में देव-दर्शन को

दूर-दूर के यात्री आते हैं।"

गोविन्दन हँस पड़ा, "और भी कोई कथा होगी तो नीलू से ही सुनेंगे। शंख तो छकड़े का बैल है। आज का युग चाहता है कि संक्षेप में ही बात की जाय।"

"मैं समझ गई," नीलू ने गम्भीर-सा मुँह बनाकर कहा, "गोविन्दन को पक्के गाने वाला ढंग अरुचिकर है। और यह भी ठीक है कि हमारे मस्तिष्क पर परम्परा का इतना भार नहीं होना चाहिए।"

"कभी यह कथा, कभी वह कथा! कथाओं का भी कहीं अन्त!" गोविन्दन बोला, "वरकला को इन घिसी-घिसाई कथाओं से बचाओ—जर्जर युग की इन पक्की तानों से।"

"मेरे लिए तो शास्त्रीय संगीत ही सबसे बड़ी प्रेरणा है।" शंखधरन चुप न रह सका, "यही मेरा रास्ता है—एक ही रास्ता। इसलिए मैं अपनी एक ही परछाईं देखता हूँ।"

"मैं तो सपने गढ़ती हूँ!" नीलू हँस पड़ी, "इसलिए मैं तो एक नहीं, दो नहीं, एक साथ हज़ार-हज़ार नित-नई परछाइयाँ देखती हूँ। दादा, मुझे कोई उपाय बताओ। कथाओं से नहीं, मेरी तो इन परछाइयों से ही रक्षा करो। मेरा एक मन तो कहता है कि बड़े कार्य के लिए बड़ा स्थान चाहिए। वरकला तो क्या, मुझे तो त्रिवेन्द्रम् भी छोटा लगता है। नृत्य-कला में मेरा मन रमता है। देखें मेरे सपने मुझे कहाँ उड़ा ले जायँ।"

"तब तो तुम भी बम्बई पहुँचकर रहोगी नीलू!" शंखधरन ने गम्भीर स्वर में कहा, "मुझे सपनों का रोग नहीं। मुझे फिल्म के वेसुरे आलापों का भी रोना नहीं। मेरा मन उखड़ा-उखड़ा नहीं। यह ठीक है कि हमारे वंश में बीस पीढ़ियों से संगीत नहीं चला आ रहा। संगीत मेरे रक्त में नहीं। पर लगता है, सृष्टि की रग-रग से रागिनी उमड़ रही है।"

"वाह-वाह!" नीलू हँस पड़ी, "मैं तो समझी थी कि शंख की ध्वनि कर्कश ही होती है!"

नीलू की आँखों की लौ पछवा के झकोरे खाते दीपक के सदृश कभी

बुझती-सी लगती, कभी फिर जल जाती। फिर वह कॉलेज की अधखिली कलियों-सी बातें ले बैठी, जिनमें तितलियाँ उड़ रही थीं, पूस का कुहासा पहाड़ियों और सागर-प्रान्त को ढाँप रहा था, कुन्तल लहर-लहर उड़-उड़ जाते थे; स्नेह और कुतूहल की गलबहियां; अधरतिया का पूनम चन्दा; जुगनुओं की झिलमिल पाँतें, बिखर-बिखर जाती-सी; नृत्य की पुकार; स्नेह की टेर। और इन सब बातों पर फिर वरकला की गेरुआ मिट्टी की छाप लग जाती। मिट्टी की मूर्तियों को फिर कोई देव-कथा छू जाती। इनमें कुछ भी तो गोपनीय नहीं था। आगे जाने अथवा पीछे हटने की सब साध भुलाकर जैसे नीलू एक ही भँवर में घुमड़ रही हो। सँभलकर बोली, "अतीत सूखे पत्तों के सदृश झड़कर गिर भी तो नहीं सकता।"

गोबिन्दन ने एक ही उत्तर दिया, "बम्बई दूर नहीं!"

नीलू बोली, "अभी कुछ दिन गुरुदेव से संगीत का अभ्यास करूँगी। फिर अपने पंख खुले छोड़ दूँगी। कहीं भी उड़ा ले जायँगे मेरे सपने! मुझे कई-कई परछाइयों की परवाह नहीं। मैं सपने बुनती हूँ।"

"या सपने तुम्हें बुनते हैं।" गोबिन्दन हँसा, और फिर उसने गम्भीर स्वर में कहा, "पिछले पाँच बरस मैंने बम्बई में बिताये। बहुत देखा, बहुत सीखा। बहुत कष्ट सहे। सुख भी दूर नहीं। बम्बई दूर नहीं—मेरे सपनों की बम्बई, जो मुझे म्यूज़िक डाइरेक्टर मानेगी।"

"कैसा है फिल्मों का संसार, दादा?" नीलू पूछे बिना न रह सकी, "क्या मुझे भी वहाँ काम मिल सकता है?"

"क्यों नहीं? पर इसके लिए बहुत साहसी और ढीठ बनना पड़ता है।"

"वह मैं बन लूँगी।"

"तो काम भी मिल जायगा। जो लोग फिल्म-जगत् में आज महान् समझे जाते हैं, जिनके नाम की आज धाक है, उन्हें शुरू-शुरू में फ़िल्म-स्टुडियो में घुसने का रास्ता नहीं सूझता था। जीवन उन्हें धता बताने पर तुला हुआ था। फिर वे घुस ही गए। संघर्ष चला, जिसे बम्बई की

भाषा में कहेंगे 'कड़की'। मैंने भी संघर्ष किया है। मेरा कड़की का युग चल रहा है।"

"मेरे पिताजी कहते हैं, हमारे भीतर जो बीज है, जो सत्य है, उसे पहचानो, उसी का विकास करो।"

"और जो हमारे भीतर झूठ का बीज हो ? झूठ का भी बीज होता है। बम्बई में कड़की के युग से गुजरते समय झूठ का बीज भी उगाना पड़ता था।"

"यही तो मेरे पिताजी भी कहते हैं। नाटक में सभी पात्र होते हैं—अच्छे भी, बुरे भी।"

"कोई-कोई पात्र तो जीवन-भर झूठ का झण्डा उठाये रहता है, और एक बार तो सत्यवान को भी कहना पड़ता है—अच्छा, तो आओ, झूठ के साँप, मुझे डस लो।"

शंखधरन चुप न रह सका, "सत्यवान को तो मरकर भी जीवन-दान मिल गया था !"

नीलू की आँखें शंख की ओर घूम गईं, "वह सब तो सावित्री के कारण हुआ। यम-सावित्री के प्रश्नोत्तर तो प्रसिद्ध हैं। सावित्री की निष्ठा रंग लाई, सत्यवान वापस मिल गया !"

शंखधरन बोला, "इससे हम क्या सिद्ध करना चाहते हैं ?"

नीलू मुस्कराई, "हीरा तो स्वयं उठकर बाज़ार में नहीं जाता, मनुष्य जाता है। हीरे और मनुष्य में बस यही अन्तर है।"

"तो क्या तुम्हारे लिए भी बम्बई दूर नहीं रही ?" शंखधरन झुँझलाया, "तब तो तुम सपने नहीं बुन रहीं, सपने तुम्हें बुन रहे हैं, जैसे गोबिन्दन के सपने उसे फिर बम्बई खींच रहे हैं।"

गोबिन्दन ने ब्रह्मा-मण्डप की मेहराब से गर्भ-गृह के सामने वाले मुख़-मण्डप के छज्जे पर दोनों ओर लक्ष्मी और सरस्वती की मूर्तियों पर फिर नज़र गड़ाई। वह बोला, "वरकला में किसी को भी अपनी रचना पर घमण्ड नहीं। किसी को भी ब्रह्मा के सदृश 'भिक्षां देहि' कहकर

प्रायश्चित नहीं करना पड़ता। सब परम्परा की कठपुतलियाँ हैं। किसी की भी अपनी कोई रचना नहीं। मैंने कठपुतली बनने से इन्कार किया। मैं बम्बई भाग गया। वरकला मेरी जन्मभूमि है, बम्बई कर्मभूमि! और देखिए, बम्बई में सच-झूठ का अपना दर्शन है, पाप-पुण्य के देवासुर संग्राम के लिए बम्बई का फ़िल्म-जगत् प्रसिद्ध है। वहाँ कई बार अमृत-मन्थन हुआ। दीवाला निकलने पर भी सेठ बनने का सपना देखते रहना—यह है बम्बई। गिरकर भी यही मानकर चलना कि अभी पीठ नहीं लगी। बम्बई की भाषा में दो शब्द परम आवश्यक हैं—'चालू' और 'खलास'! बस यही कोशिश रहती है कि खेल चालू रहे, खलास न हो जाय।"

नीलू ने दोनों हाथों से वेणी में नीले फूल को फिर से खोंसते हुए कहा, "मेरे पिताजी कहते हैं, जब रंगमंच पर झूठ का झंडा उठाने वाला पात्र अपनी जीवन-लीला समाप्त करता है—इसी को बम्बई की भाषा में कहेंगे—जब उसकी जीवन-लीला खलास होने लगती है तो वह जाते-जाते सच को चुनौती देता जाता है—बेटा, तुम्हें भी कुछ करके दिखाना होगा।"

"इसके लिए तो जन्मभूमि छोड़कर बम्बई जाना पड़ता है!" गोबिन्दन हँस पड़ा, "दूर बाजार में जाना पड़ता है। अपना मूल्य सिद्ध करना होता है। कन्या का विवाह होता है तो वह नैहर का घर छोड़ कर ससुराल जाती है। यही हाल कलाकार का है।"

शंखधरन ने गम्भीर होकर कहा, "इसी को गुरुदेव की भाषा में यों कहेंगे—कलाकार को भी माँ बनना पड़ता है!"

नीलू की वेणी पर नीला फूल मुस्करा रहा था। उसकी आँखों में दूर के सपने लहरा रहे थे। सँभलकर बोली, "दोपहर का सूर्य सिर पर आ गया। माँ राह देख रही होगी।" और फिर हँस पड़ी, "बम्बई जाऊँगी तो वहाँ कौनसी माँ रास्ता देखेगी?"

"मैं तो यहीं साधना करूँगा!" शंखधरन ने दृढ़-घोष स्वर में कहा,

"यहीं, अपने वरकला में, जहाँ तपस्या करके दस प्रजापति शापमुक्त हुए थे।"

"हमें तो किसीने शाप नहीं दिया !" गोबिन्दन हँस पड़ा, "हमारे शापमुक्त होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।"

नीलू बोली, "प्रजापतियों के शापमुक्त होने की कथा मेरे पिताजी को बहुत प्रिय है। जब वे कॉलेज में प्रिंसिपल थे, तो विद्यार्थियों के सम्मुख वरकला की प्रशंसा के पुल बाँधते समय यह कथा भी अवश्य ले बैठते थे।"

"हम भी सुनेंगे वह कथा, नीलू ! तुम सुनाओ, संक्षेप में।" गोबिन्दन मुस्कराया, "देव-कथा की बाँसुरी बजाओ, नीलू ! कथा कहने का भी एक ढंग होता है, वह तुम्हें ही आता है।"

नीलू दोनों हाथों से वेणी को ठीक करने लगी। गोबिन्दन ने नीले फूल को सँभालते हुए कहा, "फूल न गिर जाय।"

नीलू मुस्कराई, जैसे नीला फूल भी मुस्करा उठा।

"अब देर नहीं होती !" शंखधरन ने उठना चाहा।

"अरे बैठो अभी। नीलू की देव-कथा इस गोष्ठी की अन्तिम वस्तु होगी। और देखो नीलू ! पूरा चमत्कार दिखाओ। यह कथा कुछ-कुछ भूल चुका हूँ। पाँच बरस वरकला से बाहर जो रहा। तुम्हारे मुँह से सुन लूँगा एक बार, तो फिर नहीं भूलूँगा। कथा की महकती आत्मा शब्दों में खिल उठे। शब्दों में अमिय-रसधार बहा दो। यह न हो—शब्द आये, शब्द गये। शब्दों में अर्थ की लय जगा दो। नीलू, तुम्हारी क्या बात है !"

"यह विरुदावली है अथवा मसका पालिश ?" नीलू ने हँसी दबाते हुए कहा, "बम्बई की सभ्यता का असली रंग है मसका पालिश, जो चालू और ख़लास के बाद नहीं, पहले आता है। खैर छोड़ो। मेरे पिताजी कहा करते हैं, यह देव-कथा गम्भीर है, मनोहर है, गरजती-गूँजती आन्दोलिता सागर-लहर नहीं; यह गम्भीर है साम-गान सी, क्योंकि इसमें

साम-गान का उल्लेख आता है। और वे कहते हैं...''

''वे कुछ भी कहते हों,'' शंखधरन झुँझलाया, ''तुम कथा सुनाओ और फिर उठने की बात करो।''

नीलू कथा कहने लगी—

''एक बार वीणा पर साम-गान की धुन बजाते नारद विष्णु-लोक पहुँचे। भगवान् उनके वीणावादन पर मुग्ध हो गए।

''नारद वहाँ से चले तो भगवान् भी पीछे-पीछे हो लिये। इसे कहते हैं संगीत का चमत्कार।

''ब्रह्मलोक में पहुँचकर नारद साम-गान की वही धुन ब्रह्मा के सम्मुख खड़े होकर बजाने लगे। सहसा ब्रह्मा ने नारद के पीछे खड़े विष्णु को देख लिया। ब्रह्मा ने साष्टांग प्रणाम किया।

''विष्णु झट लुप्त हो गए। प्रणाम् के पश्चात् ब्रह्मा उठे तो प्रजापति एक साथ अट्टहास कर उठे। उन्होंने यही समझा कि आज ब्रह्मा ने नारद को ही साष्टांग प्रणाम किया है।

''ब्रह्मा ने प्रजापतियों को शाप दिया—'मर्त्यलोक में पहुँचकर जन्म-मरण चक्र में फँसकर कष्ट भोगो।'

''प्रजापतियों को दुखी देखकर नारद बोले—'मैं एक स्थान बताता हूँ, जहाँ जाकर तपस्या करने से तुम शापमुक्त हो सकोगे।'

''नारद ने अपना वल्कल नीचे फेंक दिया जो एक नारियल-गाछ पर आ लटका। वरकला की गेरुआ धरती पर ही था वह नारियल-गाछ। वल्कल का ही अपभ्रंश है वरकला!

''अपना तो वरकला ही ठीक है!'' शंख मुस्कराया, ''यही अपनी जन्मभूमि, यही कर्मभूमि!''

गोबिन्दन हँसकर बोला, ''वरकला का एक अर्थ 'श्यामलता के बीच से झाँकता दूज का चाँद' भी तो है! 'वर' और 'कला'। 'वर' हुआ 'वार', अर्थात् पूर्ण अथवा श्यामल 'वार' ही घिसकर 'वर' बन गया। कला अर्थात् दूज का चाँद। इस प्रकार वरकला का यही अर्थ हुआ।''

"भरपूर दूज का चाँद, अथवा श्यामलता के बीच से झाँकता दूज का चाँद !" नीलू हँस पड़ी, "मेरे पिताजी तो वरकला का यह अर्थ कभी स्वीकार नहीं करेंगे । मुझे अच्छा लगा, दादा !"

शंखधरन उठकर खड़ा हो गया ।

नीलू ने गोबिन्दन को हाथ से पकड़कर उठाते हुए कहा, "तुम्हारा अर्थ मुझे अच्छा लगा । इस पर बम्बइया बुद्धि की छाप है । अब यह छाप मेरे सपनों पर लगेगी । मेरे सपनों की श्यामलता के बीच से झाँकता दूज का चाँद मुझे वरकला में बन्द करके नहीं रह सकता । क्यों दादा, ठीक है न ? मेरी जन्मभूमि है वरकला, कर्मभूमि का अभी कुछ ठीक नहीं !"

७:

दामोदरन को सब स्मरण था, जैसे यह कल की बात हो। वर्षा के दिन, मेघ मृदंग बजा रहे थे; वह मेघल आकाश जैसे बराबर उसकी स्मृति में देश-काल की कजरारी-कटीली चितवन-छाप लगा रहा हो। ऐसी ही भीनी गन्ध उठ रही थी उस दिन भी ! पछवा की बाँसुरी बज रही थी आज ही के समान। झर-झर झरते जल का सम्मोहन, कोर-कोर वर्षा-रागिनी ! कई बार वर्षा-ऋतु आई और चली गई। उस दिन की स्मृति मन में रमी रही, मीनाक्षी मन्दिर के सहस्र-स्तम्भ-मण्डप-सी। शंख पीतल की मातृ-मूर्ति की घिसाई कर रहा था, जब रुद्रपदम् आज ही के समान बाहर से भीगकर दुकान में आ बैठे थे, आज ही के समान।

"वस्त्र बदल लो, दादा !"

"मैं भीग गया, चिन्ता नहीं। वर्षा अपना कार्य करे, हम अपना। दो रागों के बीच का विराम समझो। चिन्ता नहीं।"

"वस्त्र तो बदल ही लो।"

"वर्षा में भीगना ही तो वरकला की महिमा है। आज मेरा जन्म-दिवस है। बावनवाँ लग गया आज !"

दामोदरन ने 'मुण्डु' (वेष्टि) निकालकर दिया, और एक नया पटका भी, "वस्त्र बदल लो भीतर जाकर। फिर बात करेंगे।"

रुद्रपदम् को कमर में सूखा मुण्डु पहनते देर न लगी। सूखा पटका

कन्धों पर डाल लिया।

मूसलाधार पानी पड़ रहा था। बीच-बीच में बिजली चमक जाती। वरकला में दो बार वर्षा ऋतु आती थी—एक बार पश्चिमी मानसून की लाई हुई, दूसरी बार पूर्वी सागर की। धान की फ़सल भी इसी हिसाब से दो बार कटती थी। पश्चिमी मानसून आने पर ही वर्षा का ठाठ बँधता था। कुछ दिनों के विराम के बाद दूसरी वर्षा तो मानो वैसे ही मन रखने को आती हो। तब पानी कहाँ झरता, ऐसा मूसलाधार कहाँ?

"वर्षा के सब अपराध क्षमा!" रुद्रपदम् मुस्कराए, "और सुनो। आज का ही तो दिन था। छः वर्ष पहले। स्मरण करो भला!"

"मुझे सब स्मरण है, दादा! कैसे भूल सकता हूँ? वर्षा की आँखों में मेघल सपने तैर रहे थे। मेघों के मृदंगवादन ने वर्षा-राग में नये ताल जड़ दिए थे।"

पछवा के झकोरे। झर-झर झरता जल। बिजली की खिलखिलाती हँसी। पाप-नाशा की ओर से उमड़ता सागर का द्रुत-गर्जन। झर-झर झरता जल जैसे कोई अन्तर्कथा कह रहा हो। अनगिन मेघों का सराबोर करता जल जैसे कोई मेघ-मल्हार छल-छल छलक रहा हो।

दामोदरन हँसकर बोला, "आज ही के दिन, छः वर्ष पूर्व, तुमने मुझसे एक मूर्ति ली थी, दादा! उसका मोल कब चुकाओगे?"

"वह पीतल की मूर्ति तो नहीं!" रुद्रपदम् मुस्कराए, "वह तो हाड़-माँस की मूर्ति है। वह मूर्ति संगीत सीख रही है। उस मूर्ति से एक दिन मुझे गुरुदक्षिणा मिलेगी।"

"जिस दिन वह मूर्ति संगीत में पारंगत हो गई, हम तुम्हें हाथी पर चढ़ाएँगे, दादा!"

"संगीत-विद्या तो बहुत लम्बी दौड़ है। जब दोनों कूल बोलने लगें, तब समझो सरस्वती का वरदान मिला।"

"गुरु की कृपा हो तो सरस्वती का वरदान कौन दूर है?"

वर्षा के नये राग में दूर से उठता सागर-संगीत खो गया। वर्षा की जल-चादर में आर-पार देखना सहज न था, मानो वरकला वर्षा की इच्छा पर ही जी रहा हो। कोर-कोर पहुँच रहा था वर्षा-जल। वृक्ष प्रसन्न थे; बालक, युवक, वृद्ध—सभी खिल उठे।

"उस दिन भी ठीक ऐसी ही वर्षा हो रही थी, दादा! छः वर्ष पूर्व।"

"आँख झपकते में बीत गए ये सब बरस। समय की गरिमा सागर-सी विशाल है। समय आकृति देता चलता है, माथे पर झुर्रियाँ लाता है, गाछ के तने पर आयु के चिह्न छोड़ जाता है।"

"वर्षा के समान ही समय भी तो दिन-रात बरसता है, दादा! एक पीढ़ी जा चुकी होती है, एक पीढ़ी आ रही होती है और एक पीढ़ी—जैसे हमारी पीढ़ी है—जाना नहीं चाहती, टिकी रहना चाहती है जमकर। पर एक दिन जाना ही होगा, दादा! ऋतुक्रम के समान हम फिर लौट-लौटकर आते हैं—यह बात तो तुमने ही कही थी अभी उस दिन!"

"सो तो ठीक है। ऋतु आयु है, गाछ है जीवन! जो पत्तियाँ झर जाती हैं, खाद बन जाती हैं। नई पत्तियों में खाद की लालसा-आकांक्षा हरियाती-लहराती है मुड़-मुड़! यही जीवन है। हमारे पुरखे हममें हरियाते-लहराते हैं।"

जल-थल एक था। बूँदों की चितवन में कोई प्रश्न नहीं था। धरती की जिज्ञासा प्रतिपल भीनी गन्ध का आँचल थाम रही थी। हर क्षण दूध की फेन-सरिस मुस्कान नूतन सौरभ का अभिवादन कर रही थी। वरकला में वर्षा ऋतु का यही रंग था। वर्षा है नवजात वर्तमान। वर्षा का चिर-सत्य प्रश्न नहीं पूछता। बरसती बूँदों की परछाइयाँ गले मिल रही थीं। धरती की गेरुआ मिट्टी कजरा चली थी। नये रंग का आँजन आँजे बाँकी-कटीली गन्ध-चितवन। कँपती बरौनियों की बिरमती-सी अभिवादन-भाषा मुखर हो उठी थी।

"इसी तरह हुआ करेगी वर्षा, जब हम नहीं होंगे।"

दामोदरन मूर्ति की घिसाई करता रहा।

"हम तो सदा होंगे। अरे, आने वाली पीढ़ियों में हम ही तो होंगे! इसी तरह कुहनी टेके लेटे-लेटे माँ-धरती गाछ-छौनों को दूध पिलायेगी। यह मेघल आकाश तो हम जन्म-जन्म देखते आये हैं। इसी जन्म में देखा होता तो क्या इतना प्रिय लगता ?"

"ऋतु में ऋतु बाँहें डालती है, पीढ़ी में पीढ़ी—यह भी तुम्हारी ही सूक्ति है, दादा! हाथी की ईख से भारी! हड्डियाँ खाद बनती हैं—नये-नये राग-रागिनियों की खाद। खाद बनना ही महिमा है। नई पीढ़ी में पहली पीढ़ी के सपने ही खिलते हैं। नई पीढ़ी की साँस में पहली पीढ़ी की साँस चलती है।"

छपाछप नहा रही थी धरती। वर्षा थमने का नाम ही न लेती थी। सोंधी गन्ध सावधान, स्नेहमयी दृष्टि से वरकला की गगन-रागिनी में डूब रही थी। मन के सात पाताल में कहीं भय न था। वर्षा नर्तकी के पैर में नाचती थी। ताल समीप आ गया था। वर्षा का अपना छन्द था, जिसमें मेघों के बन्द ढीले पड़ रहे थे। जल ही प्यार का सार था, जल ही विस्तार। बीज-शिशु को धरती का दूध चाहिए। माँ धरती को वर्षा का वरदान! हड्डियों की खाद वर्षा का आह्वान करती आई थी—अमिय-रसधार का आह्वान। वर्षा की आँखों में हड्डियों की खाद मुस्कराती थी, नये-नये राग जोड़ती थी।

"आज के दिन ही तुमने मेरे शंख को शिष्य बनाया था, दादा!"

"अब तो गोबिन्दन भी आ गया। पाँच बरस से शंख उदास था।"

"पिता-पुत्र में मेल बैठ गया, तो बाल्यकाल के मित्र कैसे नहीं चहकेंगे! गोबिन्दन संगीत में मन लगा रहा है न ?"

"संगीत तो उसके रक्त में है। उसकी पकड़ भी ढीली नहीं।"

"फिर कमी किस बात की है ?"

"यही रट लगाये रहता है—शास्त्रीय सङ्गीत नहीं चलेगा!"

"अभी बच्चा ही तो है। उसे समझ आ जायगी। जो गुरुजन हैं,

शिष्यों की भोली आलोचना से क्यों खीझें ? जिज्ञासा का उत्तर क्रोध नहीं। जिज्ञासा तो मीमांसा चाहती है। सब ठीक हो जायगा, दादा ! एक बात पूछूँ ? याद है, कैसे शंख को मुझसे माँगा था ? मैं तो समझ ही नहीं सका था जब तुमने आकर कहा—मैं एक मूर्ति माँगू तो दोगे ? मैंने उत्तर दिया—उठा लो, दादा ! पूछने की क्या बात है ? मैं अपने दादा से मूर्ति का मोल तो नहीं लूँगा। मैंने सोचा था, तुम मातृ-मूर्ति ही लोगे। तुम्हारे मन में तो दूसरी ही मूर्ति की चाह थी। तुम मुस्कराये। दादा, तुम्हारी वह मुस्कान मुझे आज भी याद है।"

"हाँ याद आ गया मुझे भी ! मैंने कहा था—मैं तो जनार्दन स्वामी के आशीर्वाद से अभिसिक्त हाड़-माँस की मूर्ति लूँगा।"

"तब तो तुम्हें सब याद है, दादा ! हमारा दादा बहुत अच्छा है। सब याद रखता है। हाँ तो तुम्हारी आँखों में जिज्ञासा देखकर मैंने कहा था—तुम शंख को लेना चाहते हो, ले लो !"

"मुझे तुम्हारे वे शब्द कभी नहीं भूल सकते। अपना शंख मुझे देते हुए तुमने उसके कान में ये शब्द डाले थे—शंख ! आज से तुम मेरे नहीं, दादा के पुत्र हो ! यह तो तुमने ठीक ही कहा था। शास्त्र भी यही कहता है—मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव।"

"मेरा शंख तो भाग्यशाली है दादा ! उसे तुम्हारे जैसा गुरु मिला। और देखो दादा, गोबिन्दन से तो वह इस जन्म में होड़ नहीं ले सकता। बीस पीढ़ियों से जिसके रक्त में संगीत हो, उससे भला कोई क्या खाकर होड़ लेगा ?"

"सो तो ठीक है। सुना है, बम्बई में फ़िल्मों के कुछ म्यूज़िक डाइरेक्टर गोबिन्दन की सूझ-बूझ की प्रशंसा करते नहीं थकते।"

"फ़िल्मी लाइन तो बुरी नहीं, दादा ! बहुत पैसे मिलते हैं। पैसे के बिना तो गाड़ी नहीं चलती। पैसे ही गाड़ी के बैल हैं।"

"पर फ़िल्मों में संगीत की जो दुर्गति हो रही है, उसे कैसे क्षमा किया जाय ? एक राग की टाँग तोड़कर दूसरे में लगा दी। एक रागिनी की

अन्तड़ियाँ दूसरा मे डाल दीं। इसे तुम साधना कहोगे ? यह तो साधना का विद्रूप ही हुआ। शंख को तो उस रास्ते से कोई स्नेह हो ही नहीं सकता। गोविन्दन को उसका चस्का लग गया। कभी कहता है, कच्चे दूध की तरह कच्चा गाना भी तो हो सकता है। कभी कहता है, मार्ग संगीत के साथ-साथ देशी राग तो हर युग में जीवित रहा है। कभी पूछता है, शास्त्रीय मार्ग संगीत से वरकला के मछुओं का सागर-सङ्गीत किस तरह शास्त्र-विरुद्ध हुआ ? मैं तो उसके इन प्रश्नों के कारण बहुत दुःखी हूँ। उसे यहाँ आये पाँच माह से ऊपर हो रहे हैं, पर उसका मन बम्बई में है।"

"वह फ़िल्मों में सफल हो सके तो क्या बुरा है, दादा ?"

"मैं तो चाहता हूँ, वह शंख के साथ-साथ चले। शंख उससे बहुत आगे है। फिर भी गोबिन्दन परिश्रम करे तो एक ही बरस में शंख के साथ हो सकता है। शंख की एक विशेषता यह है कि षड़ज और पंचम उसके कंठ में समान लाघव से उसका साथ देते हैं। गोबिन्दन का कण्ठ उतना अच्छा नहीं। शंख पर मुझे गर्व है।"

"बात तो तब है दादा, कि जैसे त्रिवेन्द्रम् के संगीत-सम्मेलन में प्रसिद्ध संगीताचार्य फैयाज़ खाँ ने हमारे दादा की कला पर रीझकर उन्हें गले से लगा लिया था, वैसे ही फैयाज़ खां का पट्टशिष्य कल को हमारे शंख की कला पर रीझ जाय। एक बात पूछूँ दादा ! क्या फैयाज़ खां भी दीप-ज्वाल[1] पक्षी की आयु एक सहस्र वर्ष की मानते हैं ? क्या वे भी मानते हैं कि दीप-ज्वाल की चोंच में सात छेद होते हैं जिनसे शास्त्रीय संगीत के सात स्वर निकले ? डाकबाबू देशमुख तो इन बातों पर हँसते हैं। कहते हैं, यह तो बहुत बड़ी गप है कि आयु पूरी होने पर दीप-ज्वाल जंगल से घास-फूस इकट्ठी करके दीपक-राग गाता हुआ उसके चतुर्दिक् नाचता है और राग से चिता में आग लगाकर जल मरता है और फिर राख के ढेर से दोबारा जी उठता है।"

१. कुकनूस।

"देशमुख बाबू तो शंका-पुत्र हैं। दीप-ज्वाल की कथा में है एक प्रतीक। उसे समझने के लिए बुद्धि चाहिए। वही हड्डियों की खाद वाली बात है। कला कभी मरती नहीं। नई पीढ़ी में पुरानी पीढ़ियों की कला फिर-फिर जी उठती है।"

"देशमुख बाबू तो इस बात पर भी हँसते हैं दादा कि षड्ज मयूर के स्वर से निकला और ऋषभ पपीहे के स्वर से। कहते हैं, गन्धार बकरी के स्वर से निकला है, तो एक दिन संगीत तो बकरी चर जायगी। मध्यम्, पंचम्, धैवत और निषाद क्रमशः कलंग, कोयल, घोड़े और हाथी के स्वरों से निकले, इस स्थापना पर देशमुख बाबू हँस-हँसकर लोट-पोट हो जाते हैं। कहते हैं, यही बात है तो इन पशु-पक्षियों को एक जगह बन्द करके इनसे क्यों नहीं कहते कि मिलकर राग-रागिनियों का आरकेस्ट्रा छेड़ें।"

"देशमुख तो नास्तिक हैं। उनकी बात छोड़ो।"

दामोदरन ने प्रसंग बदलकर कहा, "जो भी यात्री आता है, देवता की मूर्ति ही माँगता है। मातृ-मूर्ति उतनी नहीं बिकती।"

"पर तुम्हारी कला तो मातृ-मूर्ति में ही शिखर पर पहुँच रही है।"

"सो तो ठीक है, दादा! गोबिन्दन बता रहा था कि पाँच बरस पहले जब वह बम्बई गया तो मेरी एक मातृ-मूर्ति वह साथ लेता गया था, और फ़िल्मों की किसी अभिनेत्री को उसने वह मूर्ति उसके जन्मदिन पर भेंट की थी, और उसे वह मूर्ति आज तक पसन्द है। पर शंख की माँ मुझ पर हँसती है। देशमुख बाबू भी हँसते हैं। एक मन कहता है, वही माल बनाओ जिसकी खपत है; एक मन कहता है, मातृ-मूर्ति में अपनी कला को चरम सीमा दो। यही मेरे मन की दुविधा है।"

"यह कहो कि तुम्हें भी दो परछाइयाँ दीखती हैं।" रुद्रपदम् हँस पड़े।

"मातृ-मूर्ति में समय भी अधिक लगता है। देवताओं की मूर्तियाँ ढालने के लिए तो ठप्पे बना रखे हैं। मातृ-मूर्ति के लिए हर बार मोम

से नई ही मूर्ति बनाकर इसका ठप्पा बनाता हूँ। दो-चार मूर्तियाँ ढाल लीं और ठप्पा तोड़ दिया !"

रुद्रपदम् मुस्कराये और दामोदरन के हाथ से मातृ-मूर्ति लेकर ध्यान से देखने लगे। मेघ-गम्भीर स्वर में बोले, "पुत्र का कपोल अपने कपोल से चिपकाये खड़ी है माँ। इस मुद्रा में आदि-शक्ति दूध-गाछ ही तो है !"

वर्षा का जलतरंग पहले के समान ही बज रहा था, जैसे मेघल आकाश की मेघ-रागिनी भी इसी टेक पर झूम उठी—इस मुद्रा में आदि-शक्ति दूध-गाछ ही है !

सात

कल है ओणम्—श्रावण मास के श्रावण नक्षत्र का योग। इसी दिन महाबलि सात पाताल से अपनी प्रजा का सुख-दु:ख पूछने आते हैं। श्रावण से हुआ श्री ओणम्, फिर तिरु ओणम्। तिरु भी सूखे पत्ते की तरह झड़ गया। रह गया ओणम्—केरल का मुख्य त्योहार। ओणम्—मलयालम में सर्वाधिक श्रुतिमधुर शब्द। महाबलि आते थे इसी दिन। घर-घर महाबलि की मूर्ति बनती थी। महाबलि के राज्य में सब सुखी थे—न कोई चोर-उचक्का था, न याचक। तभी तो उस सम्राट् को इतना कष्ट हुआ जो महाबलि का अतिथि होकर रहा। यहीं उस बेचारे का वह नियम टूट गया। वह दान करके ही भोजन करता था, पर वहाँ कौन था जो उसका दान स्वीकार करता? सुख-समृद्धि का सपना देखते वरकला में भी गेरुआ मिट्टी की मूर्ति बनती थी घर-घर। अन्नपूर्णा ने भी बनाई महाबलि की मूर्ति। पर जब गोबिन्दन ने माँ के सामने बैठकर कहा, "मैं तो कल ही बम्बई जा रहा हूँ!" तो माँ को लगा कि ओणम् के दिन महाबलि की कच्ची मिट्टी की मूर्ति उसके आँसुओं से भीग जायगी।

"तो क्या इस वर्ष का ओणम् मेरे लिए आँसू ला रहा है?"

"मैं तो कल ही जा रहा हूँ, माँ!"

"कल तो महाबलि चरण डालेंगे घर-घर। भला कोई ओणम् के दिन भी घर से जाता है! महाबलि तो महादानी थे बेटा! उन्होंने वामन

को अपनी धरती देकर दान की महिमा प्रतिष्ठित की थी।"

"मुझे तो दान की इस महिमा पर हँसी आती है, माँ!" गोविन्दन चुप न रह सका, "और यह भी कल्पना-मात्र है कि दानी को अपने दान का फल प्राप्त करने के लिए फिर से जन्म धारण करना पड़ता है। बम्बई में एक सज्जन कह रहे थे—सब दानशीलता बकवास है। वामन और महाबलि की कथा का वह दूसरा ही अर्थ बता रहे थे।"

"मैं भी सुनूँ!"

"वे कह रहे थे, असल बात यह है कि आर्यों ने दक्षिण में जाकर अपनी धौंस जमाई और इसे ठीक सिद्ध करने के लिए वामन और महाबलि की कहानी गढ़ ली। न केवल यह कथा गढ़ ली, बल्कि दक्षिण वालों को भी इस पर विश्वास दिला दिया। इससे तो दक्षिण वालों की मूर्खता ही सिद्ध होती है।"

"यह तुम नहीं बोल रहे, गोबिन्दन! यह तो बम्बई बोल रही है। छिः छिः! यह अनर्गल प्रलाप तुम्हें अच्छा लगता है! मैं वारी जाऊँ। एक संगीताचार्य के पुत्र के मुख से ये बातें कैसे शोभा दे सकती हैं?"

"वह महोदय तो कह रहे थे माँ कि यह कथा भी आर्यों की विजय-गाथा का ही प्रचारात्मक रूप है कि परशुराम ने गोकर्ण के स्थल पर खड़े होकर सागर में अपना परशु फेंका और वह कन्याकुमारी के समीप जा गिरा और गोकर्ण से कन्याकुमारी तक सागर में से केरल की धरती निकल आई!"

"हरि ओइम्!" अन्नपूर्णा ने गोबिन्दन के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "मेरे पुत्र होकर तुम इतने नास्तिक कैसे बन गए? बम्बई में यही सब बातें सीखनी हों, तो बम्बई जाने का विचार ही छोड़ दो!"

"तुम ही तो कहा करती हो माँ कि सुनो सबकी और करो अपने मन की।"

"सो तो मैं अब भी कहती हूँ!"

"बम्बई में तो मैं अगस्त्य की कथा पर विचार करते हुए इसी

निष्कर्ष पर पहुँचा कि आर्यों द्वारा दक्षिण-विजय का यह एक और चमत्कारपूर्ण प्रचार है। तुम्हारा मन मानता है माँ कि अगस्त्य को विन्ध्य पर्वत ने दण्डवत् प्रणाम किया था और अगस्त्य ने उसे आज्ञा दी थी कि जब तक मैं लौटकर न आऊँ तुम इसी प्रकार लेटे रहना ?"

"कथा तो कथा है। इससे अच्छी शिक्षा ही लेनी चाहिए, बेटा !"

"तुम्हारा मन मानता है माँ कि अगस्त्य ने सागर-जल से आचमन करके सम्पूर्ण सागर को सुखा डाला था, और पीछे वरुण देव की विनीत प्रार्थना पर ही ऋषि ने फिर से सागर का जल लौटा दिया था ?"

"तर्क हर जगह तो नहीं चलता, बेटा !"

"यह कहना कि दक्षिण भारत में आकर अगस्त्य ने तमिल भाषा का सर्वप्रथम व्याकरण तैयार किया, मुझे तो इसमें भी आर्यों के पुरातन प्रचार-साधनों की ही गन्ध मिलती है। आश्चर्य तो यह है कि दक्षिण वाले मज़े से इन वार्ताओं पर विश्वास किये बैठे हैं।"

माँ ने बेटे के सामने त्योरी चढ़ाना तो उचित न समझा। मिसरी और इलायची देते हुए बोली, "हर दिन ओणम् हो, मैं वारी जाऊँ ! क्या तुम तीन दिन भी नहीं रुक सकते ? अपने पिता और शंख को त्रिवेन्द्रम् से लौट आने दो, फिर चले जाना। मैं तुम्हें रोकूँगी नहीं। मैं तो उलटी तुम्हारे पिता से भी तुम्हारे ही पक्ष की बात कहूँगी।"

माँ सामने बैठी थी, मातृ-मूर्ति के सदृश। अनेक अनुभवों ने उसके मुख पर रेखाएँ डाल दी थीं। उसके माथे पर समय ने हल चलाया था और उसकी रेखाएँ कनपटियों तक चली गई थीं। गोबिन्दन को लगा, माँ के दूध का मोल तो बड़े-बड़े ऋषिवर और युग-पुरुष भी नहीं चुका सके। माँ ने ही ये आँखें दीं, जिनसे मैं देख सकता हूँ। उसने मन-ही-मन कहा—स्नेहमयी माँ, प्रणाम ! पुण्य गर्भ-क्षेत्र ! मेरी आदि-जन्मभूमि! तुम्हें शत-शत अभिवादन ! जैसे उसने मूर्तिकार की दृष्टि से नहीं, पुत्र की दृष्टि से ही माँ को देखा हो। मन में आया, तीन दिन ही की तो बात है, क्यों न रुक जाऊँ ? माँ को दुःख होगा। माँ ठीक सोचती है। ओणम्

के दिन तो मुझे नहीं जाना चाहिए। चलकर नीलू से कहता हूँ, वह भी मान जायगी। तीन दिन बाद ही सही। माँ को रुष्ट करना ठीक नहीं।

फिर बम्बई का जीवन उसकी आँखों में घूम गया। माँ के लिए बम्बई में उतनी सम्मान-भावना न थी। तभी तो झुँझलाकर कोई-न-कोई मित्र पूछ बैठता—'तुम धरती पर उगे थे या आकाश से गिरे थे?' कितनी विचित्र बात थी कि किसी का रूमाल भी इधर-उधर हो जाय, तो उसका कंघा-बदल भाई उसके कंधे से बाल साफ़ करते हुए यही कहता—'क्या वह तुम्हारी माँ के पास चला गया?' यह बात तो बहुत बार सुनी गई—'तुम्हारी माँ का सिर!' यह उस समय कहा जाता था, जब कोई किसी की बात समझ ही न रहा हो। मुँह चिढ़ाने की बात माँ तक पहुँचकर ही दम लेती थी। मसका लगाने से पैसा आता है तो ठीक है। बस पैसा आना चाहिए। सात रुपये मुफ्त हाथ लगें तो आदमी भिखारी के हाथ पर इकन्नी रखते मरता नहीं।

"वरकला में तो एक पैसा भी क्यों, अधेला लेकर ही भिखारी प्रसन्न हो जाता है, माँ! बम्बई में चार पैसे से कम में भिखारी के मुख से आशीर्वाद नहीं निकलता।"

"तुम तो दानशीलता पर हँस रहे थे!" माँ ने चुटकी ली, "क्या तुम भी कभी भिखारी के हाथ पर चार पैसे रखते हो?"

बाहर अमलतास और बाँस के पत्तों से खेलती हवा के स्वर में सागर का जय-घोष मिल रहा था। गोबिन्दन ने माँ की ओर देखकर कहा, "माँ, तुम कितनी अच्छी हो! तुम्हारी गाली भी मेरे लिए आशीर्वाद है।"

माँ मुस्कराई, "नीलू भी नहीं जायगी। मैं नीलू की माँ को समझा लूँगी। नीलू मान जायगी। तुम नीलू का साथ देने के लिए ही ओणम् के दिन बम्बई जाना चाहते थे? और देखो गोविन्दन, एक बात सुन लो कान खोलकर। मनुष्य को आयु के अनुसार ही बुद्धिमान दीखना चाहिए, उससे अधिक नहीं। यह पुरानी सूक्ति है, सुनहरे शब्दों में लिखने योग्य!"

माँ की आँखों में पुरानी स्मृतियाँ तैर रही थीं। उसने चौंककर गोबिन्दन की ओर देखा। बाँस और अमलतास के पत्ते मानो मृदंगवादन में एक-दूसरे से होड़ ले रहे थे। सागर का जय-घोष उनके मस्तिष्क पर दस्तक दे रहा था। बीच-बीच में झींगुर अपना एकतारा छेड़ते रहे। पछवा के झकोरों में दीवट पर दीये की लौ मानो बुझते-बुझते फिर बच जाती।

"माँ स्रष्टा है, पुत्र रचना !" गोबिन्दन ने मातृ-ऋण का अनुभव करते हुए कहा, "माँ, इसीलिए मुझे शंख के पिता की बनाई मातृ-मूर्ति इतनी अच्छी लगती है। मैं पहली बार बम्बई गया तो ऐसी एक मूर्ति ले गया था। वह मैंने बम्बई में इरा को भेंट की थी उसके जन्मदिन पर।"

"इरा कौन ?"

"इरा एक फ़िल्म-अभिनेत्री है, माँ !" गोबिन्दन ने खिड़की में पड़ी मातृ-मूर्ति की ओर संकेत करते हुए कहा, "यह भी उसी के लिए ले जा रहा हूँ।"

"ऐसी ही मूर्ति उसे पहले भी दे चुके हो। फिर इसमें क्या बात है ?"

"यह कला-दृष्टि से पहले वाली मूर्ति से कहीं अच्छी है।"

"मुझे तो कोई अन्तर नहीं दीखता। एक ही ठप्पे की मूर्तियाँ अलग-अलग कैसे हो सकती हैं ?"

"एक ही ठप्पे वाली बात तो ठीक नहीं, माँ ! देव-मूर्तियों के लिए शंख के पिता ने ठप्पे बना रखे हैं। पर मातृ-मूर्ति के लिए वह पुराना ठप्पा तोड़कर नई मूर्ति ढालते हैं।"

"मुझे तो वैसी ही लगती है। माँ खड़ी है, बालक का कपोल अपने कपोल से चिपकाये।"

"जो स्वयं माँ है, जीवित कला-मूर्ति है, उसकी आँखों में पीतल की इस निर्जीव मातृ-मूर्ति का क्या मूल्य हो सकता है ?" गोबिन्दन हँस पड़ा, "इरा ने फ़रमाइश की थी कि नई मूर्ति लाना। वह माँ तो नहीं बनी,

पर उसके भीतर माँ का हृदय मचल रहा है।"

"उसका विवाह तो हो गया होगा ?"

"नहीं, माँ ! उसका विवाह नहीं हुआ। विवाह कराने की बात उसके सामने है। माँ का स्नेह उसके भीतर उमड़ रहा है। तुमने ही तो एक बार बताया था माँ, कि मातृ-भावना का सम्बन्ध विवाह से उतना नहीं है जितना कन्या के हृदय से। इरा के भीतर जो मातृ-भावना है उसी के कारण उसे यह मूर्ति इतनी अच्छी लगती है। उसकी माँ ने उसे बचपन से ही यह शिक्षा दी थी कि बड़ी होकर उसे गृहस्थी रचानी चाहिए। पर उसकी माँ मर गई और इरा पर घर का भार आ पड़ा।"

"ओह, किसी की माँ न मरे संसार में !" अन्नपूर्णा ने ठण्डी साँस लेकर गोबिन्दन की ओर देखा। और थोड़ा सँभलकर उसने भृकुटि का त्रिशूल बनाते हुए कहा, "तुम मत पड़ना इरा के चक्कर में, क्योंकि बेटा !···" कहते-कहते वह रुक गई और सोचने लगी—इस बात में गोबिन्दन कच्चा नहीं होगा। इस बात में वह अवश्य अपने पिता पर है। वह घटना उसकी कल्पना में घूम गई—गोबिन्दन के जन्म से पहले, इक्कीस वर्ष पहले, जब उसका विवाह भी नहीं हुआ था। कुम्भ कोणम् के रामस्वामी के मन्दिर में संगीत-सम्मेलन हुआ जिसमें गोबिन्दन के पिता का भी गायन और वादन हुआ था। उस पर मुग्ध होकर अन्नपूर्णा ने स्वयंवरा के सदृश रुद्रपदम् को पति चुन लिया। वहाँ से चलकर रुद्रपदम् कन्याकुमारी पहुँचे। अन्नपूर्णा भी अगले दिन घर से भागकर कन्याकुमारी पहुँच गई। धर्मशाला में उसने फिर खड़े-खड़े रुद्रपदम् का वीणा-वादन सुना और साहसपूर्वक कह ही तो दिया, "मुझे अपनी जीवन-संगिनी बना लीजिए !" रुद्रपदम् ने इन्कार में सिर हिला दिया। अन्नपूर्णा ने कन्याकुमारी की चट्टान से सागर में कूदकर प्राणों की आहुति देने का निर्णय कर लिया। अपना निर्णय उसने रुद्रपदम् को भी बता दिया। रुद्रपदम् देर तक आत्महत्या को महापाप सिद्ध करने का यत्न करते रहे। अन्नपूर्णा कब मानने वाली थी ! कैसे वह चट्टान से कूद गई, कैसे रुद्रपदम् ने ही

उसे सागर से निकाला, कैसे उनका विवाह हुआ, यह एक लम्बी कथा थी। गोबिन्दन के पिता ने अपनी आत्म-कथा में यह प्रसंग खूब माँज-माँजकर लिखा था। उन्होंने स्वयं वह अध्याय उसे सुनाया था। इस प्रसंग से गोबिन्दन भी अवगत होगा। अभी उस दिन वह इस ग्रन्थ की अधूरी हस्तलिखित प्रति खोलकर पढ़ रहा था। यह प्रसंग उसकी दृष्टि से कैसे बचा रह सका होगा? ···सहसा वह चौंकी। लेटे-लेटे उसने देखा, दीये के प्रकाश में गोबिन्दन फिर पिता की आत्मकथा खोले बैठा है। अन्नपूर्णा को लगा, बेटा माँ के विवाह-योग का प्रसंग ही पढ़ रहा है। वह चाहती थी, बेटे से पुस्तक की हस्तलिखित प्रति को बन्द रखने को कहे, और स्वयं सारी बात कह डाले।

मन के पट बन्द रहे। माँ ने बात टालकर इतना ही कहा, "खैर, कल तो तुम किसी भी अवस्था में नहीं जा सकते। नीलू न भी रुकी, तो तुम तो रुक ही जाओगे। तीन दिन बाद जाने से बम्बई कहीं भाग तो नहीं जायगी।" सोचते-सोचते पलकें मिच गईं। उसकी चेतना निद्रा में विलुप्त हो चली। अपने जीवन की वह कन्याकुमारी वाली घटना उसे याद आने लगी। बाँस और अमलतास के पत्ते मानो उसे थपकने लगे। सागर का जय-घोष मीठी लोरी बन गया, मानो किसी ने चक्कतीर्थ सरोवर में कंकर फेंक दिया। जल में गोल चक्कर-से पैदा हुए। छोटे भँवर के बाहर बड़ा भँवर। पछवा के झकोरे श्रुति-मधुर स्वर में बोल रहे थे। झींगुरों का सहगान चल रहा था।

"नींद आ गई, माँ?" गोबिन्दन ने पूछ लिया।

माँ कुछ न बोली। वह पड़े-पड़े निद्रा-पथ पर चल पड़ी थी। स्वयं को वह अब तक जीवित मानती आई थी, पर लगा, वह तो उसी दिन मर गई थी जिस दिन वह अपने हाथों से अपने केश नोचकर और छाती पर दोहत्तड़ मारकर कन्याकुमारी की चट्टान से कूद गई। किसी ने मरी हुई मछली सदृश इस नारी-देह को निकालकर सागर-तट की रेती पर डाल दिया। वहीं बैठकर रुद्रपदम् वीणावादन करने लगे।

उसने गलती से स्वयं को मरी हुई समझ लिया था। वह तो वीणा-वादन सुन सकती थी। वह उठकर बैठ गई। आँखों और हाथ के संकेत से निवेदन करने लगी कि वीणा द्रुतलय में बजाई जाय। पर वह तो आत्महत्या की चेष्टा में सफल हो चुकी थी। उसने मृत्यु का आलिंगन कर लिया था। मरा हुआ व्यक्ति तो जी नहीं सकता। स्वयं को सपने में मरा हुआ देख लेना और फिर मृत्यु के चंगुल से बचकर फिर से जीवित हो उठने का स्वप्न-चित्र तो शुभ शकुन था। समझो, आयु बढ़ गई। वह कहाँ मरी थी! चट्टान से छोटी-सी छलाँग लगाने ही से मृत्यु तो आने से रही!···माँ को लगा जैसे किसी ने उसकी आँखों में खौल किया हुआ जस्त डालकर ऊपर से बकरी के कच्चे दूध के फाहे रखकर पट्टी बाँध रखी है। उसकी कनपटियाँ कसी हुई थीं। कानों पर भी पट्टी बँधी थी। फिर भी वह बराबर वीणा-वादन सुन रही थी। फिर वीणा-वादन में झींगुरों का शोर गड्ड-मड्ड हो गया। बाँस और अमलतास के पत्तों की तालियाँ और पछवा के झकोरे घुल-मिल गए····

गोबिन्दन आनन्दपूर्वक पिता की आत्मकथा पढ़ता रहा। सहसा अन्नपूर्णा की आँख खुली तो वह बोली, "अब सो जा, बेटा! पढ़ने के लिए दिन थोड़ा है?"

उसने अपना सपना बेटे को सुनाया और फिर आत्म-विभोर स्वर में बोली, "समझो मेरी तो आयु बढ़ गई। स्वप्न में अपने को मरा हुआ देखने में यही फल होता है बेटा, दीर्घ आयु का लाभ अवश्य होता है।

"मैं वारी जाऊँ!" माँ ने आदेश दिया, "अब सो जा, बेटा!"

गोबिन्दन बोला, "कहीं-कहीं तो पिताजी की लेखनी बहुत ही चमत्कारपूर्ण हो उठी है, माँ! यह कल्पना कितनी सुन्दर है—हमारी जन्मभूमि में वर्षा ऐसे उतरती है जैसे सहस्रबाहु भगवान् एक-एक बाहु उठाकर हमें आशीर्वाद देते हैं, और मेरा सदैव यह प्रयत्न रहता

है कि वीणा-वादन द्वारा सहस्रबाहु भगवान् के बाहु उठाने का दृश्य स्वरों द्वारा अंकित कर डालूँ। ऐसा प्रतीत होना चाहिए कि झर-झर जल बरस रहा है और हमें वह आश्वासन दे रहा है कि अपने संघर्ष में मानव को भी सहस्रबाहु होना होगा, एक-एक बाहु उठाकर अपने सिर पर सफलता का मुकुट रखना होगा।...माँ, तुम्हें अच्छी नहीं लगती पिताजी की लेखनी ?"

"अच्छी क्यों नहीं लगती, बेटा ?"

"और सुनो, माँ ! यह शब्दचित्र भी बढ़िया है जिसमें हमारे केरल के उस नृत्य का उल्लेख आया है जो नया धान कट जाने पर होता है। धान का ढेर एक विशेष आकृति लिये रहता है। पहले नये धान की पूजा होती है। फिर वयोवृद्ध स्त्रियाँ और पुरुष एक ओर बैठकर गाते हैं और सौभाग्यवती कुलवधुएँ अपने आँचलों की ओट में नये धान की वालियाँ और घी के दीप लिये धान के उस ढेर के चतुर्दिक् नाचती हैं। लगता है, यह नृत्य कभी शेष नहीं होगा।...सुनो, माँ ! बम्बई जाते ही मैं नये धान के इस दीप-नृत्य की संयोजना पूरे पाँचसौ रुपये में बेचकर दिखाऊँगा।"

"आधे रुपये मुझे भेजना !"

"बहुत अच्छा, माँ ! कहो तो पाँचसौ के पाँचसौ ही भेज दूँ।"

"पुरखों का यश बढ़ाओ गोबिन्दन, जैसे भी बढ़ा सकते हो। मैं तुम्हारे बम्बई जाने के विरुद्ध नहीं हूँ, पर चिट्ठी में देर न किया करो। कमाओ-खाओ, आशावादी रहो। परिश्रम से मुँह न मोड़ो। तुम्हारे लिए हर दिन ओणम् रहे ! और सुनो, अब सो जाओ ! कल ओणम् है, महावलि आयेंगे। एक दिन के लिए ही सही। अच्छा अब सो जाओ।"

दीया बुझाकर माँ-बेटा सोने का यत्न करने लगे। पछवा के झकोरे तेज हो गए थे।

सवेरे उठकर माँ के मुँह से पहला बोल यही निकला, "आज ओणम्

है। आज तो तुम बम्बई जाने का नाम न लेना।"

नीलू ने आकर कहा, "मैं तो रुकूँगी नहीं। तुम भले ही रुक जाओ, गोविन्दन !"

"तुम जा सकती हो ओणम् के दिन, तो मैं क्यों नहीं जा सकता हूँ ?" उसने मां को आवाज दी, "माँ, आओ हम फैसला करें।"

"फैसला यही है कि तुम आज बम्बई नहीं जा सकते।" माँ ने अधिकार जताया।

"तुम कहोगी तो रुकना ही होगा।"

"पिता के आने से अगले दिन ही चले जाना।"

महावलि की मूर्ति के सामने खड़ी होकर माँ प्रार्थना करती रही। वह लौटकर आई तो गोबिन्दन उच्च स्वर से नीलू को आत्मकथा खोलकर सुनाने लगा—

"हर दिन ओणम् हो ! अमृत से मंगल-घट भरे ! सब प्रसन्न रहें ! हर संकट टले ! मंगल-ही-मंगल हो !..."

"यही तो मैं भी कहती हूँ !" माँ बीच में बोल उठी, "मंगल-ही-मंगल हो ! हर दिन ओणम् हो !"

"सुनो भी, माँ !" गोबिन्दन फिर उच्च स्वर से पढ़कर सुनाने लगा—

"जय महाबलि ! स्वागतम् श्रीमान् ! आइए, पधारिए ! गेरुआ मिट्टी से वनी अपनी मूर्ति देखिए।

"बड़ों के कहने में रहें घर के सदस्य। मधुर वचन बोलें। यही सूक्ति अलापती है मेरी वीणा !

"सबकी बाँहें तुम्हारे स्वागत में उठ रही हैं। बड़े घरों की कुल-वधुएँ आँखें बिछा रही हैं। नागस्वरम् बज-बज उठता है। हेम-मुकुट पहने, मुस्कराते, महाबलि आये !

"जय विराट् ! जय अखण्ड ! जय अशून्य ! जय अशेष ! बार-बार बज-बज उठती है मेरी वीणा।

"हम निज अहं की बलि दे रहे हैं। हम वीतराग तो नहीं, अरे हम तो रागी हैं।"

"हम दूध-गाछ हैं। बहुत क्या कहें? शुद्ध कच्चे दूध के स्रोत ! हम हाँक दे रहे चिर-अतीत को !

"हम आगत के बीज ! हम कर्मशील ! हम महात्यागी ! हम पल्लव ! हम सदा सृजन में जुटे—सृजन के लीलाधर।

"हम नील-गगन को हाँक मारते हाथ उठाकर ! प्रणाम, अरे हम स्वर के खेवटिया !

"हम अनागता शतियों को फिर-फिर बुला रहे हैं।

"हम स्वर के मछुए—

मछली-जाल उठाये चले जा रहे हम स्वर के रसिया !

हम अतीत की खाद ! महाकल्याण !

आइए, पधारिए, महाराज ! श्री महाबलि, कीजिए सागर-स्नान !

स्वागतम् श्रीमान् ! पुण्य ओणम् के दिन हम करते हैं स्वर-दान !"

सुनते-सुनते माँ आत्मविभोर-सी बैठी रही।

नीलू और गोबिन्दन घूमने चले गए। वे प्रसन्न थे। इसी गेरुआ मिट्टी से उनका जन्म हुआ था। ओणम् उन्हें प्रिय था। महाबलि के आगमन पर फूल-चन्दन-धूप-अर्घ्य देने में वे भी सम्मिलित हुए। आज तो काम-काजी व्यक्ति भी विचर रहे थे। नीलू बोली, "नई-नई भंगिमाएँ लेकर आता है ओणम् शत्-शत् मोड़ मुड़ता, सहस्र-पथ लांघता आता है ओणम् !"

"तुम कविता भी कर सकती हो, नीलू !" गोबिन्दन मुस्कराया, "ओणम् की नानाविध लीलाएँ मुझे भी कम प्रिय नहीं। मेरे मन में कोई शंका नहीं, कोई जिज्ञासा नहीं। चित्र-धवल ओणम् को मेरा अभिवादन !"

नीलू और गोबिन्दन आधा दिन ओणम् का रसास्वादन करते रहे।

"हम तो आज ही जा रहे हैं, माँ !" गोबिन्दन घर आकर बोला।

"यह नहीं होगा।"

"सात मास तो रह लिया, माँ ! तुम्हार मन नहीं भरा ?"

यह तो असम्भव था कि अन्नपूर्णा गोबिन्दन को स्टेशन तक पहुँचाने न जाती। रास्ते में बैलगाड़ी के धचके खाने पड़े, जिनसे अन्नपूर्णा को घृणा थी। उसकी आँखों में आँसू थे।

"मुझे तो लगता है, कल की बात है जब तुम दूध-पीते बालक थे।"

माँ की मुखमुद्रा पर पुरानी स्मृति सजग हो उठी, जैसे उसे पूरा-पूरा स्मरण हो। दूध पीते-पीते गोबिन्दन दाँत मारता था। जोर से दूध खींचता था जैसे कोई उसका पीछा कर रहा हो। स्तनों के नीचे खींच-सी दौड़ जाती थी।

गाड़ी आई तो नीलू की माँ बोली, "जाते ही पत्र लिखना !"

"अवश्य," नीलू ने झूमकर कहा, "मैं भूलूँगी नहीं !"

"ओणम् तो आने के लिए भी शुभ है और जाने के लिए भी !" नीलू के पिता ने व्यवस्था दी।

अन्नपूर्णा की आँखों से झर-झर आँसू झर रहे थे, "बावरी मत हो, बहन !" नीलू की माँ ने अपने आँचल से अन्नपूर्णा के आँसू पोंछ डाले।

"माँ, प्रणाम !" गोबिन्दन ने डिब्बे से मुँह निकालकर कहा। और गाड़ी के घरघराते पहियों की लय पर झर-झर माँ के आँसू झरते रहे !

आठ

सागर-चक्रवाल पर अब सिन्दूर और गुलाल उड़ रहा था। धारी-धारी ऊदा-नीला और जाने क्या-क्या रंग उचक-उचककर अन्नपूर्णा को देख रहा था। सूरज गया, तो ये रंग आये। आज कोई नई बात नहीं। ऐसा ही होता है; ऐसा ही होता आया है। सूरज उगता है; सूरज डूबता है। किरणों की दौड़ा-दौड़ी नित-नित सागर में ही आकर हार मानती है। दिन-भर तो किरणें सभी को 'यह कर ! वह कर !' की सीख देती नहीं अघातीं; इनकी टेर दिन में एक बार भी नहीं थमती। रात तो अन्धी हथिनी है; टटोल-टटोलकर चलती है। इसके लिए सब बराबर हैं। चौक पूरो चाहे पूजा का चन्दा थाप दो दीवार पर। दिन का अभिनय गया। अब यह सिन्दूर-गुलाल का खेल भी चुक जायगा। घर-घर अन्धी हथिनी डोलेगी।

अन्नपूर्णा देख रही थी। सागर-तट पर ज्वार-भाटा मस्त-मगन अभिनय किये जा रहा था। लहरों के मुँह में वही गीत है; गीत का वही मुखड़ा है। एक लहर आती है, फिर दूसरी, फिर तीसरी। एक-दूसरी को पकड़ना चाहती हैं, पकड़ नहीं पातीं। बड़ी लहर है माँ; उससे छोटी लहर, भाई; उससे भी छोटी लहर, परम सुन्दरी बहन। बहन के रूप पर भाई मुग्ध हो उठा। छि:-छि: ! बहन ने अच्छा किया, सागर में कूद गई। भाई भी कब मानने वाला था ! बहन के पीछे कूद गया। दोनों की रक्षा के हित माँ भी कूद गई। बहन सागर की लहर बन

गई। भाई भी लहर बन गया। माँ भी जानती थी यह चमत्कार; वह भी लहर बन गई।

अन्नपूर्णा सोच रही थी। सब छलना है। रंग जगते हैं; रंग बुझते हैं। सब खेल चुक जाता है। सूरज डूबता है तो अन्धी हथिनी घूमने लगती है घर-घर, डगर-डगर। पर ये लहरें कभी नहीं थकतीं। पहले सबसे बड़ी लहर उठती है, जो माँ है; उससे छोटी लहर, भाई; और उससे भी छोटी लहर, परम सुन्दरी बहन। यह तो मात्र कथा है। ऐसा नहीं हुआ होगा। परम सुन्दरी बहन लहर नहीं बन पाई होगी। लहर बनना सहज नहीं।

वह गोबिन्दन के सम्बन्ध में सोचने लगी—जाकर पहुँच की चिट्ठी भी नहीं लिखी। नीलू की माँ को नीलू की चिट्ठी आ गई। उसे किसी विद्यालय में नृत्य-विद्या सिखाने का काम मिल गया। अच्छा है, सब काम करें। सब अपना भार उठाएँ। वाटिका की चारदीवारी पर कुहनियाँ टेके उसने देखा—अब न गुलाल था, न सिन्दूर, न ऊदे-नीले रंग की धारियाँ। सब एकाकार हो गया था—अन्धकार। अब न सबसे बड़ी लहर दीखती थी, जो माँ थी; न वह लहर, जो भाई थी; न परम सुन्दरी बहन की मन्त्र-प्रयोग द्वारा परिवर्तित मुखाकृति ही सबसे छोटी लहर के पीछे झाँककर निरखी जा सकती थी। लहरों के अभिनय का भी एक अर्थ है, जो कथा में ढाल दिया गया। लहरों का अभिनय शेष नहीं होता। यह गिरस्ती निरा दायित्व का पहाड़ है। सब सुख-कल्पना निरी धूप-छाया है।

अन्नपूर्णा को यह बात अच्छी न लगी, जब त्रिवेन्द्रम् से लौटने पर रुद्रपदम् ने गोविन्दन के चले जाने का सारा दोष उसीके माथे थोप दिया। "तुम्हींने उसे बिगाड़ा!" वे कह रहे थे, "तुम्हारे लाड-प्यार ने ही उसमें घर से भाग जाने का साहस भरा!" यह तो वे उल्टी बात कह रहे थे। मैंने कब चाहा, गोबिन्दन भाग जाय? मैंने कब उसे घर से भागने को उत्साहित किया? उसने जाकर चिट्ठी नहीं लिखी, तो यह

भी क्या मेरा दोष है ? बाहर जाकर दुनिया-भर की बातें करते हैं, घर में आकर मितभाषी बन जाते हैं। क्या यह भी मेरा दोष है ? एक ही बात कहेंगे; उसी में डंक रहेगा।

गगन पर चाँद उठा। चाँद मुस्कराया। यह दीवार पर थापा हुआ पूजा का चाँद न था। यह तो सचमुच का चाँद था। चाँद को देखकर तो सागर की लहरें भी चंचल हो उठीं। भाई-बहन-माँ की पहचान तो इतनी दूर से कठिन थी, पर अन्नपूर्णा यह सोचे बिना न रह सकी कि चाँद की किरणों ने उन तीनों लहरों के मुख उजाड़ दिये होंगे। हँसी-ठिठोली से कब पीछे रहीं चाँद की किरणें ! अन्नपूर्णा को लगा, चाँदनी उसे गुदगुदा रही है। यह कैसा अभिनय है ? कैसा आग्रह है ? चतुर्दिक् झिलमिल-झिलमिल ! वहाँ भी चाँद होगा, जहाँ मेरा गोबिन्दन गया। उसने जाकर चिट्ठी भी नहीं दी।

चाँद की ओर एकटक देखती अन्नपूर्णा कुहनियाँ टेके खड़ी रही। गोबिन्दन को भेजने वाली मैं कौन, जैसे वह चाँद से पूछ रही हो ! काले कोस ही सही बम्बई। पर चाँद तो वहाँ भी होगा—यही चाँद। नीलू को चाहिए था, अपने सामने गोबिन्दन को बिठाकर चिट्ठी लिखवाती। एकटक चाँद को देखते रहो, मन कब ऊबता है ! ऐसा ही है माँ का प्यार ! बेटे की एकटक याद अब तो नहीं लाती। अन्धी हथिनी के सिर पर चाँद मुस्करा रहा है। लहरों के गीत का वही स्वर गूँज रहा है। कोई ऊब नहीं। भाई बहन को टेर रहा है; माँ बेटे-बेटी को टेर रही है ! सब मोह का राग है, मोह का वशीकरण-मन्त्र है। चाँदनी छिटकी है। लहरों के गीत में काजू-मदिरा का नशा है। कभी लगता, लहरें गला साफ कर रही हैं। अब जैसे लहरें और भी उच्च स्वर से गा रही हों। स्वरों की सम्बोधन-टेर ऊँची उठती गई, टेर की जय-पताका फहराती रही।

अन्नपूर्णा को याद आया, भोजन से उठकर रुद्रपदमू विद्यालय में चले गये थे। फिर विद्यालय से लौटकर अकेले बैठे लिखते रहे। इनकी

आत्मकथा तो कभी शेष नहीं होगी। एक अध्याय लिखा, पसन्द न आया तो फाड़ डाला; फिर लिखा; मुड़-मुड़ लिखा। विचित्र ही भाषा लिखते हैं। नारियल का छतनार हिलने की उपमा किससे देंगे?—हाथी के कान हिलाने से। कभी लिखेंगे—घृणा-अवहेलना का अपना ताँता रहता है, जैसे मृदंग बजता है। कभी लिखेंगे—ज्वार-सी चढ़ती है घृणा, भाटे-सी उतरती है। कभी लिखेंगे—यज्ञ के सुगन्धित धुएँ के सदृश ऊपर-ही-ऊपर चले जाते हैं आदर्श-मर्यादा के कुण्डल!···ये सब उपमाएँ हमें कहाँ पहुँचाती हैं! मेरे साथ बात करने की फुरसत नहीं। वीणा बजाने बैठेंगे तो भोजन की सुध-बुध नहीं रहती, जैसे यह मेरा ही काम हो कि उनकी भूख को अपनी भूख समझूँ। दामोदरन की दुकान पर बैठे गपशप कर रहे हैं, तो संसार उसीमें डूब जाता है; न घर की चिन्ता, न मेरे स्वास्थ्य की परवाह; मैं बैठी बाट जोहती रहूँ।

कहने को हमारा प्रेम-सम्बन्ध ही हुआ था। मैं ही इन पर मरने लगी थी। मैं स्वयं इनके अंचल से बँधी। इनके संगीत पर रीझकर घर से निकल पड़ी; कन्याकुमारी में चट्टान से छलाँग लगाकर सागर में कूद पड़ी। सोचा था, मैं लहर बन जाऊँगी। वह परम सुन्दरी बहन लहर बन गई थी, तो मैं कैसे नहीं बन सकती? आत्मकथा में वे मुझ पर बाण छोड़ने से नहीं चूकते। एक जगह लिखते हैं—'कहीं विवाह का योग टल गया होता, अथवा जीवन-संगिनी के रूप में मुझे परम सुन्दरी अन्नपूर्णा न मिली होती, तो कदाचित् मैं संगीत के प्रति अधिक संवेदन-शील रह पाता।' यह बात तो वे मुझसे कई बार कह चुके हैं कि विवाहित जीवन के अनेक वर्ष कामिनी-कांचन साधना के ही वर्ष बने रहे। कभी कहते हैं, 'वासना तो उथली है, उस पर तो कला का दूध-गाछ नहीं उग सकता।' कभी कहते हैं—'अन्नपूर्णा, तुम तो मेनका के समान मेरा तप-भंग करने आ निकली थीं। मैंने विवाह क्यों किया?' अब मैं भी जली-भुनी सुना डालती हूँ। मैं साफ कह देती हूँ—'तब तो कामिनी के प्रणय-गान की भीड़ में ही तुम्हें आत्म-तोष मिलता था।'

वे कहते हैं—'सुख का तत्त्व ही जीवन की अन्तिम उपलब्धि नहीं।' इधर वे अपनी आत्मकथा में इस बात पर जोर देते हैं कि कला का सत्य है यातना। इसे ही वे कला-साधना की कसौटी मानते हैं। कहते हैं—'यातना स्वयं रागिनी बन जाती है।' कभी लिखते हैं—'कोई भी सत्य स्वयंसिद्ध नहीं। शंका करके ही चलना होगा। दो परछाइयाँ दीखें, चाहे चार। परछाइयाँ तो परछाइयाँ हैं। कला स्वयं अपना स्तर खोजती है, जैसे गर्भाधान के पश्चात् प्रजनन तक नारी को एक कठिन परीक्षा में से निकलना पड़ता है।'···मैं इसका एक ही उत्तर देती हूँ—'लक्ष्मी के बिना जनार्दन स्वामी भी सम्पूर्ण नहीं और शिव के साथ पार्वती आ जुड़ीं। रागों की भी तो पत्नियाँ हैं—रागिनियाँ!'···एक जगह लिखते हैं—'अब मेरी दृष्टि में मेरी कला ही मेरा ध्येय है। घर की बातों में मेरा मन नहीं रमता!'···मैं सब समझती हूँ। मैं बात करती हूँ तो इनका ध्यान कहीं और रहता है।···एक जगह लिखते हैं—'अब तो कला के पाप-नाशा पर स्नान करके मेरी एक ही परछाईं रह गई, दुविधा जाती रही। संगीत में आत्म-तुष्टि ही मेरा ध्येय है।'···

अन्नपूर्णा का मन क्षुब्ध हो उठा। व्यर्थ है मेरे लिए इनकी विचित्र वीणा। मैं क्यों इसकी धूल झाड़ती रहूँ? घर बने या घर टूटे, मेरी बला से। जब देखो इनका संगीत चल रहा है, फिर संगीत विद्यालय में भी समय देना पड़ता है। फिर छुट्टी हुई तो लिखने लगे या दामोदरन की दुकान पर अड्डा जमाने जा बैठे। घूमने निकल गए। घर की किसे चिन्ता है? घर के लिए मैं रह गई, घर की दासी अन्नपूर्णा। कहने को देवी, वास्तव में दासी। मैंने गोबिन्दन को जन्म दिया, यह भी मेरा दोष; गोबिन्दन अपनी खुशी से बम्बई गया, यह भी मेरा दोष। अब मेरा ठेंगा झाड़े विचित्र वीणा की धूल। मैं भोजन भी नहीं बनाऊँगी।

चारदीवारी से हटकर वह कमरे में आ लेटी। रुद्रपदम् घर आये, तो उन्होंने पूछा, "कुछ पकाया-वकाया नहीं?" अन्नपूर्णा कुछ न बोली।

रुद्रपदम् ने उसे झंझोड़ा। अन्नपूर्णा ने मुँह फेर लिया।

रुद्रपदम् दीये के प्रकाश में बैठे लिखते रहे। फिर वे दीया बुझाकर बिना खाये-पिये ही सो गए।

अन्नपूर्णा को नींद नहीं आ रही थी। वह विचारधारा में बह गई। शंख को तो इन्होंने संगीताचार्य बना दिया। पर पराया बेटा पराया ही रहता है। उसे याद आया कि जब चिलाक्कोर के मछुआटोला में रुद्रपदम् ने अपनी ओर से संगीत-शाला खोली, तो सबसे बड़ी आपत्ति मुत्तु बाबा ने ही उठाई थी। उसने कहा था, "जनार्दन स्वामी के मन्दिर में तो हम जा नहीं सकते, फिर आपका शास्त्रीय संगीत हमारी झोंपड़ियों में घुसने को क्यों मचल उठा है? हमारे पास हमारा संगीत ही रहने दीजिए।" इसके उत्तर में रुद्रपदम् ने कहा था, "मन्दिरों के द्वार भी आप लोगों के लिए खुलकर रहेंगे। आज शास्त्रीय संगीत चलकर आपके द्वार पर आया है, यह उसीकी पूर्व सूचना है।" इस पर मुत्तु बाबा हँस पड़े थे। पर अगले ही वर्ष जब सचमुच राज्याज्ञा से सब मन्दिर उनके लिए खोल दिये गए, तो मुत्तु बाबा यही कहते फिरते थे कि रुद्रपदम् की भविष्यवाणी सच निकली। इस पर प्रसन्न होकर रुद्रपदम् ने एक और भविष्यवाणी की थी—शंख के बाद वरकला का संगीताचार्य कोई मछुआ युवक ही होगा। इस पर मुत्तु बाबा को सन्देह है। सन्देह तो मुझे भी है। यह नहीं होता कि एक ने जो बोल दिया वह अवश्य होकर रहे। यह तो संसार है। बरजोरी नहीं चलती। भाग्यरेखा तो अछोर है। अपने बेटे को वश में न रख सके, सारे संसार का ठेका ले रहे हैं। स्वस्ति-मुद्रा बनाये बैठे रहते हैं। यह सब तो बगुला-भक्ति है!··· वह बार-बार करवट ले रही थी।

रुद्रपदम् कभी के सो गए थे। उनके खुर्राटे सुनाई दे रहे थे; धौंकनी-सी चल रही थी, जैसे यह भी किसी रागिनी का विद्रूप हो। अन्नपूर्णा चाहती थी कि पति को झंझोड़कर जगाये और साफ-साफ कह दे—अब इस घर में मेरे लिए स्थान नहीं रहा, मैं तो चली जाऊँगी; मैं बम्बई जाऊँगी अपने गोबिन्दन के पास। वह मेरा बेटा है। मैंने उसे कोख से

जना है। वह मुझे जवाब तो नहीं दे देगा !...सोचते-सोचते वह सपने में खो गई। पुरखों की बीस पीढ़ियाँ एक स्वर से कह रही थीं—संगीत की जय हो ! अन्नपूर्णा ने वहाँ खड़े-खड़े कानों में अँगुलियाँ डाल लीं। वह कहना चाहती थी—संगीत बहुत बड़ी बकवास है। वहाँ रुद्रपदम् भी आ निकले। बोले—'तुम कब आईं, अन्नपूर्णा ? एक पीढ़ी छलाँगती हुई आती है, दूसरी पीढ़ी से आगे निकल जाती है, जैसे एक रागिनी दूसरी रागिनी से आगे निकल जाय। कहो तुम्हारा क्या विचार है ?'...'अन्नपूर्णा बोली—'ये सब तो आदर्श की बातें हैं। पहले यह बताओ, तुमने मुझे नीबू की तरह कितना निचोड़ा ! मेरे लिए कॉफ़ी बनाओ। मेरे लिए इडली-दोशा बनाओ। बड़े बनाओ। पायसम् बनाओ मुँह मीठा करने को ! और मेरे लिए बच्चे भी जनो। देखो, तुम दूध-गाछ हो, अन्नपूर्णा ! क्यों, तुम्हारा क्या विचार है ?'...'मेरा क्या विचार होगा ?' अन्नपूर्णा ने झुँझलाकर कहा, 'तुम पूरे ठग हो। तुम्हारी ठग-विद्या अब मुझ पर नहीं चल सकती। मुझ पर नहीं चलेगी यह उलटबाँसी। मुख में अमृत, हृदय में विष। तुम्हारी वही रीति है। पर मैं कहे देती हूँ, जो आग खाता है अंगारे उगलता है।'...'अरे-अरे, तुम तो रुष्ट हो गईं, अन्नपूर्णा ! सुनो, एक राग सुनाता हूँ।'...अन्नपूर्णा राग सुनने लगी। प्रेम और उत्कण्ठा का राग था। इसमें आज की अनुभूति थी, कल की भी; युग-युग की।... कहीं से गोबिन्दन भी आ निकला। बोला—'मैं बम्बई तो नहीं गया था, माँ ! तुमने समझ लिया, मैं बम्बई भाग गया था ! वरकला को संगीत प्रिय है, मुझे भी ! मैं पिता का आज्ञाकारी पुत्र हूँ। अगली पीढ़ी का संगीताचार्य क्या सचमुच कोई मछुआ युवक बनेगा, पिताजी ?'... उधर से मुत्तु बाबा आ निकले। छः फुट से ऊपर निकलते हुए, केवल एक लंगोटी में अपनी नग्नता ढाँपे मुत्तु बाबा बोले, 'कहो गुरुदेव, कब जन्मेगा हमारी अगली पीढ़ी का संगीताचार्य ? वचन दिया है तो पूरा कर दिखाओ।'...गोबिन्दन बोला—'यह नहीं होगा।' इस पीढ़ी का संगीताचार्य भी शंख नहीं, मैं हूँ। और अगली पीढ़ी का संगीताचार्य

होगा मेरा बेटा। मैं नीलू से विवाह करूँगा। नीलू दूध-गाछ बनेगी। वह मुझे बेटा देगी। अरे मुत्तु बाबा, क्या आप नहीं जानते कि बीस पीढ़ियों से हमारे परिवार में संगीत चला आ रहा है?"....निद्रा-पथ पर चलते-चलते अन्नपूर्णा दूर निकल गई।

उसकी आँख खुली, तो रुद्रपदम् ओसारे में बैठे वीणा बजा रहे थे।

मन-ही-मन अन्नपूर्णा इस राग पर मुग्ध हो गई, जैसे पहले कभी यह राग सुनने को न मिला हो। वह सोचने लगी, वीणा तभी वीणा है, जब उस पर कलाकार का हाथ चले। नारी भी पुरुष के बिना संगीत-विहीन है। वह उठी और ओसारे में रुद्रपदम् के पास जा बैठी। रुद्रपदम् मुस्कराये और उन्होंने मानो सरस्वती का अभिवादन किया।

अन्नपूर्णा उनके चरणों पर झुक गई। "यह क्या कर रही हो, अन्नपूर्णा?" वे आँखों में अश्रु लाकर बोले, "दोष तुम्हारा नहीं, मेरा है!"

वीणा पर वादक के हाथ चलते रहे। एक बार भी उनके होंठ न हिले, मानो वीणा कह रही थी—अन्नपूर्णा, तुम तो मेरी स्वर-साधना की देवी हो। अपनी आत्म-कथा में कदाचित् मैं यह भाव व्यक्त करने के लिए उपयुक्त भाषा नहीं पा सका।

एक ठाठ शेष हुआ तो रुद्रपदम् बोले, "भगवान् बुद्ध कह गए हैं—बहुत से बुद्ध मुझसे पहले आये, बहुत से पीछे आयेंगे। मैं पुराने प्रकाश को फिर से फैला रहा हूँ।" उन्होंने दूसरा ठाठ आरम्भ किया। आँखों से आँसू झर रहे थे। सँभलकर बोले, "एक परम्परा को चलाता है शिष्य, दूसरी को पुत्र।" और फिर उन्होंने ठंडी सांस ली, "गोबिन्दन जहाँ भी है, प्रसन्न रहे। मैं उसे लिखूँगा कि यात्रा जीवन को बल देती है, जैसे शब्द को आगे बढ़ाता है स्वर!" साथ ही मैं उसे यह भी लिखूँगा, "कला वह है जिसे कलाकार चलाता है, धन्धा तो उलटा कलाकार को गाड़ी का बैल बना डालता है।"

"उदर-पूर्ति क्या इतनी ही अनावश्यक है?" अन्नपूर्णा चुप न रह सकी, "फिल्मों में उसे संगीत से पैसा मिलेगा और वह हमें भी भेजेगा।

उस पैसे को क्या हम फेंक देंगे ?"

"फेंक तो नहीं देंगे।" रुद्रपदम् मुस्कराये, "पर उदर-पूर्ति के निमित्त ही कला का उपयोग शास्त्र में वर्जित है।"

"वर्जित क्यों है ?" अन्नपूर्णा ने बात को आगे बढ़ाया, "हमारे वरकला को ही लो। यहाँ भी तो 'शशी थियेटर' बने कई बरस हो गए। नई-नई फिल्में आती हैं। उनमें जो संगीत रहता है, वह क्या बिलकुल कला-विहीन है ?"

"फ़िल्मों की धूम है ! फ़िल्मों का बोलबाला है !" रुद्रपदम् के स्वर में खीझ का अंश ही अधिक था, "गली-गली, घर-घर फ़िल्मी गीतों की धुनें ही सुनाई देने लगी हैं।"

"तो क्या बुरा है ? मछुए भी तो गाते हैं अपने गीत। किसान भी। आपका शास्त्रीय संगीत ही कैसे सर्वव्यापी बन सकता है ?"

"फ़िल्मी संगीत पर लट्टू हो रहा है वरकला।" रुद्रपदम् ने नया तर्क प्रस्तुत किया, "दूध-गाछ की लोरी भूल रहा है वरकला !" और फिर उन्होंने ठण्डी साँस भरकर कहा, "शशी थियेटर न भी बना होता तो भी क्या वरकला में फ़िल्म-संगीत का प्रवेश रोका जा सकता था ? ग्रामोफोन रिकार्डों में आ गए ये गीत। इन रिकार्डों को रेडियो वाले भी बजाते हैं। दुकानों और रेस्तोराँ पर रेडियो तो बजता ही रहता है। रेडियो के हमारे देवता हमें जो प्रसाद भेजते हैं, उसमें जहाँ शास्त्रीय संगीत होता है, वहाँ फ़िल्मी गीतों के रिकार्ड भी बजाये जाते हैं। हे भगवान् ! तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

"भगवान् की कोई इच्छा नहीं।" अन्नपूर्णा हँस पड़ी।

"यह गोबिन्दन की संगत का प्रभाव है। बम्बई की छूत वह यहाँ छोड़ गया। एक वे हमारे डाकबाबू देशमुख हैं, जो शास्त्रीय संगीत के पीछे लट्ठ लेकर पड़े हैं। भला हो बेचारे माधवन नम्पूतिरिप्पाड का। जनार्दन स्वामी के मन्दिर के वार्षिक नवकम् उत्सव पर वे इस बार भारत के नामी गायकों और वादकों को बुलाने का प्रबन्ध कर रहे हैं !"

"इससे क्या फ़िल्मी गीत रुक जायँगे ?" अन्नपूर्णा चुप न रह सकी।

"मछुआटोला की हमारी संगीत-पाठशाला भी तो चल रही है। अब तो मुत्तु बाबा को भी कुछ-कुछ विश्वास आने लगा है कि मछुओं में भी शास्त्रीय संगीत पनप सकता है। मैं कहे देता हूँ, अन्नपूर्णा, यह तो देवासुर-संग्राम है—फिल्मी संगीत और शास्त्रीय संगीत का संग्राम ! देवता हमारे साथ हैं।"

"इस संग्राम में देवता ही हारेंगे, यह मैं देख रही हूँ।" अन्नपूर्णा मुस्कराई। और पूर्व दिशा में उषा भी मुस्करा उठी, मानो कंधे पर प्रकाश की बँहगी उठाये आ रहे थे सूर्य भगवान्; किरणें चली आ रही थीं इस लालिमा के पीछे-पीछे।

"उठकर कॉफ़ी बनाओ ,अन्नपूर्णा !" रुद्रपदम् मुस्कराये।

"रात का उपवास तो स्वास्थ्य के लिए अच्छा ही रहा होगा न !" अन्नपूर्णा हँस पड़ी, "कॉफ़ी का मूल्य चुकाना होगा। गोबिन्दन को चिट्ठी लिखवाऊँगी। होगी तुम्हारी ओर से, लिखवाऊँगी मैं। गोबिन्दन बच्चा ही तो है। यही लिखना होगा कि बेटा, जहाँ भी रहो, चाहे जो भी करो, बस प्रसन्न रहो ! लिखना होगा कि भले ही फिल्मी संगीत का ही धन्धा करो, हमारा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है !"

"यह तो मैं नहीं लिख सकता। फिल्मी संगीत के पक्ष में मैं अपने हाथ तो नहीं कटा सकता। चिट्ठी तुम्हीं लिखना अपनी तरफ से !"

"नहीं, तुमसे ही लिखवाऊँगी ! तुम्हें ही लिखनी होगी। गरम-गरम कॉफ़ी का यही मूल्य चुकाना होगा।"

"पहले कॉफ़ी तो बनाओ उठकर !"

"सो तो बनाऊँगी ही !"

"बिना शर्त ही बनाओ !"

"बिना शर्त नहीं। मैं माँ हूँ, दूध-गाछ हूँ ! बेटा कहीं भी रहे, कुछ भी करे, मेरी शुभ इच्छाएँ उसके साथ हैं। तुम्हारा आशीर्वाद भी गोबिन्दन को मिलना ही चाहिए।"

नौ

सभी जानते थे कि उत्तर भारत के उस्ताद फैयाज़ खाँ रुद्रपदम् के अनन्य मित्र हैं, पर जब उन्होंने दामोदरन को उस्तादजी का पत्र दिखाया तो उसकी आँखों को जैसे विश्वास ही न हो रहा हो। फिर जब डाकबाबू देशमुख ने दुभाषिये का काम करते हुए पत्र पढ़कर बताया कि उस्तादजी ने यह वचन दिया है कि वे अपनी पूरी मण्डली-सहित रुद्रपदम् की साठवीं वर्षगाँठ पर वरकला आयेंगे तो दामोदरन खुशी से उछल पड़ा।

रुद्रपदम् की साठवीं वर्षगाँठ पर वरकला में कुछ होना चाहिए, यह सुझाव नम्पूतिरिप्पाड का था। शंखधरन ने भी हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कहा था, "छलकती-छलकाती आनी चाहिए गुरुदेव की वर्षगाँठ। उस्ताद फैयाज़ खाँ आ जायँ तो जादू ही न हो जाय!" और अब वही जादू होने जा रहा था। उस्तादजी का पत्र भी आ गया। उन्होंने आने का वचन दिया था। सोने में सुहागा हो जायगा।

अब तो एक ही बात की चिन्ता थी कि रुद्रपदम् का स्वास्थ्य सुधर जाय, क्योंकि इधर लम्बी बीमारी के कारण वे बहुत दुर्बल हो गए थे। वर्षगाँठ में बहुत दिन नहीं रह गए थे। देशमुख की तो यही राय थी कि उस्तादजी को लिख दिया जाय, किसी कारणवश साठवीं वर्षगाँठ मना ही नहीं रहे, इकसठवीं वर्षगाँठ पूरी तैयारी के साथ मनाई जायगी, और उसी समय वे वरकला पधारें तो वरकला-निवासी उनके

विशेष रूप से कृतज्ञ होंगे। देशमुख को भय था कि वर्षगाँठ के अवसर पर रुद्रपदम् फिर से बीमार पड़ गए, तो मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त वाली बात होगी। पर देशमुख का यह सुझाव किसी के भी मन न लगा। नम्पूतिरिप्पाड तो इस पर हँस पड़े। शंखधरन ने भी नाक-भौं चढ़ाकर यही कहा, "इस वहम का इलाज नहीं!"

अन्नपूर्णा बोली, "शंख ठीक कहता है! उस्तादजी को वरकला में एक वर्ष पीछे आने को लिखना तो वह बात होगी कि देवता मान जायँ, और हम कहें—हे देव, तुम अपनी अनुकम्पा अगले वर्ष तक उठा रखो!"

फिर तो रुद्रपदम् भी अड़ गए। उन्होंने घोषणा कर दी कि साठवीं वर्षगाँठ पर ही उस्ताद फैयाज़ खाँ का आना ठीक रहेगा, जिसके लिए वे पहले ही अपनी स्वीकृति भेज चुके हैं।

रुद्रपदम् के मुख पर सन्तोष की आभा प्रसन्न मुद्रा बन गई। उनका संकल्प था, अब बीमार नहीं पड़ेंगे। वर्षगाँठ भी उनके लिए अनुष्ठान से कम न थी, क्योंकि इसकी तिथि उसी दिन पड़ती थी जब जनार्दन स्वामी के मन्दिर का वार्षिक नवकम् उत्सव मनाया जाता था। इस अवसर पर बाहर से आये यात्रियों की अपार भीड़ रहती थी।

कई बार रुद्रपदम् को लगता, मलयगिरि की छोटी-बड़ी सुरंगों को पार करती आ रही है गाड़ी, जिसमें उस्ताद फैयाज खाँ अपनी मण्डली-सहित बैठे हैं। जीवन के साठ वर्ष उनकी कल्पना में घूम जाते—विचित्र वीणा के स्वर-सप्तक पर थिरक-थिरक उठते-से साठ वर्ष। इनमें शत्-शत् स्मृतियाँ थीं, हाथी-सूँड-धार वर्षा की स्मृतियाँ, पूस के कुहासे-सी सघन, मतवाली स्मृतियाँ; खोये अतीत की कानाबाती; सपनों की पाण्डु-लिपियाँ; अतृप्त मन राजपथ की धूल-मिट्टी। इन साठ वर्षों में ऐसे क्षण भी तो आये, जब लगा कि माँ के स्तन में हमारे लिए दूध की एक भी बूँद शेष नहीं रही, और उस उदास मुहूर्त में वे यही सोचकर रह गए—निराश मत होना, मन! चिर-उर्वरा है धरती! कई बार तो

वे सोते-सोते हड़बड़ाकर उठ बैठते, और देखते कि अभी तो वर्षगाँठ में कुछ दिन शेष हैं, और खाँ साहब वरकला के स्टेशन पर उतरने की बात भूलकर त्रिवेन्द्रम् तो नहीं जा पहुँचे।

आखिर वह दिन आ गया, जब खाँ साहब अपनी मण्डली-सहित वरकला पहुँच गये। उन्हें संगीत-विद्यालय में ही ठहराया गया। रुद्रपदम् बहुत प्रसन्न थे। लम्बी बीमारी का उपहार—देह की दुर्बलता और रक्त की कमी के कारण कभी-कभी हाथ-पाँव झूठे पड़ने की-सी स्थिति अब वे भूल-से गए थे।

खाँ साहब को यह स्थान बहुत पसन्द आया। वाटिका की चार-दीवारी पर कुहानियाँ टेके खड़े-खड़े नीचे सागर का अनन्त विस्तार उनकी कल्पना को छू-छू जाता, और वे बार-बार कह उठते, "आप तो खुशकिस्मत हैं!"

देशमुख और रुद्रपदम् के लिए खाँ साहब और उनकी मण्डली के दूसरे सदस्यों की भाषा समझना कुछ भी कठिन न था। वे इस भाषा के मुहावरे की नोक-पलक तक समझते थे। शंखधरन आधे रास्ते पहुँच पाता था, और विशेष रूप से मुहावरे की गली में भटक जाता। दामोदरन और नम्पूतिरिप्पाड के पल्ले कुछ भी न पड़ता, जब तक देशमुख दुभाषिये का कर्तव्य न निभाता।

दिन के समय खाँ साहब और उनके साथी नवकम् की शोभा-यात्रा देखते रहे, और फिर वे नारायण स्वामी की समाधि देखने गये। नारायण स्वामी की संस्था की ओर से एक हाई स्कूल चलता था। खाँ साहब ने समाधि-भवन में लगे चित्र देखे, जिनमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा गांधी को नारायण स्वामी से भेंट करते दिखाया गया था। ये दोनों महानुभाव वरकला पधार चुके थे और इस महापुरुष से मिल चुके थे। रवीन्द्रनाथ पहले आये थे, गांधीजी पीछे। खाँ साहब को बताया गया कि छूआछूत के विरुद्ध जिस समय दक्षिण में नारायण स्वामी ने आवाज़ उठाई थी, गांधीजी को इसका सपना भी नहीं आया था।

रुद्रपदम् उन्हें काजूवन और चिलाक्कोर की संगीतशाला भी दिखाने ले गए। मछुओं के लिए शास्त्रीय संगीत के देव-मन्दिर के द्वार खोलने की बात खाँ साहब को बहुत पसन्द आई। मुत्तु बाबा ने पहले खाँ साहब को केरल-निवासी मानने का भाव जताते हुए जान-बूझकर कहा, "एन्तु वर्तमानम् ?"

और फिर खाँ साहब को सामने से हँसते देखकर वह बोला, "क्या खबर ?"

रुद्रपदम् मलयालम् में बोले, "मुत्तु बाबा, रात को संगीत-गोष्ठी में अवश्य आना। खाँ साहब का संगीत सुनकर तुम मेरा संगीत भूल जाओगे !"

देशमुख ने खाँ साहब को इसका मतलब समझाया तो वे कह उठे, "हम तो आपकी तरफ देखते हैं। हमने तो हिन्दुस्तानी संगीत का ही थोड़ा रियाज़ किया है, और आप हैं कि कर्णाटकी और हिन्दुस्तानी दोनों का पूरा-पूरा मुहावरा रखते हैं।"

"यह आप क्या फरमा रहे हैं, खाँ साहब ?" रुद्रपदम् मुस्कराये, "यह बात क्या किसीसे छिपी है कि आज से बीस वर्ष पहले, जब आप मैसूर राज्य में थे, दरबार ने आपको 'आफ़ताबे-मौसीकी' की पदवी दी। जो संगीत का सूरज है, वही हमारा भी !"

"अरे भाई, मैं सूरज-वूरज कुछ नहीं। मैं तो माता का मामूली-सा फैयाज़ मियाँ हूँ।"

मुत्तु बाबा कुछ नहीं समझ पा रहे थे, क्योंकि बातचीत खाँ साहब की भाषा में चल रही थी।

खाँ साहब ने मुत्तु बाबा की ओर संकेत करते हुए कहा, "जहाँ के मछुए तक संगीत के रसिया हों, वहाँ संगीताचार्य रुद्रपदम् के घराने में बीस पीढ़ियों से संगीत चला आ रहा है, यह हमारे लिए कोई अचरज की बात नहीं है !"

मण्डली के बाकी लोग पीछे की ओर मुड़ चुके थे।

मुत्तु बाबा रुद्रपदम् का कन्धा झंझोड़कर बोले, "अपने अतिथि से कहिए, मैं ज़रूर उनका गाना सुनने आऊँगा। बहुत दिन से उनकी महिमा सुनता आ रहा हूँ। सुना है त्रिवेन्द्रम् में तो कई बार आये। हमारा सौभाग्य है कि वे वरकला भी पधारे !"

देशमुख ने इसका भावार्थ खाँ साहब को समझाया तो वे बोले, "मुत्तु बाबा से कहो, यह तो हमारा सौभाग्य है कि हमें वरकला में आप लोगों के दर्शन हुए।"

देशमुख ने झट दुभाषिये का कर्तव्य निभाया। खाँ साहब और रुद्रपदम् चलने लगे तो मुत्तु बाबा आँखें नचाकर और बाँहें उछाल-कर बोले, "एन्तु वर्तमानम् ? क्या खबर ?"

खाँ साहब के हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गए। मलयालम और हिन्दुस्तानी का यह अनोखा संगम उन्हें गुदगुदा गया था।

चलते-चलते खाँ साहब सँभलकर बोले, "देखिए, गुरुदेव ! हम एक बात कह दें, अगर आपको नागवार न गुज़रे। ठीक ही कहेंगे। आपके तो दोनों हाथ लड्डू हैं। एक तवे की रोटी, क्या छोटी क्या मोटी ! क्या कर्णाटकी, क्या हिन्दुस्तानी, दोनों आपके तम्बूरे की बाँदी हैं।"

"यह सब तो आपकी फैयाज़ी है, खाँ साहब ! नहीं तो मैं क्या ?"

खाँ साहब ने आँखों-ही-आँखों में कहा—"आप तो गुरुदेव हैं !"

देशमुख द्रुत गति से जा खाँ साहब की मण्डली में सम्मिलित हो गया था। चलते-चलते खाँ साहब बोले, "रागदारी बड़ी तपस्या माँगती है। गवैया तो राग-रागिनियों की कठपुतली बन जाता है। राग-रागिनियाँ खुद ही अपना हिसाब न रखें, तो गवैये की वह भद उड़े कि उसे महफिल से भागते ही बने।"

"मुझे तो कभी-कभी लगता है खाँ साहब, कि मैं दूध-पीता शिशु हूँ और माँ की छाती से ही राग-रागिनियों की रंगभूमि को निहार रहा हूँ !"

"यह तो आपने हमारे ही दिल की बात कह दी, गुरुदेव ! मैं भी यही कहने वाला था। माता को तो हम भूल ही नहीं सकते। यह तो अच्छी बात है। जिस दिन हम माता को भूल जायँगे, उस दिन हमारी कला मिट्टी में मिल जायगी।"

"यह तो ठीक है खाँ साहब ! फिर हम लाख चिल्लायें—हम हैं कलाकार, कला के सच्चे सूत्रधार। सज्जनो, नमस्कार !······कोई हमारी बात नहीं सुनेगा। कला के सृजनात्मक उपयोग में माँ की याद ही रंग भरती है। इच्छानुसार, आवश्यकतानुसार कला का हम नित-नूतन उपयोग करना चाहें, और माँ परम्परा को एकदम भुला दें, फिर हम कैसे सफल हो सकते हैं ?"

"यही तो मैं भी मानता आया हूँ।"

"हम कला को एक नया प्रयोजन दे सकें, हममें आत्म-विश्वास बोलता रहे, सेवा-समर्पण की भावना आँख से ओझल न होने पाए—ठीक माँ के समान ही हम कला की नूतन सृष्टि करें, तभी तो बात बन सकती है। शिशु में जैसे ददिहाल और ननिहाल वालों के गुण आगे बढ़ चलते हैं, ऐसे ही नूतन कला-सृष्टि में होना चाहिए।"

"बिलकुल बजा फरमा रहे हैं, गुरुदेव ! मतलब यह कि परम्परा हम पर बोझ न बन जाय, बल्कि फूल में सुगन्ध बनकर महक उठे।"

"माँ के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब ही तो नहीं होता शिशु। वह उससे अधिक होता है, अधिक होने की सम्भावना रखता है। परम्परा कठोर अनुशासन का पालन करना सिखाती है। इसकी अपनी जगह है। पर कला को मैं मात्र परम्परा का अनुकरण ही नहीं मानता। यही बात मैं अपने शंख से हमेशा कहता हूँ।"

"गोबिन्दन क्यों भाग निकला ? उसे क्या आपने नई रचना की छूट नहीं दी थी ?"

"उसकी तो यह बात थी खाँ साहब कि वह आरम्भिक अनुशासन से ही विद्रोह कर बैठा।"

"चलिए ठीक है। मैंने सुना है, फ़िल्मों में उसकी कद्र हो रही है।" कहते-कहते खाँ साहब हँस पड़े, "आजकल के छोकरे हमसे कहीं ज्यादा अक्लमन्द हैं। आखिर इस बात का फायदा तो वह उठाता ही होगा कि वह एक संगीताचार्य का बेटा है और वह बड़े मज़े से डुग्गी पीटता होगा कि उसके खानदान में सात पीढ़ियों से संगीत चला आ रहा है।"

"परम्परा का अनुशासन एक संस्कार है, खाँ साहब !" रुद्रपदम् का गला भर आया, "गोबिन्दन यहाँ रहता तो अच्छा था।" चलते-चलते सूर्य की ओर हाथ उठाकर बोले, "हे सूर्य भगवान्, गोविन्दन कहीं भी रहे, कुछ भी करे, बस मेरे नाम को कलंक न लगाये !"

दस

मंच पर प्रशस्त मस्तक वाले खाँ साहब विराजमान थे; मानो संगीत का देवता धरती पर उतर आया हो। बाईं ओर बँगलौरी टोपी पहने बैठे थे खाँ साहब के भानजे गुलाम रसूल खाँ; उनके दोनों हाथ हारमोनियम पर टिके थे। पीछे बैठे थे खाँ साहब के दो तैयार शिष्य—अता हुसैन और मुहम्मद बशीर; उनके हाथ में था एक-एक तम्बूरा। उनसे सटे बैठे थे दो नौसिखुए। तबले पर संगत करने जा रहे थे विष्णु-पन्त शिरोडकर। छः आदमियों की मण्डली, सातवें खाँ साहब।

दोनों तरफ और पीछे सात-सात हाथ खुली जगह छोड़ दी गई थी, जिससे मण्डली का ठाठ उभर सके।

मण्डली के बायें हाथ बैठे थे दामोदरन, देशमुख और नम्पूतिरिप्पाड—आँखों-ही-आँखों में थेई-थेई का ताल उठाते-से!

मण्डली के दायें हाथ संगीताचार्य रुद्रपदम् और उनके शिष्य शंखधरन ने आसन जमा रखा था। गुरु मानो कला-पारावार का आचमन करते-से; शिष्य मानो संघमित्र बनने का सपना देखता-सा!

मुत्तु बाबा श्रोता-मण्डली में एक जगह दुबके बैठे थे। उन्हें मंच पर बुलाने का स्वयं खाँ साहब ने आग्रह किया, पर वे बोले, "मैं यहीं ठीक हूँ। मैं चाहता हूँ, सबको देखूँ, न कि सब मुझे देखें।"

संगीत-गोष्ठी की व्यवस्था संगीत-विद्यालय की वाटिका में विशेष मण्डप बनाकर की गई थी।

नवकम् के उपलक्ष्य में मन्दिर के प्रांगण में फुलझड़ियाँ और अनार छूट रहे थे। आकाश पर आग के चित्र-विचित्र फूल बन-मिट रहे थे।

यह रात बहुत दिनों की प्रतीक्षा के बाद आई थी। इसे अधिकार था कि संगीत से प्यार करे, जिसके अंग-अंग में रागिनियाँ जाग उठें। रात की आयु तो उतनी ही थी, पर वह चाहती थी अछोर-अछीज रागिनी की अनुकम्पा, जिसे वह अपने-आप को सौंप दे। गेरुआ मिट्टी को अधिकार था कि गेरुआ रहकर भी हरे-हरे अंकुर उगाए, तो रात को भी छूट थी कि नयन उनींदे रहने पर भी किसी अनिरुद्ध का सपना देखे। जैसे रात भी कोई चक्रतीर्थ सरोवर हो, जिसके एक-एक कमल से किसी शकुन्तला की मन-हुलासी कथा आ जुड़ी हो।

"तो शुरू करें!" खाँ साहब मुस्कराये।

"थोड़ा ठहरिये!" रुद्रपदम् बोले, "अभी कुछ और श्रोता आ लें।"

मानो रात ने भी किसी सुन्दरी के सदृश मद्रासी बिन्दिया वाले माथे को झुकाकर मूक संकेत से हाँ-में-हाँ मिलाई—हाँ-हाँ, अभी कुछ और श्रोता आ लें!

"लगता है, दिन फीकी वार्ता है और रात निरी कविता, गुरुदेव!" उधर से दामोदरन बोल उठा।

"रात कविता न होती, तो संगीत के लिए कैसे इतनी मौजूँ होती?" खाँ साहब ने चुटकी ली, और डिबिया से पान निकालकर बगल वाली जेब से बूटियों वाले कपड़े की गुथली निकाली और इसमें से चुटकी-भर मुरादाबादी तम्बाकू डालते हुए पान मुँह में रखा। एक पान तबलची की तरफ बढ़ाया, "तुम भी लो, विष्णु!"

मानो रात सुन्दरी ने फिर मूक संकेत से हाँ-में-हाँ मिलाई—हाँ-हाँ, तुम भी लो, विष्णु!

विष्णुपन्त अभी तबला ठीक कर रहे थे। नम्पूतिरिप्पाड ने उठकर खाँ साहब को माला पहनाई। देशमुख ने रुद्रपदम् के गले में माला डालते हुए कहा, "इसमें पूरे साठ फूल हैं, गुरुदेव! और यह है आपकी साठवीं

वर्षगाँठ !" नम्पूतिरिप्पाड और देशमुख ने खाँ साहब के साथियों को भी मालाएँ पहनाईं।

नम्पूतिरिप्पाड ने उठकर कहा, "वरकला में खाँ साहब का आगमन एक ऐतिहासिक घटना है। खाँ साहब का नाम हमारे लिए नया नहीं। उनके संगीत में आप अद्‌भुत रस पायेंगे। यह भी देखेंगे कि खाँ साहब अपने साथियों के सहयोग से संगीत को परम्परा से कहीं ऊपर उठाकर कला को नूतन रूप देते हैं।"

देशमुख ने खाँ साहब की भाषा में इसका सार बताया तो खाँ साहब बोले, "हमें तो बल्कि शिकायत है कि गुरुदेव ने साठ वर्ष की उम्र तक पहुँचने में इतनी देर लगाई ! क्या वे हमें इससे पहले यहाँ आने की दावत दे ही न सकते थे ?" देशमुख ने खाँ साहब की यह चुटकी मलयालम में प्रस्तुत की तो सारा मण्डप श्रोताओं की तालियों से गूँज उठा।

रुद्रपदम् ने खड़े होकर कहना आरम्भ किया—

"यह हमारा सौभाग्य है कि खाँ साहब यहाँ पधारे। मैं जानता हूँ, आप लोग उनका संगीत सुनने को उत्सुक हो रहे हैं। पर इस अवसर पर इनकी वंश-परम्परा, कला और जीवनी का संक्षिप्त-सा परिचय देना मेरा कर्तव्य है।

"प्रतिभा जिन्हें वरदान में मिली थी, उन्हीं मियाँ रंगीले के प्रपौत्र हैं आफताबे-मौसीकी उस्ताद फैयाज़ खाँ ! मियाँ रंगीले की प्रसिद्धि का कारण था अनगिनत चीजों को अपनी शैली में बाँधने की उनकी क्षमता। प्रपितामह का पूरा रंग प्रपौत्र में आकर खिल उठा।

"अब रही दूध-गाछ की ओर से उनकी पृष्ठभूमि। हाँ, तो उनका ननिहाल भी उच्चकोटि के गायकों का घराना रहा है। उनके नाना थे गुलाम अब्बास—ढली-ढलाई आवाज़ वाले कलाकार, जिनकी खर्ज मन्दर के रागों की गायकी बड़ी शफ्फाफ और तैयार थी।

"प्रपितामह से रंग मिला, नाना से आवाज़ पाई। पर अभी वे छः मास के गर्भ में ही थे कि उनके पिता चल बसे। बालक फैयाज़ का

पालन-पोषण उनके नाना गुलाम अब्बास ने किया, जो आगरा में रहते थे।

"आगरा में नत्थन खाँ का सहवास भी बालक फैयाज़ की प्रतिभा का दीया संजोने में सहायक हुआ।

"कोटा के फिदा हुसैन से भी कुछ कम विद्या-लाभ नहीं हुआ।

"क्या ददिहाल और क्या ननिहाल, दोनों रहे ध्रुपद-धमारियों के घराने। फैयाज़ साहब का शिक्षण इसी ढंग पर हुआ।

"फिर उन्होंने खयाल की गायकी में हाथ डाला, भले ही उस युग में ध्रुपद-धमार को ही ऊँचा और शुद्ध मानते थे। विलम्बित गायकी तो फैयाज़ साहब की घुट्टी में है। दरबारी गाने में उनका जवाब नहीं। और वे नट विहाग में गाते हैं—'झन झन-झन झन-झन पायलिया बाजे !' इस राग में वे कितना अमृत घोलते हैं ! जैजैवन्ती में गाते हैं—'मोरे मन्दिर अवलौं नहीं आये !' प्रिय से बिछुड़ी नायिका का पूरा चित्र खिंच जाता है। झिंझोटी में उनकी विख्यात चीज है—'अंखियाँ उन संग लाग रहीं !' फिर वृन्दावनी सारंग में गाते हैं—'सगरी उमरिया मोरी....'। और सोहनी में उन्हें गाते सुनिये—'चलो हटो जाओ सैयाँ !....' हर बार वे आप पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। और सच तो यह है, जिसने एक बार उनका सच्चा संगीत सुन लिया, वह फिर किन्हीं अटपटी चीज़ों पर तो रीझने से रहा !

"सन् १९२५ में इन्दौर-नरेश तुकोजीराव ने होली के अवसर पर दस सहस्र रुपये के मूल्य का रतनकण्ठा, दस सहस्र रुपये नकद और पाँच सौ रुपये के वस्त्र भेंट करते हुए फैयाज़ साहब की संगीत-साधना का अभिनन्दन किया था।

"अभी आप देखेंगे कि हमारे उस्ताद फैयाज़ खाँ कैसे अपना विलम्बित लय का ठाठ प्रस्तुत करते हैं और कैसे हमें रंगते हैं। अब मैं उनके और आपके बीच व्यवधान नहीं बनना चाहता।"

श्रोताओं ने तालियाँ बजाकर हर्ष प्रकट किया और बड़ी उत्सुकता से अतिथि गायक के संगीत की प्रतीक्षा करने लगे।

मण्डप में अनन्तशयनम् और कल्याणसुन्दरम् के चित्र देखते हुए फ़ैयाज़ ख़ाँ ने कहा, "वे तो फरिश्ते थे, संगीत के देवदूत थे। वैसे गवैये अब जन्म नहीं लेते। वे नाद ब्रह्म के उपासक थे। संगीत ही उनका अल्लाह था, वही ईमान था। उसी घराने के ज्योतिष्मान् हैं रुद्रपदम्। हमें बताया गया है कि ज्योतिष्मान् शब्द का एक अर्थ 'ब्रह्मा का तीसरा चरण' भी है। वैसे तो इस घराने में बीस पीढ़ियों से संगीत चला आ रहा है, जो एक बड़ी बात है, और इस पर हम सभी नाज़ कर सकते हैं। हाँ, तो पितामह और पिता के बाद तो रुद्रपदम् ब्रह्मा के तीसरे चरण ही हुए। और आज ब्रह्मा के उसी तीसरे चरण की साठवीं वर्षगाँठ पर हम उन्हें मुबारकवाद देते हैं और आप लोगों की इजाज़त से अब कुछ अर्ज़ करते हैं।"

इतने में मन्दिर से फुलझड़ियाँ और अनार एक साथ छूटे, और ख़ाँ साहब ने आकाश की ओर देखकर कहा, "लो इन फुलझड़ियों ने भी आस्मान पर इकसठ का हिन्दसा लिख डाला!"

देशमुख ने ख़ाँ साहब के मधुर हास्य का मलयालम में रसास्वादन कराया तो मण्डप तालियों से गूँज उठा।

विष्णुपन्त शिरोडकर तबला मिलाने लगे और यों ही उन्होंने थपकी-सी देकर 'धिन्' गम्भीर स्वर निकाला। उधर दोनों तम्बूरे भी बोल उठे, और ख़ाँ साहब ने महफिल का अभिवादन करते हुए तम्बूरे से कसा हुआ समृद्ध स्वर मिलाया। धीमे-धीमे पूरिया का रूप भरने लगे। श्रोताओं का मन-प्राण गायक को नैवेद्य चढ़ा रहा था।

नम्पूतिरिप्पाड ने दामोदरन के कान में कहा, "कैसे मन्द्र से मध्य और मध्य से मन्द्र में चल रहा है ख़ाँ साहब का संगीत?"

"कैसे मीड लेकर कोमल, अति कोमल तक दरशाते हैं! अति सुन्दर!" दामोदरन मुस्कराया।

ख़ाँ साहब जहाँ छोड़ते, उनके शिष्य अदल-बदलकर आलाप को उठाते, नये स्वर डालते, पुनः मूल स्वर पर आते, विष्णुपन्त से सम्

की विन्नू लेते। गुरु-शिष्यों की यह परस्पर गायन-पद्धति वरकला के लिए नई थी। 'दे रे ना', 'नूम-तूम' आदि शब्दों के साथ आलाप चल रहे थे। फिर पन्द्रह मिनट के बाद खाँ साहब ने 'नि रे ग' का रागवाचक स्वर लेकर गान्धार पर मुकाम किया, तो सारी महफिल झूम उठी।

रुद्रपदम् ने शंख के कान में कहा, "इतना पक्का सच्चा पूरिया का गान्धार हर कोई नहीं लगा सकता।" और गुरु की आँखों में हर्ष के आँसू उमड़ आए।

शंख ने कहा, "खाँ साहब कहें, तो भी आप आज मत गाइए। अभी आपका स्वास्थ्य आज्ञा नहीं देता!"

रुद्रपदम् ने कहा, "हाँ हाँ, मैं नहीं गाऊँगा। खाँ साहब कहेंगे तो भी नहीं गाऊँगा।"

वार-बार मन्द्र सप्तक में उतर रहे थे खाँ साहब। ऊपर गान्धार पर मुकाम करते। हर बार नये-से-नया अलंकार पहनकर, बन-ठनकर सामने आता वह गान्धार।

नम्पूतिरिप्पाड ने दामोदरन के कान में कहा, "पूरी गोष्ठी पर पूरिया की छाया पड़ गई!"

खाँ साहब तारसप्तक में गान्धार लगाकर धीरे-धीरे आलाप का विस्तार करने लगे। फिर दुगुन-चौगुन में 'दिर-दिर नूम-तूम' बोलों का रंग बँधने लगा। खाँ साहब एक ओर, शिष्य-मण्डली दूसरी ओर। शिष्य मानो गुरु से होड़ लेते हुए 'सवाल' डालते, गुरु मुस्कराते हुए सहज ज़ोरदार आलाप करके 'सा' पर आकर 'जवाब' देते, और हर बार श्रोताओं पर जादू-सा होता चला जाता।

यह क्रम चल रहा था। नम्पूतिरिप्पाड ने देशमुख की ओर देखा। वह धीरे-से बोला, "मैं समझ गया। गुरुदेव का स्वास्थ्य तो इस योग्य नहीं कि गा सकें। गाना चाहेंगे तो भी हम साफ मना कर देंगे।"

दामोदरन ने पास से कहा, "स्वास्थ्य का ही सारा जादू है। मेरा भी यही विचार है। आज गुरुदेव को तो नहीं गाना चाहिए!"

मन्दिर की ओर से छूटने वाली फुलझड़ियाँ बीच-बीच में श्रोताओं का ध्यान भंग कर जातीं।

गुरु-शिष्यों के दाँव-पेंच अभी चल ही रहे थे, गुरु ने 'सा' पर आकर मुकाम किया और पूरिया के त्रिताल की चीज़ आरम्भ की—मध्य लय में :

'माई सपने में आये !........'

कुछ ऐसे ढंग से खाँ साहब ने कहना आरम्भ किया कि दूसरे आवर्त पर पहुँचते ही एक मुखड़ा मारकर विष्णुपन्त 'सम' पर आ गए, और त्रिताल का 'ठेका' उठाया। न खाँ साहब को कहना पड़ा कि अमुक ताल लगाओ, न जमी हुई रंगत में कहीं विघ्न-बाधा पड़ी। सहज-भाव से राग का दूसरा दृश्य चल पड़ा। 'माई' शब्द की आवृत्ति करते समय खाँ साहब इसमें भिन्न-भिन्न भावनाओं की बाती संजोते चले गए। एक ही शब्द को विविध अर्थों में मुड़-मुड़ सामने आते देखकर नम्पूतिरिप्पाड ने दामोदरन के कान के पास मुँह ले जाकर कहा, "माई का अर्थ है माँ, अर्थात् दूध-गाछ ! मुझे तो लगता है, सारी गोष्ठी पर दूध-गाछ की छाया पड़ गई। देखो-देखो, मुत्तु बाबा भी किस तरह झूम रहे हैं !" देशमुख ने शंख की ओर संकेत करते हुए कहा, "शंख शायद सोच रहा है कि गुरुदेव को छोड़कर खाँ साहब का चेला बन जाय !"

लगता था, 'माई सपने में आये !' की रागदारी कभी शेष न होगी। पर कॉफ़ी-पान का समय हो चुका था। कॉफ़ी के बाद फिर पूरिया का दौर चला। पता ही न लगा कि डेढ़ घण्टा कैसे बीत गया।

मुत्तु बाबा ने उठकर मुलतानी की फ़रमाइश की, तो खाँ साहब बोले, "इस वक्त इस रागिनी को हम गाते नहीं !"

रुद्रपदम् ने सिफारिश की, "सुना दीजिए न ! श्रोताओं को नाराज़ क्यों करते हैं ?"

"तो लीजिए !" कहकर खाँ साहब ने लगी हुई, सुगठित आवाज़ से मुलतानी का आलाप किया, और फिर महफिल की उत्सुकता देखकर

शीघ्र ही त्रिताल में नये रंग की चीज़ पेश की—

अरी ए री आली री

इन दुर्जन लोगन को काहा कोसूँ ?

राग चल पड़ा। समाँ बँध गया। नम्पूतिरिप्पाड ने दामोदरन के कान में कहा, "देखो-देखो, कैसे लोच और कैसी मिठास के साथ खाँ साहब 'आली री' को खींचते हैं !" दामोदरन ने आँखों-ही-आँखों में जताया—उस्ताद उस्ताद हो रहता है !

खाँ साहब ने सिद्ध कर दिया कि जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले। आवाज़ बड़े नखरे से लय में लगाते। दूसरी पंक्ति नाना-विध सजाते, लय के नये-नये रूप गूँथते। इसे गाते समय उनका बलशाली कंठ कितना कोमल हो उठता; शब्द किस विनती से बाहर आते और विरह-व्याकुलता का चित्र-सा उरेह जाते ! आवाज़ पर कितना अधिकार था ! भावानुकूल शब्दोच्चार और त्वरित रसोत्पत्ति द्वारा गायक ने महफिल को अपने रंग में रंग लिया।

शंख ने गुरुदेव के कान में कहा, "संस्कार रक्त से आते हैं !"

रुद्रपदम् बोले, "सुनो-सुनो ! बातें पीछे होंगी।"

गाना बन्द हो गया। महफिल की उत्सुकता बनी रही।

"यह है कलाकार का संयम !" रुद्रपदम् मुस्कराए।

इसके बाद खाँ साहब ने दो-तीन चीज़ें पेश कीं। राग का चलन शुद्ध रखते। रागवाचक स्वरों की आवृत्ति द्वारा राग का स्वरूप स्पष्ट करते। बीच-बीच में छोटी-छोटी 'मुरकियाँ' रंग दिखातीं। सुरीले 'खटके' जादू-सा कर-कर जाते। हरकतें लेकर मानो गायक श्रोता के हृदय को वश में करता चला जाता। धीरे-धीरे अन्तर भरा जाता। फिर बाकायदा लय के अंग से बढ़त की सृष्टि करके महफिल को झुला देते। एकदम तान पर आते। आलाप में से धीरे-धीरे तानों का रूपाकार करते। जोरदार बोल-तानों की झड़ी-सी लगाते। चीज़ को रंग कर ले आते और धीरे-से बन्द कर देते।

क्या मजाल, कहीं लय छूट जाय ! आलाप-तान और स्वर-विस्तार में लय का अर्थ कुछ इस प्रकार संजोते कि महफिल में प्रत्येक श्रोता यही सोचता कि गायक उसी को लक्ष्य करके गा रहा है। यों गायक और श्रोता में आत्मीयता की लय रंग दिखाती। गायक और श्रोता को पान-सिगरेट और इलायची-मिश्री की सुध न रहती, मानो वे संगीत की स्वप्नपुरी में विचर रहे हों।

सहसा यह स्वप्न टूटा, तो खाँ साहब ने रुद्रपदम् की ओर संकेत करके कहा, "अब आपकी बारी है।"

रुद्रपदम् ने मुस्कराकर शंख की ओर देखा। शंख भी जैसे इसी प्रतीक्षा में था। बोला, "गुरुदेव, अब तो गाना ही होगा।"

विष्णुपन्त बोले, "तबले से ही चलेगा या मृदंग उठाऊँ ?"

"तबला ही ठीक है !" रुद्रपदम् मुस्कराए।

शंखधरन ने तम्बूरा सँभाल लिया।

"मैं तो अब बूढ़ा हो गया !" रुद्रपदम् ने क्षमा-याचना के स्वर में कहा, "कंठ इच्छा का साथ नहीं देता। लम्बी बीमारी और रक्त की कमी के कारण हाथ-पैर झूठे पड़ने के दौरे का भय बना ही रहता है !"

"हम आपको कहीं नहीं जाने देंगे !" खाँ साहब मुस्कराये, "यह आप क्या फरमा रहे हैं ? यह न भूल जाइए कि हम श्रोताओं के लिए गाते हैं और आप हमारे लिए !" और खाँ साहब ने उठकर रुद्रपदम् का आलिंगन कर लिया, "आपकी साठवीं वर्षगाँठ पर हम आपका गाना सुने बिना चले जायँ, यह कैसे मुमकिन है ?"

"मैं खाँ साहब और आप सबको रुष्ट नहीं करना चाहता !" और रुद्रपदम् ने दो बार खंखारकर सुगठित आवाज से आलाप आरम्भ कर दिया।

गाते-गाते गायक का कंठ कभी अति कोमल हो उठता और कभी श्रोताओं को लगता कि कोमल स्वर तो रास्ते का पड़ाव-मात्र था। स्वर बढ़ चला था। इसमें रौद्र रस का पूरा संचार हो रहा था।

विष्णुपन्त पूरी शक्ति से हाथ चला रहे थे, पर पीछे रह-रह जाते थे, और फैयाज़ खाँ उसे हाथ की टेक से समझाते जा रहे थे, "पीछे मत रहो। साथ-साथ चलो!"

शंख को तम्बूरा बजाते-बजाते लगा, गुरुदेव का ऐसा गायन पहले तो नहीं सुना!

मुत्तु बाबा ने जैसे अपने-आपसे कहा, 'इसे कहते हैं संगीत!'

देशमुख ने भी जैसे अपने-आपसे कहा, 'ऐसा ठिकाने का गवैया दक्षिण में दूसरा न होगा!'

नम्पूतिरिप्पाड के कुछ कहने से पहले ही दामोदरन कह उठा, "ठिकाने का, और फिर रीति का लयदार!"

पास से नम्पूतिरिप्पाड बोले, "और फिर कितने सहज-भाव से गाना रंग दिया! यह भाव आप खाँ साहब की आँखों में भी पढ़ सकते हैं। गुणी को गुणवान पहचानता है!"

स्वर फूट-फूट पड़ते थे। यह कोई उन्मत्त प्रवृत्ति का राग था। लय का अर्थ पास आ रहा था। आलाप बढ़ता गया। आलाप ने लय के अर्थ को पकड़ना आरम्भ किया। यह कोई साध-श्रद्धा का राग था। इसमें अतीत की छवि थी। कदाचित् यह उस समय की छवि थी, जब सद्यःस्नाता धरती ने सागर से बाहर आना आरम्भ किया था। समवेत चीत्कार बज-बज उठता था तबले पर—ऊँघ-ऊँघ जाता था तम्बूरा। यह तो कोई कोसों लम्बी रागिनी थी—कोई युग-युग की, जन्म-जन्म की लम्बी रागिनी, जो अछोर अतीत को पकड़ने जा रही थी। कभी लगता, यह तो मंगल-कामना की पूजा-रागिनी है, जब आनन्द का हर्ष-रोर आलाप को छू-छू जाता। जैसे रुद्रपदम् में राग-रागिनियों का इष्टदेव प्रवेश कर गया हो; जैसे रुद्रपदम् कहीं भी न हो, कोई राग स्वयं अपने को गा रहा हो।

खाँ साहब कई बार वाह-वाह कर उठे।

छाती में कितना दम हो सकता है और आवाज़ में कितनी पकड़,

खाँ साहब यही देखकर खोये-से बैठे रहे।

एक-एक श्रोता के मन में संगीत बैठ गया, जैसे गीत और श्रोता एकाकार हो गए। राग का अछीज-अशेष झरना झर-झरकर आगे बढ़ रहा था। संगीत में ही सबका शरण-स्थल है, शब्द-ब्रह्म है! मुक्ति अब कोई दूर नहीं रही। संगीत स्वयं अपना स्तर ठीक रखता है! संगीत चार दिन की चाँदनी नहीं। संगीत तो नित्य है, सनातन है। बड़े लाघव से, बड़े जतन से रुद्रपदम् अपने आलाप द्वारा यही सिद्ध किये जा रहे थे।

नम्पूतिरिप्पाड ने दामोदरन से कहा, "अब गुरुदेव को गाना बन्द कर देना चाहिए!"

दमोदरन बोला, "रस-भंग तो ठीक नहीं!" देशमुख कुछ न बोला, वह तन्मय होकर सुन रहा था।

विष्णुपन्त ने सम पर आकर 'धिन्' का स्वर निकला, तो गुरुदेव गाना बन्द करने की बजाय फिर आरम्भ हो गए। "सुन्दर! अति सुन्दर!" विष्णुपन्त के मुँह से निकल गया।

खाँ साहब झूम उठे।

रुद्रपदम् की आवाज उच्च शिखरों को छूती उनके विराट् विस्तार में समाती चली गई, डूबती चली गई। उठान में विचित्र-सा आनन्द था तो इसमें एक अचीन्ही-सी वेदना और पीड़ा भी थी, जैसे कण्ठ रो रहा हो; जैसे रोना ही संगीत का अन्तिम लक्ष्य हो।

गाते-गाते रुद्रपदम् का मुख-मण्डल पीला पड़ने लगा, पर इस पीले-पन को कोई न देख सका—खाँ साहब भी नहीं।

सहसा रुद्रपदम् ने अपनी डूबती-मिचती आँखों से शंख को देखा, और आँखों-ही-आँखों में कहा—मेरे संगीत को निरन्तर आगे ले चलो!

शंखधरन का कण्ठ जैसे बैठ गया था, फिर भी उसने गुरुदेव के साथ अपनी आवाज मिलाई।

कोई भी न जान सका कि कहाँ गुरु का स्वर मौन हुआ और कहाँ शिष्य का मुखर।

तबलची ने गति तेज कर दी। तोड़ा देने का उसे ध्यान ही न रहा, उसे संगीत उड़ा ले चला।

रुद्रपदम् आँखें बन्द किये बैठे थे और शंखधरन उसी उठान में, उसी लय में, उसी स्वर में गाये जा रहा था।

रुद्रपदम् जैसे किसी समाधि में लीन थे। जैसे वे कोई भूली-बिसरी कथा का स्मरण कर रहे थे। अतीत तो पीछे रह गया था, बहुत पीछे।

सबने देखा। शंख गा रहा था। खाँ साहब ने भी देखा, उनके साथियों ने भी देखा। गुरुदेव के साथियों की दृष्टि गुरुदेव पर ही थी।

किसी के भी हाथ न हिले। किसी का भी यह साहस न हुआ कि रुद्रपदम् से पूछे—क्या सोच रहे हैं?

खाँ साहब अवाक्-से बैठे थे। अपने साथियों की ओर देख लेते जो बड़ी जिज्ञासा से रुद्रपदम् की ओर देख रहे थे।

शंखधरन गा रहा था। गुरुदेव का ऐसा ही आदेश था—मेरे संगीत को निरन्तर आगे ले चलो!

तबलची बराबर लय को बढ़ाये जा रहा था। सहसा गुरुदेव ने आँखें खोलीं। हाथ फैलाकर उन्होंने तान लगाने की चेष्टा ही की थी कि तान की बजाय रक्त-धार बह निकली और रुद्रपदम् एक ओर को लुढ़क गए।

खाँ साहब ने चिल्लाकर कहा, "हाय, भैया!..."

और जैसे टूटते तार की खण्डित झंकार के साथ समस्त संगीत थम-कर जम गया।

रुद्रपदम् अपने संगीत की लय थामे सदा के लिए कहीं दूर निकल गए थे!

ग्यारह

चन्दन-चिता पर रुद्रपदम् का दाह-कर्म किया गया। फैयाज़ खाँ जाने से पहले अन्त तक यही कहते रहे, "काश, ऐसी फरिश्तों जैसी मौत हमें मिली होती !"

अन्नपूर्णा की आँखों से आँसू थमते ही न थे। गोबिन्दन पाँचवें दिन आया। माँ के चरणों में बैठा भाग्य को कोसता रहा। पिता के अन्तिम दर्शन न कर सकने का उसे दुःख था। देर से खबर मिली। बम्बई का फासला ! दाह-कर्म के समय तो उसका पहुँचना वैसे भी असम्भव था। उसे अब पिताजी की सभी विशेषताएँ याद आ रही थीं। ऐसे देवता-स्वरूप पिताजी की आज्ञा पर न चलने का उसे बहुत दुःख था। वह फूट-फूटकर रोने लगता। उसके आँसुओं में माँ के आँसू खो गए। उलटा माँ उसे समझा रही थी, "बेटा, रोने से तो वे वापस आने से रहे। यही लीला है। ऐसा ही होता आया है। अब विलाप से क्या लाभ ?"

उसे इस बात का भी दुःख था कि पिताजी के फूल भी वह अपने हाथ से सागर में न डाल सका।

"ये सब तो मन रखने की बातें हैं, बेटा !" अन्नपूर्णा ने समझाया, "पंछी तो उड़ गया !"

नम्पूतिरिप्पाड को दुःख था कि रुद्रपदम् आत्मकथा के तीन अध्याय शेष छोड़ गए। एक उपाय सोच लिया था। गुरुदेव एक चिट्ठी छोड़

गए थे शंख के नाम, जिसमें उन्होंने जहाँ अपने फूल कन्याकुमारी में डालने का आदेश दिया था, वहाँ अपने अध्ययन और जीवन-दर्शन का सार भी दिया था। इसमें कला की टेक थी। उस पर गहरे अनुभव की छाप थी। कला के भविष्य में उनका विश्वास बोल उठा था। नम्पूतिरिप्पाड इसे आत्मकथा का उपसंहार बनाकर छापने जा रहे थे।

"गुरुदेव की आत्मकथा मलयालम साहित्य को बहुत बड़ी देन होगी।" नम्पूतिरिप्पाड ने आँखें ऊपर चढ़ाकर कहा, "एक-एक अध्याय लिखने पर उन्होंने कई-कई सप्ताह लगाये।"

"यह तो उनकी पुरानी आदत थी।" गोबिन्दन ने बड़े गर्व से सिर हिलाकर कहा, "एक ही चीज को पाँच-पाँच, सात-सात बार लिख चुकने पर ही वे सोचते थे कि अब ठीक भाषा हाथ लगी और जो कहना था कह पाये।"

"यही बात तो आज दुर्लभ है। हर कोई जल्दी में है। सोचने का अवकाश किसे है? पुस्तक शीघ्र छापी जाय, यही तो सब चाहते हैं।

"कोई प्रकाशक मिलेगा?"

"यह काम मेरे ऊपर छोड़ो। गुरुदेव का हम पर कुछ कम ऋण नहीं।"

"तो आप ही छापिये। हमारा सहयोग तो रहेगा ही। शंख कन्याकुमारी से लौट आये, योजना बना लेंगे।"

गोबिन्दन के हाथ में गुरुदेव का पत्र था—पिता की अन्तिम रचना।

बारह

"प्रिय शंख,

तानपूरा सामने पड़ा है। मन में है साधना की बात। कैसे करूँ? तुम सबने मना कर रखा है। उनसठ वर्ष हो गए। पचास वर्ष से ऊपर तो साधना में ही बीत गए।

सोचा नित-नित का अभ्यास—साधना, नहीं कर सकता तो यह पत्र ही लिख डालूँ।

जो कहना चाहता हूँ, कह सका तो!

संस्कृतियाँ मिलती हैं। आस्ट्रिक आये, द्रविड़ आये, आर्य आये, हूण आये, शक आये, सिथियन आये, मुसलमान आये, अंग्रेज आये। सब आये, टकराये और गले मिले। कुछ लिया, कुछ दिया।

मरने के पश्चात् मैं वरकला में ही जन्म लूँगा, मैं मुत्तु बाबा से कह चुका हूँ। उन्हें विश्वास नहीं होता। हो भी कैसे? मैं जैसे सोचता हूँ, वे नहीं सोचते। सोचें भी कैसे? पर कह दिया, सो कह दिया। कह दिया कि वरकला में अगली पीढ़ी का संगीताचार्य चिलाक्कोर के मछुआ-टोला में ही जन्म लेगा। वचन निभाना होगा, स्वयं दोबारा जन्म लेकर! दूध-गाछ तो दूध-गाछ है! उसकी कोई जाति नहीं होती।

श्रीमती यमुना नम्पूतिरिप्पाड अपनी मातृभाषा बंगला की एक लोकोक्ति सुनाती है—"उपले जलते हैं, गोबर हँसता है!" ठीक कहती है यमुना।

दक्ष-यज्ञ में शिव की निन्दा सती को सहन न हो सकी, उन्होंने प्राण त्याग दिए। शिव ने सती की मृत देह को उठा लिया, मत्त हो उठे; धरती रसातल को जाने लगी। देवता नारायण के सामने गिड़गिड़ाये, चक्री ने चक्र चलाया और सती की देह बावन-खण्ड हो गई।

प्राणहीन देह के तो कोई बावन छोड़ एक सौ एक खण्ड कर डाले। यहाँ तो दूसरा ही संकट उपस्थित है। संस्कृति की जीवित देह को हम अपनी-अपनी ओर घसीट रहे हैं, भले ही इस छीना-झपटी में उसके प्राण छूट जायँ।

तानपूरा सामने पड़ा है। इधर बहुत दिनों से नित-नित की स्वर-साधना बन्द है। जीवन-भर स्वर के पीछे भागता रहा। स्वर मिला तो लगता है भगवान् का बुलावा भी साथ ही आ गया। जाना ही होगा। कहीं दूर जाना नहीं। फिर से वरकला में ही जन्म लेने की बात है। बात चल रही थी संस्कृति की। संस्कृति एक है। आर्यों ने द्रविड़ों से बहुत-कुछ लिया। वैदिक सभ्यता की धुरी था यज्ञ, द्रविड़ संस्कृति की धुरी था तीर्थ—तीर्थ अर्थात् नदी का तरण योग्य स्थान। नदी के प्रति पवित्रता की भावना आर्यों ने आस्ट्रिकों से ली। पतितपावना गंगा का नाम भी आस्ट्रिक है। सच कहती है यमुना, कि आज भी सन्याल की गति नहीं होती, जब तक उसकी अस्थियाँ दामोदर नदी में न डाल दी जायँ। वृक्ष-पूजा भी आर्यों से पहले की है—बहुत पहले की। अनेक देवता और तीर्थ-उत्सव आर्यों ने यहाँ वालों से लिये। नाग-पूजा भी अवैदिक है, पर आर्यों के वंशज नम्पूतिरि ब्राह्मण ही आज केरल में नाग-पूजा के मुख्य संचालक हैं। विवाह में सिन्दूर-दान की रीति आस्ट्रिकों की देन है। पूजा ही नहीं, भक्ति-परम्परा भी अवैदिक है। शंख आदि नामों का भी वेद में उल्लेख नहीं। वैदिक और अवैदिक संस्कृतियाँ टकराईं। ऋषिगण शिव-पूजा और लिंग-पूजा के प्रति नाक-भौं चढ़ाते थे। 'वामन पुराण' में आया है कि ऋषि-पत्नियों को तो शिव प्रिय थे, पर स्वयं ऋषियों में इतनी उदारता न थी। दक्ष-

यज्ञ में भी इसीलिए शिव को कोई प्रतिष्ठा नहीं दी गई थी। 'स्कन्द-पुराण' में आया है, जब महादेव ऋषि-मुनियों के आश्रम में गये, तो उन्होंने क्रुद्ध होकर कहा—"रे पाप, तेरे द्वारा हमारा आश्रम विडम्बित हुआ। तेरा यह लिंग पृथ्वी-तल पर गिर पड़े।" फिर 'वामन पुराण' में हम देखते हैं कि ऋषिगण शिव के प्रति उदार होने लगे।

जैसे सोच रहा हूँ, वैसे लिख रहा हूँ। जाने की बेर समीप है। वह तानपूरा तो यहीं रह जायगा। नये घर में प्रवेश करना होगा। वहाँ नया तानपूरा होगा। हाँ तो मैं कह रहा था, शैव और वैष्णव पन्थ आर्येतर धर्मों से ही लिये गए। पुराण साक्षी हैं। पहले इनका तिरस्कार हुआ, फिर उन्हें ठौर मिल ही गया। वैदिक कर्मकाण्ड में भक्तिवाद ने प्रवेश कर लिया। देवताओं की यज्ञ-स्थली में आ विराजा अवतारवाद। इन्द्र गये, विष्णु आये। विष्णु को उपेन्द्र कहकर सम्मान दिया गया। हमारे अनेक अवतारों का जन्म अर्द्धरात्रि को ही हुआ—दो संस्कृतियों के संक्रान्ति-प्रहर में।

संस्कृतियाँ मिलती हैं। मिलती हैं नदियाँ। संगीत में स्वर मिलते हैं। संस्कृति जोड़ती है, विलग नहीं करती। आदान-प्रदान के बिना जीवन छीज जायगा, कला चुक जायगी, स्वर-ताल भंग हो जायगा। हम बहुत पीछे से आ रहे हैं; बहुत आगे जायँगे। मुझे तो दूर नहीं जाना, पुनः वरकला में ही जन्म लेना है।

चिदम्बरम् के नटराज मन्दिर में प्रवेश करते ही प्रथम मूर्ति भक्तवर नन्दनार की है, जिन्होंने अस्पृश्य परिया जाति में जन्म लेकर परिया दूध-गाछ का दूध पिया था। आज नन्दनार के गान गाये बिना ब्राह्मणों के अनुष्ठान अपूर्ण रहते हैं। फिर यदि मैं भी मछुआ दूध-गाछ का दूध पी लूँगा तो इसमें क्या बुराई होगी?

देश के एक-एक जनपद में ग्राम-देवता की पूजा होती है। भले ही मनु ने कहा है—ग्राम-देवता के पूजक पतित होते हैं। मछुआटोला में जन्म लेकर मैं वहाँ के देवता का वरदान प्राप्त करूँगा।

आर्यों के आगमन से पूर्व दक्षिण के मातृ-तन्त्र समाज में देव-मन्दिरों की 'अर्चिकाएँ' स्त्रियाँ ही हुआ करती थीं। 'महाभारत' के सभा-पर्व में यह उल्लेख है कि जब वैदिक धर्म दक्षिण में पहुँचा, तब भी स्त्रियों के सुन्दर ओंठों की फूँक के बिना अग्निदेवता जागते ही न थे। फिर देव-मन्दिर की अर्चिका के रूप में स्त्रियों का स्थान उनसे छिनता गया।

तानपूरा मेरे सामने पड़ा है। जीवन-भर यह मेरा प्रिय साथी रहा। इसे देखकर कला की ही नहीं, घर की बात भी ध्यान में आये बिना नहीं रहती। संगीत विद्यालय से जो-कुछ मिलता रहा, वह इतना कम रहा कि उससे तो घर की गाड़ी ही ठेली जा सकी। सोचता हूँ, मेरे पीछे गोबिन्दन की माँ का क्या बनेगा? गोबिन्दन बम्बई में है—फ़िल्मों में म्यूज़िक डाइरेक्टर बनने के चक्कर में! उसने अपनी माँ की सेवा का कर्तव्य न निभाया तो तुम्हें ही गुरुपत्नी की सेवा करनी होगी। भूलना नहीं।

तुम सोचोगे, मैं यह सब क्यों लिख रहा हूँ। सामने पड़ा तानपूरा तो बजा नहीं सकता। नित-नित का अभ्यास बन्द है। किसी भी दिन भगवान् का बुलावा आ सकता है। सोचता हूँ, जो कहना है कह डालूँ। कुछ मन में न रखूँ। गोबिन्दन की माँ से कहता हूँ, मेरे जाने की वेर समीप है। वह खीझकर कहती है—छिः, ऐसी बात मुँह से न निकालो। मैं कहता हूँ, तुम तो दूध-गाछ हो; तुम्हारे लिए जैसा गोबिन्दन वैसा शंख। मैं उसे समझाता हूँ—शंख को सदैव तुम्हारा ध्यान रहेगा। वह रोने लगती है। मैं कहता हूँ—छिः अन्नपूर्णा, तुम तो बच्चों की तरह रो रही हो। जाने की बेर तो आकर रहती है। सभी को जाना है—कलाकार हो चाहे साधारण व्यक्ति। उसकी आँखों से झर-झर आँसू झरते रहते हैं।

मैं बहुत पीछे भी देखता हूँ, बहुत आगे भी। दृष्टि बारम्बार पीछे को मुड़-मुड़ जाती है।

नम्पूतिरि ब्राह्मणों में सबसे बड़ा भाई ही ब्राह्मण-कन्या से विवाह

करने का अधिकार रखता है। छोटे भाई नायर कन्याओं से सम्बन्ध जोड़ते हैं। इसी से बहुत-सी नम्पूतिरि कन्याओं को पति नहीं जुड़ते। अनेक नायर युवकों को नायर-वधू नहीं मिल पातीं। और देखिए, नम्पूतिरि खान-पान में तो नायर-कन्या को शूद्र समझता है, पर उसके साथ गार्हस्थ सम्बन्ध जोड़ने से नहीं हिचकिचाता। नम्पूतिरि की दृष्टि में सभी स्त्रियाँ शूद्र हैं। वह सोचता है, प्रातः स्नान के बाद वह फिर शुद्ध हो लेगा। यह कैसा धर्म है, कैसा 'सम्बन्धम्' है?

तानपूरा मेरी ओर एकटक देख रहा है। मैं इसे उठाकर गाने लगूँ। जी तो बहुत चाहता है, पर नहीं, अभी आप लोगों की यह इच्छा है कि कंठ पर जोर न डालूँ। हाँ, तो कोंकण के कित्यावन ब्राह्मणों की कथा विख्यात है। परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रियहीन करके यज्ञ और श्राद्ध करना चाहा तो ब्राह्मण कहाँ मिलते? उन्होंने कैवर्तों के गले में यज्ञोपवीत डाल, चिता के पास खड़ा करके उन्हें ब्राह्मण बना डाला। यह सब वैसे ही हुआ, जैसे संगीत में हुआ। हमारे शास्त्रीय संगीत के प्रांगण में लोक-संगीत से प्रेरणा ली जाती रही है। मेरे इस मत से तो उस्ताद फैयाज़ खाँ भी सहमत हैं कि समय-समय पर हमने लोक-धुनों के गले में यज्ञोपवीत डाला, जैसे परशुराम ने कैवर्तों को ब्राह्मण बनाया।

तानपूरा मेरे सामने पड़ा है। मैं इसे कैसे हाथ लगाऊँ? तानपूरे में मेरे प्राण बसते हैं। तानपूरा देखकर मुझे इस बात का स्मरण हो आता है कि मातृ-पूजा भी आर्येतर है। यमुना सच कहती है, सन्थाल जाति में माँ की संज्ञा है 'तोया दारे' अर्थात् दूध-गाछ! दक्षिण में देवदासी प्रथा का प्रचलन रहा। वहाँ यह मान्यता रही है कि कोई स्त्री देवदासी हो जाय तो वह सदा शुद्ध है। देवदासियाँ सात प्रकार की रही हैं—

१. दत्ता—अर्थात् स्वयम् अर्पिता।

२. विक्रीता—देवता के सम्मुख रूपाजीवा।

आर्यों के आगमन से पूर्व दक्षिण के मातृ-तन्त्र समाज में देव-मन्दिरों की 'अर्चिकाएँ' स्त्रियाँ ही हुआ करती थीं। 'महाभारत' के सभा-पर्व में यह उल्लेख है कि जब वैदिक धर्म दक्षिण में पहुँचा, तब भी स्त्रियों के सुन्दर ओंठों की फूँक के बिना अग्निदेवता जागते ही न थे। फिर देव-मन्दिर की अर्चिका के रूप में स्त्रियों का स्थान उनसे छिनता गया।

तानपूरा मेरे सामने पड़ा है। जीवन-भर यह मेरा प्रिय साथी रहा। इसे देखकर कला की ही नहीं, घर की बात भी ध्यान में आये बिना नहीं रहती। संगीत विद्यालय से जो-कुछ मिलता रहा, वह इतना कम रहा कि उससे तो घर की गाड़ी ही ठेली जा सकी। सोचता हूँ, मेरे पीछे गोबिन्दन की माँ का क्या बनेगा? गोबिन्दन बम्बई में है—फ़िल्मों में म्यूज़िक डाइरेक्टर बनने के चक्कर में! उसने अपनी माँ की सेवा का कर्तव्य न निभाया तो तुम्हें ही गुरुपत्नी की सेवा करनी होगी। भूलना नहीं।

तुम सोचोगे, मैं यह सब क्यों लिख रहा हूँ। सामने पड़ा तानपूरा तो बजा नहीं सकता। नित-नित का अभ्यास बन्द है। किसी भी दिन भगवान् का बुलावा आ सकता है। सोचता हूँ, जो कहना है कह डालूँ। कुछ मन में न रखूँ। गोबिन्दन की माँ से कहता हूँ, मेरे जाने की बेर समीप है। वह खीझकर कहती है—छिः, ऐसी बात मुँह से न निकालो। मैं कहता हूँ, तुम तो दूध-गाछ हो; तुम्हारे लिए जैसा गोबिन्दन वैसा शंख। मैं उसे समझाता हूँ—शंख को सदैव तुम्हारा ध्यान रहेगा। वह रोने लगती है। मैं कहता हूँ—छिः अन्नपूर्णा, तुम तो बच्चों की तरह रो रही हो। जाने की बेर तो आकर रहती है। सभी को जाना है—कलाकार हो चाहे साधारण व्यक्ति। उसकी आँखों से झर-झर आँसू झरते रहते हैं।

मैं बहुत पीछे भी देखता हूँ, बहुत आगे भी। दृष्टि बारम्बार पीछे को मुड़-मुड़ जाती है।

नम्पूतिरि ब्राह्मणों में सबसे बड़ा भाई ही ब्राह्मण-कन्या से विवाह

करने का अधिकार रखता है। छोटे भाई नायर कन्याओं से सम्बन्ध जोड़ते हैं। इसी से बहुत-सी नम्पूतिरि कन्याओं को पति नहीं जुड़ते। अनेक नायर युवकों को नायर-वधू नहीं मिल पातीं। और देखिए, नम्पूतिरि खान-पान में तो नायर-कन्या को शूद्र समझता है, पर उसके साथ गार्हस्थ सम्बन्ध जोड़ने से नहीं हिचकिचाता। नम्पूतिरि की दृष्टि में सभी स्त्रियाँ शूद्र हैं। वह सोचता है, प्रातः स्नान के बाद वह फिर शुद्ध हो लेगा। यह कैसा धर्म है, कैसा 'सम्बन्धम्' है ?

तानपूरा मेरी ओर एकटक देख रहा है। मैं इसे उठाकर गाने लगूँ। जी तो बहुत चाहता है, पर नहीं, अभी आप लोगों की यह इच्छा है कि कंठ पर जोर न डालूँ। हाँ, तो कोंकण के कित्यावन ब्राह्मणों की कथा विख्यात है। परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रियहीन करके यज्ञ और श्राद्ध करना चाहा तो ब्राह्मण कहाँ मिलते ? उन्होंने कैवर्तों के गले में यज्ञोपवीत डाल, चिता के पास खड़ा करके उन्हें ब्राह्मण बना डाला। यह सब वैसे ही हुआ, जैसे संगीत में हुआ। हमारे शास्त्रीय संगीत के प्रांगण में लोक-संगीत से प्रेरणा ली जाती रही है। मेरे इस मत से तो उस्ताद फैयाज़ खाँ भी सहमत हैं कि समय-समय पर हमने लोक-धुनों के गले में यज्ञोपवीत डाला, जैसे परशुराम ने कैवर्तों को ब्राह्मण बनाया।

तानपूरा मेरे सामने पड़ा है। मैं इसे कैसे हाथ लगाऊँ ? तानपूरे में मेरे प्राण बसते हैं। तानपूरा देखकर मुझे इस बात का स्मरण हो आता है कि मातृ-पूजा भी आर्येतर है। यमुना सच कहती है, सन्थाल जाति में माँ की संज्ञा है 'तोया दारे' अर्थात् दूध-गाछ ! दक्षिण में देवदासी प्रथा का प्रचलन रहा। वहाँ यह मान्यता रही है कि कोई स्त्री देवदासी हो जाय तो वह सदा शुद्ध है। देवदासियाँ सात प्रकार की रही हैं—

१. दत्ता—अर्थात् स्वयम् अर्पिता।

२. विक्रीता—देवता के सम्मुख रूपाजीवा।

३. भृत्या—कुल-कल्याणार्थ देवता को निवेदिता ।

४. भक्ता—भक्तिवश देवार्पिता ।

५. हृता—अनिच्छा से आनीता ।

६. अलंकारा—राजा द्वारा नृत्यादि कला-शिक्षिता एवं देवार्पिता ।

७. रुद्रगणिका अथवा गोपिका—मन्दिर की वेतन-भोगिनी नर्तकी । कर्नाटक में देवदासी 'नाइकानी' बनकर रह गई । हम अपनी संस्कृति पर हंसे या रोयें ? मंगल-कार्य में विधवा का प्रवेश वर्जित है । वैश्याएँ शौक से आयें और नाचें । ठीक कहती है यमुना, बंगला में दुर्गा-पूजा आदि शुभ अवसरों पर वैश्या के द्वार की मिट्टी लाना आवश्यक होता है । यह तो 'अत्रि संहिता' वाली धारणा हुई—"न स्त्री दूष्यति जारेन' अर्थात् स्त्री उपपति के संसर्ग से दूषित नहीं होती । संहिताकार की यह स्थापना कितनी विचित्र है कि सर्वप्रथम देवता ही स्त्री का उपभोग करते हैं, और इस प्रक्रिया के फलस्वरूप लोग उसे पवित्रता प्रदान करते हैं। गन्धर्व संयत-सुन्दर नारी और अग्नि सर्व-भक्ष्या । फिर कोई उसे अपवित्र कर ही नहीं सकता । ऋतु-स्राव से उसका सारा दुरित (पाप) धुल जाता है । नारी के प्रति यह दृष्टि हमें कहाँ ले जायगी ? नारी तो दूध-गाछ है । आज कला में नारी के प्रति हमें स्वस्थ और सच्ची दृष्टि लेकर चलना होगा ।

तुम सोचोगे, मुझे क्या हो गया, गुरुदेव की लेखनी से तुम्हें ये सब संकेत अरुचिपूर्ण लगेंगे । पर कला को जीवन के साथ सम्बद्ध करने की बात है ।

संगीत विद्यालय की ओर से मुझे महाराज के कोष से जो-कुछ मिलता रहा, उसे मैंने कभी कम न माना । गोबिन्दन दूसरी तरह सोचता था । वह कहता था, महाराज तो दान के रूप में ही यह धन देते हैं । उसने वह मार्ग छोड़ दिया, जिसमें महाराज से दान लेकर निर्वाह करना पड़े । उसने शास्त्रीय संगीत का मार्ग छोड़ दिया । तुम तो गोबिन्दन की तरह नहीं सोचते । तुम्हारी तो शास्त्रीय संगीत में पूर्ण

ष्ठा है। गोबिन्दन की दूसरी बात है। वह बम्बई में फ़िलम वालों के सामने यह दावा करता है कि उसका जन्म उस घराने में हुआ, जिसमें बीस पीढ़ियों से संगीत चला आ रहा है। इस प्रकार वह सिद्ध कर दिखाता है कि संगीत तो उसके रक्त में है। यह बात वह छिपा जाता है कि शास्त्रीय संगीत को बीच से छोड़ भागा। वह अभूतपूर्व प्रतिभा का दावा भी करता है। उसकी वह जाने। तुमने तो मुझसे दीक्षा ली।

संस्कृति के कला-मन्दिर में हम पुनः सत्य की प्रतिष्ठा करें। बीज की सुप्त शक्ति के समान सत्य भी अंकुरित होने के लिए समय, क्षेत्र और सुयोग की प्रतीक्षा करता रहता है।

तानपूरे को तो मैं अभी हाथ नहीं लगा सकता। यह पत्र लिख रहा हूँ। इसे भी तानपूरे की तुन-नन-नन समझो। जो मैं गाता हूँ, वह भी तो यह गाता है। संस्कृति का गान ही तो करता हूँ। संगीत यदि हमें हमारे धरातल से ऊँचा नहीं उठाता, तो उसे संगीत कैसे कहा जायगा? मेरा वह थप्पड़ तुम भूले तो न होगे। मुत्तु बाबा का गीत सुनकर तुम हँस पड़े थे। मैंने तुम्हारा अट्टहास सुन लिया। जब मैंने पूछा कि तुम क्यों हँसे, तो तुमने सच-सच बता दिया कि तुम मुत्तु बाबा के गीत पर हँसे। फिर तो थप्पड़ आवश्यक हो गया। तुम रोने लगे थे। फिर मैंने शान्तिपूर्वक समझाया था कि संगीत पर हँसना तो सरस्वती का अपमान है। मैंने तुम्हें विस्तार से समझाया था कि भले ही शास्त्र में यही बात आई है कि संगीत-विद्या दैवी वरदान है, पर हमें यह स्मरण रखना होगा कि इसे मानव ने अपनी साधना द्वारा विकसित किया और आगे बढ़ाया। शास्त्र में मार्ग-संगीत के साथ-साथ देशी संगीत का भी प्रमाण मिलता है। देशी संगीत को आज हम लोक-संगीत कहने लगे हैं। उस्ताद फैयाज़ खाँ बताते हैं कि उत्तर भारत में लोक-संगीत से बहुत-कुछ लिया गया। खयाल और ठप्पा लोक-संगीत से ही आये। झंझोटी आदि रागिनियाँ भी लोक-संगीत के धरातल से उठाई गईं। एक दिन बंगाल में माँझियों द्वारा गाई जाने वाली भाटियाली

भी शास्त्रीय संगीत की वस्तु बनकर रहेगी।

तानपूरा मेरे सामने पड़ा है। इस पर नित-नित की स्वर-साधना तो बन्द है। फिर भी इसमें मेरे प्राण बसते हैं। यह तानपूरा मुझे कह रहा है कि हम कला-तीर्थ को पहचानें, जिसमें अनेक संस्कृतियाँ गले मिलती हैं। तानपूरा कह रहा है कि संगीत में शैली का भेद भी क्या ?

हम उत्तर और दक्षिण के भेद-भाव मिटायें। कला की यही टेर है। कला के दूध-गाछ की यही माँग है। कला एक है। महासती की मृत देह के सदृश कहीं हम इसे बावन खण्डों में विभक्त न कर डालें।

यमुना के मुख से मैंने अनेक बार रवीन्द्रनाथ ठाकुर की ये पंक्तियाँ सुनी हैं :

तोमारे शतधा करि क्षुद्र करि दिया
माटिते लुटाय यारा तृप्त सुप्त हिया
समस्त धरिणी आजि अवहेला भरे
पा रखेछे ताहादेर माथार ऊपरे।

—तुम्हें शत्-शत् खण्डों में विभक्त करके, अपने सोये हृदयों में तृप्ति लेकर, जो लोग पृथ्वी पर लोट-पोट हो भक्ति दरशाते हैं, आज सारी धरित्री ने अवहेला के साथ उनके माथे पर पैर रख दिया है।

जे एक तरणी लक्ष लोकेर निर्भर
खण्ड-खण्ड करि तारे तरिबे सागर।

—जो एक नैया है लाखों लोगों का आधार, उसे खण्ड-खण्ड करके क्या सागर पार करोगे ?

तानपूरा सामने पड़ा है। अब जैसे वह मुझे घूर रहा है। इसे उठा लूँ और छेड़ दूँ कोई-सा भी राग, यही जी चाहता है। पर पत्र तो लिख रहा हूँ। क्या मैं अपनी बात कह भी पाया ? हाँ, तो हम कला को अपनी ही ओर खींचते हैं। कालिदास के महान् मानने से पूर्व पहले यही चेष्टा करते हैं कि उसे अपने ही प्रान्त का कवि सिद्ध कर डालें। त्यागराज को महान् संगीताचार्य सिद्ध करते समय हम ऐसे सोचते हैं,

जैसे उत्तर भारत का उसमें कुछ लेना-देना न हो। वैसे ही उत्तर भारत वाले तानसेन की यशकीर्ति में स्वयं ही गर्व करके रह जाते हैं, हम उसमें साझीदार नही बनते। हम कितने संकुचित होते जा रहे हैं !

वैसे हम विदेशी सत्ता से लड़ रहे हैं। हम एक देश की जय बुलाते हैं, भारत माता का नाम लेते हैं। पर कला को उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम में विभक्त करके, इसके खण्ड-खण्ड करके ही आत्म-तुष्टि अनुभव करते हैं।

तानपूरा तो एक है। सामने पड़ा तानपूरा साक्षी है। हाँ, तो हम उत्तर-दक्षिण की भावना भुलाकर हिन्दुस्तानी और कर्णाटकी संगीत को पास-पास लायें। आर्य-द्रविड़ संस्कृति पारावार के सदा-शुद्ध जल से आचमन करे।

तानपूरे की तो यही टेक है कि कला में देश-देश के सीमान्त भी विलीन हो जायँ। सब भेद-भाव भुलाकर एक ही मानव-कला और संस्कृति के दावेदार बनें। यह स्थिति दूर करें कि उपले जलते रहें और गोबर हँसता रहे।

अब रही मुत्तु बाबा को दिये वचन की बात। जी में आता है, सामने पड़ा तानपूरा उठाकर आलाप करने लगूँ। मन की बात गाकर कह सकूँ तो !

धन्य थे 'ऋग्वेद' के हमारे पूर्वज, जो देह से बिछुड़ी आत्मा को सम्बोधित करके आलाप लिया करते थे—

—जाओ उस प्राचीन मार्ग से जाओ,
जिससे हमारे पितर पुराकाल में गये।
—वहाँ तुम वरुण
और यम को स्वधा ग्रहण करते
देखोगे।
—यम से मिलो। पितरों से मिलो।

परम स्वर्ग में सुसम्पादित कर्मों का पुण्य
लाभ करो।
—पाप को छोड़ पुनः नवग्रह को प्राप्त हो !
नूतन आलोकमय तन धारण करो !

मुझे तो वही दूर नहीं जान, मुत्तु बाबा ! अपना वचन याद है। वरकला के मछुआटोला में किसी मछुआ दूध-गाछ की कोख से ही जन्म लूँगा। वह दिन आ रहा है। मैं उसे देख रहा हूँ।

प्रिय शंख, मेरे प्रिय शिष्य, तुम्हें कला का उत्तराधिकार सँभालकर रखना होगा। मैं आ रहा हूँ—पुनः जन्म लेकर, फिर से शिशु बनकर। शिष्य-का-शिष्य बनकर ही मेरा जीवन सार्थक होगा। गोबिन्दन से कहना, मैंने उसे क्षमा किया। वह स्वतन्त्र है। अपने लिए अलग पथ चुनने की उसे स्वतन्त्रता है।

विचित्र वीणे, मेरा प्रणाम स्वीकार करो। तानपूरा मेरी ओर देख रहा है, जैसे कह रहा हो—मुझे उठा लो और कोई राग गाओ। अन्त में यही कहना शेष है, मेरे फूल कन्याकुमारी में डालना, जहाँ तीन सागर मिलते हैं—इसलिए कि कला-संगम ही मेरा आदर्श रहा। और मेरी भस्मी चिलाक्कोर के ही सागर में डालना, जिसके समीपवर्ती मछुआटोला में मुझे जन्म लेना होगा, मुड़-मुड़ जन्म लेना होगा—सागर-संगीत का अमृत-मन्थन करने के लिए !"

—रुद्रपदम्

तेरह

गुरुदेव का पत्र गोबिन्दन ने तीन बार पढ़ा। हर बार उसे लगा, कुछ छूट गया, कोई वस्तु पकड़ में आने से रह गई। जैसे यह पत्र शंख के लिए नहीं, उसी के लिए लिखा गया हो।

कमरे में जहाँ गुरुदेव बैठा करते थे, सब-कुछ वैसे ही पड़ा था। बस गुरुदेव ही नहीं थे। शीशे के फ्रेम में जड़े गुरुदेव के सुन्दर सुलेख का उदाहरण थीं ये पंक्तियाँ :

राजा उदयन ने भिक्षु आनन्द को पाँच सौ चादरें दीं और पूछा,
"भन्ते, इतने चीवरों का क्या करेंगे ?"
"महाराज, जिन भिक्षुओं के चीवर फट गए हैं, उन्हें बाँटेंगे।"
"उनके जो पुराने चीवर हैं, उनका क्या करेंगे ?"
"महाराज, बिछौनों की चादरें बनायेंगे।"
"पुराने बिछौनों की चादरों का क्या करेंगे ?"
"महाराज, गद्दों के गिलाफ बनायेंगे।"
"पुराने गद्दों के गिलाफों का क्या करेंगे ?"
"महाराज, फ़र्श बनायेंगे।"
"पुराने फ़र्शों का क्या करेंगे ?"
"महाराज, पाँव-पोंछ बनायेंगे।"
"पुराने पाँव-पोंछों का क्या करेंगे ?"
"महाराज, झाड़न बनायेंगे।"

"पुराने झाड़नों का क्या करेंगे ?"

"उन्हें कूटकर कीचड़ के साथ मर्दन कर पलस्तर करेंगे।"

—एक बौद्ध कथा

उसे लगा, यह बौद्ध-कथा भी गुरुदेव ने उसी के लिए लिख रखी है। तो क्या उसे बम्बई नहीं जाना चाहिए ? वह बैठा यही सोच रहा था। माँ के सामने उसने प्रस्ताव रखकर देख लिया था कि वह उसके साथ बम्बई चले। माँ ने साफ़ कह दिया था कि वह वरकला नहीं छोड़ेगी। वरकला में ऐसी क्या बात थी ? अब तो उसे भी लगा, वरकला में कोई बात है।

गुरुदेव का पत्र उसने चौथी बार पढ़ा, जैसे गुरुदेव कह रहे हों—गोबिन्दन, उठ जाग ! गा नूतन राग ! रे अदूरदर्शी, उठ मोह त्याग ! नूतन भाव, नूतन चाव : भर ले मन के झोले में, हे वीतराग ! ले नूतन आग ! गा विहाग !

वह उठकर खड़ा हो गया, और शीशे में जड़ी बौद्ध-कथा पढ़ने लगा—एक बार, दो बार, तीन बार। इस कथा में से भी जैसे हर बार कोई सूत्र पीछे छूट जाता हो। आखिर बीच का सूत्र हाथ लग गया। उसने मन से पूछा, "यदि चीवर ने एक दिन झाड़न बनना है और झाड़न ने कीचड़ में मर्दन होकर पलस्तर में काम आना है, तो फिर क्या समूचे मानव-जीवन को इसी दृष्टि से देखना होगा ?"

फिर वह गुरुदेव की आत्मकथा इधर-उधर से पन्ने पलटकर पढ़ने लगा। माँ ने आकर टोका, "बेटा, इसे छोड़ दे। जाकर सागर-स्नान कर आ।" पर वह न उठा।

वह माँ से कहना चाहता था कि वरकला के जीवन पर पिताजी ने जो प्रभाव डाला उसी का प्रमाण है पिताजी की आत्मकथा। पर उसने यह बात मुँह से न निकाली। वह कहना चाहता था कि वरकला में ऐसी कोई विशेषता अवश्य है जिस पर वह बचपन में मुग्ध रहा।

"वरकला के अटल व्यक्तित्व को पिताजी ने समझा, माँ !" उसने साहसपूर्वक कह ही डाला।

"ठीक होगी यह बात।" माँ को जैसे अपनी ही बात स्मरण हो, "तुम सागर-स्नान कर आओ, बेटा !"

वह न उठा। माँ रसोई में काम कर रही थी। बाहर से सागर का जय-घोष सुनाई दे रहा था।

उसे स्मरण हो आया कि एक बार उसने पत्र में पिताजी को लिखा था, "हमारा देश तो इतना विशाल है कि कोई व्यक्ति मात्र वरकला को देखकर समूचे देश का चित्र हृदय में नहीं बिठा सकता।" इसके उत्तर में गुरुदेव ने लिखा था, "तुम्हारी बात के साथ इतना और जोड़ दूँ—हमारी विशाल जन्मभूमि के वर्तमान स्वरूप की झाँकी देखकर ही कौन इसके महामहिम अतीत की कल्पना जुटा सकता है ?" उसे लगा कि पिताजी ने ठीक ही लिखा था।

"माँ, हमारी जन्मभूमि की जड़ें तो हमारे अतीत में पाताल तक चली गई हैं !" उसने आह्लादमय स्वर में कहा।

"ऐसी बातें तो तुम्हारे पिताजी रोज़ ही कहा करते थे।" माँ को जैसे इस प्रकार की सूक्तियों में कोई रस नहीं रह गया था।

"हमारा अतीत हमारे वर्तमान के साथ जुड़ा है, माँ ! और हमारे वर्तमान से हमारे भविष्य के अँखुए फूट रहे हैं।"

गोबिन्दन की यह बात भी माँ को न छू सकी। वह बोली, "शंख इसी गाड़ी से आ रहा होगा। तुम उसके आने तक सागर-स्नान कर आओ न !"

माँ के पैर यथार्थ के धरातल पर थे। जाने वाला चला गया था, और अब वह लौटकर नहीं आ सकता था। अब माँ का आग्रह टालना सहज न था। माँ ने उसे कन्धे से पकड़कर उठा दिया था।

वह स्नान के बाद लौटा, तो देखा शंख लौट आया। शंख फूट-फूटकर रो पड़ा। गोबिन्दन भी स्थिर-मन न रह सका। बचपन के मित्रों

के आँसू गले मिलते रहे। मां ने बड़ी मुश्किल से उन्हें अलग किया और गम्भीर आवाज़ में कहा, "रोने से तो वे लौटकर आने से रहे। सोचो और विचार करो। आगे की बात सोचने वाला ही बुद्धिमान है !"

शंख स्नान करने चल दिया। गोबिन्दन पिता की आत्मकथा पढ़ने लगा। स्नान के बाद शंख लौटा, तो माँ ने कहा, "भोजन तैयार है !"

"मैं तो कुछ नहीं खाऊँगा, माँ ! मुझे भूख नहीं !" शंख की आवाज़ में वेदना का स्वर था।

"तुम नहीं खाओगे तो मुझे भी भूख नहीं !" गोबिन्दन भी चुप न रह सका।

"अन्न तो किसी से छूटा नहीं, बेटा !" माँ ने समझाया, अन्न की स्तुति से ही तो गुरुदेव ने अपनी पुस्तक आरम्भ की है।"

तीनों की आँखें पुस्तक की पाण्डुलिपि पर झुकी थीं—समर्पण-पृष्ठ पर :

अन्नमय है हमारा मन ! उसी अन्नमय कला-स्रोत को समर्पित है यह ग्रन्थ।

ब्रह्मविद्या की दीक्षा देते हुए उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा, "पन्द्रह दिन तक कुछ मत खाओ।"

पन्द्रह दिन के उपवास के बाद उसने पिता से पूछा, "देव, क्या सुनाऊँ ?"

पिता ने आज्ञा दी, "सौम्य, मुझे ऋग्, यजुः, साम के मन्त्र सुनाओ।"

पुत्र ने हताश वाणी में कहा, "देव, क्षमा करें। मैं सभी मन्त्र भूल गया हूँ।"

तदनन्तर पिता के आदेशानुसार श्वेतकेतु ने भोजन किया और सभी मन्त्र उसकी जिह्वा पर उतर आए।

तब पिता ने कहा, "सौम्य, अन्नमय है हमारा मन। अन्न के अभाव में उसकी गति कहाँ ?"

अब दोनों मित्रों को भोजन के लिए बैठते देर न लगी।

चौदह

गाड़ी जितने वेग से आगे की ओर भागी जा रही थी, शंखधरन की विचारधारा उतनी ही गति से पीछे, दूर पीछे, वरकला की ओर भाग रही थी।

शंख को चुप पाकर गोबिन्दन ने कहा, "अब पीछे की बातें छोड़ो, आगे की सोचो।"

शंख ने कुछ उत्तर न दिया। वह कुछ इस तरह बैठा था, जैसे अगले किसी भी स्टेशन पर उतर सकता हो। एक विचार आता, एक जाता। ऐसी दुविधा में इससे पहले वह कभी नहीं पड़ा था। कभी सोचता, उसका यों बम्बई का टिकट कटाकर गाड़ी में आ बैठना गुरु-परम्परा का अपमान है। गुरु की सब बातें भुलाकर उसने गुरु की महिमा को नीचा दिखाया, उसे बट्टा लगाया। फिर गोबिन्दन की बातें याद आतीं। बम्बई की रस-गन्ध-ध्वनि का जो चित्र गोबिन्दन ने बातों-ही-बातों में उसे दिखाया था, उसमें कितना आकर्षण था!

गोबिन्दन ने उसे कठपुतली बना लिया, जब उसने बताया, "जहाँ मैं रहता हूँ बम्बई में मैरीन ड्राइव पर एक फ्लैट में, वहाँ से सागर का दृश्य बहुत भला लगता है।" गोबिन्दन ने यह भी तो कहा था, "बम्बई में तुम्हारा सितारा एकदम चमक जायगा!" वह सँभलकर बैठ गया; अहंभाव की टेक मिल गई।

वह सोचने लगा, गोबिन्दन कितना निपुण है! आत्मविश्वास तो

उसकी घुट्टी में है। गोबिन्दन ने उसे यह भी तो बताया था कि बम्बई में वड़े-बड़े लोगों से उसकी मित्रता है, जो उसकी प्रशस्ति गाते हैं। उसने अपनी योग्यता का लम्बा-चौड़ा हिसाब-किताब बताया था, अपने सम्बन्ध-सूत्रों का मानो त्रिताल में ठेका लगाया था।

गोबिन्दन ने उसका कन्धा झँझोड़कर कहा, "वरकला अपनी जगह रहेगा, कहीं चला नहीं जायगा। बम्बई में तुम्हें वरकला की याद नहीं सतायेगी। बम्बई का जादू सिर चढ़ बोलेगा।"

"गुरुदेव ने मुझसे जिस आचरण की आशा की थी, मैं उससे हट रहा हूँ।"

"यह तुम्हारा भ्रम है। तुम्हारे अन्दर जो भय भरा हुआ है, उसे निकाल दो। मैं कहता हूँ, बम्बई में तुम्हारी कला चलेगी। तुम्हें पैसा मिलेगा। पैसा तो जरूरी है।"

दुविधा में उलझा-उलझा शंख बैठा था, जैसे अब भी वह अगले स्टेशन पर नीचे उतर जाने का फैसला कर सकता हो। वह कह सकता था—मुझे तो वरकला ही पसन्द है, वहीं लौट जाऊँगा; बम्बई नहीं चाहिए। पर गोबिन्दन की बातें मुड़-मुड़ मन पर थाप लगा रही थीं—बम्बई की सुख-सुविधा की बातें। बम्बई में नीलू भी तो थी जो किसी विद्यालय में पढ़ाती थी। गोबिन्दन को तो विश्वास था, एक दिन नीलू को भी फिल्मों में ले आयेंगे। नीलू का आग्रह था, फिल्म में काम करने के लिए पिताजी की स्वीकृति चाहिए और पिताजी कभी इसकी अनुमति नहीं दे सकते थे। गोबिन्दन का विश्वास था कि जब शंख बम्बई से नम्पूतिरिप्पाड को लिखेगा कि नीलू का भविष्य तो फिल्म के साथ जुड़ना ही चाहिए तो वे मान जायँगे। गोबिन्दन इस बात पर हँसता था कि नीलू व्यर्थ ही नैतिकता की दलील देती है और उस विद्यालय में अपना समय गँवा रही है, जबकि फिल्मों में उसे असीम ख्याति मिल सकती है और अपार दौलत।

"क्या सोच रहे हो, शंख ?" गोबिन्दन ने उसकी पीठ पर थपकी

देकर कहा, "तुममें साहस होना चाहिए। हम पिताजी की जीवनी पर फिल्म बनायेंगे। उनकी आत्मकथा छपने-भर की देर है। इसके अनुवाद की व्यवस्था बम्बई में कुछ भी मुश्किल नहीं होगी। अनुवाद निकला नहीं और समझो चर्चा शुरू हो गई। फिर हम इसमें पैसा लगाने वाले भी ढूँढ ही लेंगे। गुरुदेव का संगीत तुमसे अच्छा कौन देगा ? इस तरह तुम गुरु-परम्परा की कुछ सेवा ही तो करोगे।"

"गुरुदेव की यश-महिमा को आगे ले चलने में कुछ कर सकूँ, यह तो मेरा धर्म है !"

"यही तो मैं भी सोचता हूँ। इस काम में इरा भी हमारी सहायता करेगी।"

शंख चुपचाप बैठा रहा। इरा की महिमा वह सुन चुका था। शान्त-संयत भाव से वह बीच-बीच में गोबिन्दन की ओर देख लेता। उसने सोचा, गुरुदेव पर जो फिल्म बनेगी, उसमें नीलू को भी ले ही आयेंगे। इरा तो रहेगी ही। साठवीं वर्षगाँठ वाला अन्तिम दृश्य ठीक से दिखाने में आफताबे-मौसीकी फैयाज़ खाँ अवश्य सहयोग देंगे। बम्बई से बड़ौदा कौन दूर है ! बड़ौदा से वे बम्बई तो आ ही सकेंगे।

"तुम्हें देखकर नीलू कितनी प्रसन्न होगी, शंख !" गोबिन्दन मुस्कराया, "जब भी मिलती है, तुम्हारा समाचार अवश्य पूछती है।"

शंख मुस्कराया। इस समय नीलू की स्मृति कितनी सुखद थी ! गुरुदेव की जीवनी की फिल्म की बात तो घाव पर मरहम का काम कर गई। यह सुझाव गोबिन्दन के जन्म-जात संस्कारों का प्रतीक था। आखिर गोबिन्दन पिता का पुत्र निकला। शंख को लगा, जैसे वह फिल्म तैयार भी हो गई। पिता की प्रसिद्धि में गोबिन्दन ने हाथ बँटाया। पुत्र हो तो ऐसा। पिता-पुत्र में ऐसा ही ताल-मेल होना चाहिए। मन-वीणा के तार झनझना उठे। गर्व और आनन्द से उसकी कल्पना नाच उठी।

डिब्बे में बहुत भीड़ थी। गाड़ी दनदनाती हुई भागी जा रही थी। वरकला पीछे रह गया था—बहुत पीछे।

गोबिन्दन ने इस बात पर सन्तोष प्रकट किया कि वरकला के संगीत-विद्यालय में त्रिवेन्द्रम् से एक महोदय आ रहे हैं, और जैसा कि नम्पूतिरिप्पाड ने कहा था, चिलाक्कोर के मछुआटोला वाली संगीत-शाला के लिए भी वे गुरुदेव के एक अन्य शिष्य की सेवाएँ प्राप्त कर लेंगे। "यह तो संसार है, शंख !" उसने शंख की आँखों में झाँककर कहा, "एक जाता है, एक आता है। वरकला की चिन्ता छोड़ो। तुम्हारे बिना भी वरकला की गाड़ी चलेगी। तुम्हारी जरूरत तो बम्बई में है। बम्बई तुम्हारी कला को सलामी देगी।"

शंख मुस्कराया, "कला ही जीवन है, गुरुदेव कहा करते थे। कला दूध-गाछ है।"

"तुमने देखा था न, शंख !" गोबिन्दन ने प्रसंग बदलकर कहा, "माँ ने मुझे बम्बई आने से रोका नहीं था, उसने तो मेरे इस सुझाव को भी सराहा कि तुम मेरे साथ बम्बई चलो। माँ बहुत समझदार है। वह जानती है, पैसा ही गाड़ी का बैल है। वह तो पिताजी से भी यही बात कहा करती थी। पिताजी जीवन-भर आदर्शवादी रहे। क्यों, मैं झूठ कहता हूँ, शंख ?" और फिर पैंतरा बदलकर वह बम्बई की प्रशंसा के पुल बाँधने लगा। साथ-साथ वह यह भी कहता जा रहा था कि वहाँ मसका-पालिश के बिना तो काम नहीं चलता।

शंख फिर किसी सोच में खो गया, जैसे वह अब भी अगले स्टेशन पर उतरकर वरकला की गाड़ी पकड़ सकता हो। वह सोच रहा था, मैं तो किसीको मसका-पालिश नहीं लगा सकूँगा। फिल्मों में मेरा संगीत कैसे चलेगा ? वहाँ तो अटपटी धुनों की ही पूछ है।

"फिल्मों में लोग खूब पैसा लगाते हैं !" गोबिन्दन मुस्कराया, "और खूब मुनाफा कमाते हैं। संगीत के बिना फिल्म की गाड़ी नहीं चलती।"

"संगीत !" शंख ने नाक-भौं चढ़ाकर गर्दन हिलाई। गर्दन तक पड़ते उसके घुँघराले बाल झूम उठे।

"हाँ-हाँ, संगीत !" गोबिन्दन ने अपनी बात दोहराई।

"गुरुदेव तो कहते थे, उसे संगीत कहना कला का अपमान है।"

"बात-बात में उनका हवाला न दो!" गोबिन्दन जैसे खीझ उठा, "अपनी बात करो। वरकला पीछे रह गया—बहुत पीछे। दो स्टेशन और। फिर बम्बई की सीमा शुरू हो जायगी। हम विक्टोरिया टर्मिनस पर उतरेंगे।" कहते-कहते वह मुस्करा उठा, "गुरुदेव तो हम दोनों के गुरु थे। वे अब नहीं रहे। अब यह समझो कि बम्बई में कुछ दिन मुझे ही तुम्हारा गुरु बनना होगा। मैं तुम्हें बताया करूँगा, कहाँ ठुमरी और दादरा के गड्ड-मड्ड से कोई चीज़ उभारनी है, कहाँ ठेका लगाते-लगाते मानो पाताल में उतर जाना है, जहाँ हमारे महाबलि रहते हैं—नीचे, बहुत नीचे।

"बहुत नीचे—खर्ज मन्दर से भी नीचे!" शंख हँस पड़ा।

"पैसा देने वाला हमें चाहे जितना भी नीचे क्यों न ले चले।" गोबिन्दन की आँखें नाच उठीं, "यह भी मसका-पालिश है। हमें पैसा चाहिए। हमसे कोई ऊँचा स्वर लगवाये, चाहे नीचा, सात पाताल वाला।"

मीना-बाज़ार

एक

मैरीन ड्राइव को देखकर यह कहना तो कठिन है कि बम्बई किसी समय मछुओं का साधारण-सा गाँव था। हाँ, तो मैरीन ड्राइव के तीन रंग हैं। एक रंग उषा का है, जैसा शृङ्गार से पहले नववधू का होता है। एक रंग दोपहर का है—न शोख न चंचल; जाने क्यों ऊँघता-सा रहता है। एक रंग साँझ का है, जिसमें इन्द्रधनुष के सातों रंग मुस्कराते हैं। यहाँ की उषा है किसी झाँकी की झलक-सी, दोपहर विराम-सी और साँझ एकदम विलम्बित लय-सी। साँझ का निखरा हुआ रंग ही मैरीन ड्राइव का सच्चा रंग है।

जहाँ मैरीन ड्राइव की गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ सागर के साथ-साथ चली गई हैं, वहाँ कभी सागर ठाठें मारता था। यह सब भूमि सागर से छीन ली गई।

मैरीन ड्राइव से आरम्भ होने वाला यह पत्थर और सीमेण्ट का रास्ता एक लम्बी भुजा के समान सागर के भीतर तक चला गया है, जैसे माँ अपने बच्चों को पास बुला रही हो। इसका अन्तिम सिरा है 'नरीमान पॉइंट'। नरीमान का सपना था कि एक दिन इस पाषाणी भुजा को कोलाबा से मिलाकर इसके उत्तर-पूर्वी भाग का जल निकाल दिया जाय और फिर इसे समतल भूमि का रूप दे दिया जाय। फिर तो हम वहाँ मैरीन ड्राइव की अट्टालिकाओं से भी ऊँचे भवन बनते देखेंगे और सोचेंगे, मनुष्य चाहे तो क्या नहीं कर सकता! बम्बई तो इसी

प्रकार फैलती चली गई है, फैल रही है—नई-नई बस्तियों के रूप में, नये-नये उप-नगरों का चेहरा-मुहरा लेकर। पूरा नगर एक विराट् बर-गद के सदृश है, जिसकी हर छोटी-बड़ी शाखा एक-दूसरी पर बाज़ी ले जाने को हाथ-पैर मार रही हो।

नरीमान-पॉइंट पर बैठे-बैठे गोबिन्दन ने कहा, "वह रहा उस ऊँची अट्टालिका में हमारा फ्लैट। उससे सात फ्लैट छोड़कर रहती है इरा। कल उसका जन्म-दिन है। तुम भी चलना मेरे साथ।"

"तुम कह रहे थे, 'माँग का सिन्दूर' में माँ की पृष्ठ-भूमि में काम किया है इरा ने।" शंख मुस्कराया।

"इरा की अपनी माँग में सिन्दूर नहीं पड़ा।" गोबिन्दन ने आँखें नचाईं, "वह माँ नहीं है, पर ममता के अभिनय में वह गोद में दूध पिलाने वालियों को भी पीछे छोड़ गई। हम आज दूसरे शो में यह पिक्चर देखने चलेंगे।"

शंख कुछ न बोला। वह बड़े ध्यान से उन युवतियों को देखने लगा, जो अभी-अभी एक युवक के साथ आकर खड़ी हो गई थीं।

फिर एक अधेड़ जोड़ा आ निकला। साथ थी रूपसी कन्या, जूड़े पर श्वेत फूल खोंसे।

तीनों कन्याएँ घुल-मिलकर गप-शप करने लगीं, मानो वे चिर-परि-चिता हों।

गोबिन्दन ने शंख के कान में कहा, "यह उजले फूल वाली लड़की कुछ-कुछ इरा से मिलती है—वही चेहरा-मुहरा, वही उठान।"

"मैं तो यह नहीं कह सकता।" शंख मुस्कराया, "मुझे तो इरा से मिलाया नहीं।"

"कल तुम उससे मिलोगे न, ठाठ से!" गोबिन्दन हँस पड़ा, "और देखो, 'माँग का सिन्दूर' तो आज तुम देख ही लो। शायद वह पूछ बैठे। और देखो, इरा से मिलने पर कोई कच्ची-पक्की बात न कह बैठना।"

सूर्य सागर में डूब रहा था। सागर की लहरें नरीमान पॉइंट से टकरा रही थीं, मानो डूबते सूर्य की सुनहरी घेरेदार घघरिया पहने नीलवर्ण लहरों ने भी किसी नृत्य-मुद्रा में गोबिन्दन की बात दोहरा दी—हाँ-हाँ, कोई कच्ची-पक्की बात न कह बैठना।

शंख तीनों कन्याओं की ओर मुड़-मुड़ देख लेता और सोचता, इनकी माँग में भी सिन्दूर पड़ेगा। ये भी माँ बनेंगी; शिशु के लिए दूध उतरेगा। उसकी कल्पना में वरकला घूम गया। वहाँ भी सागर-तट पर सूर्य डूब रहा होगा। वहाँ भी लाल चट्टानों से खेलती लहरों ने सुनहरी घघरिया पहनी होगी। इसी प्रकार लहरें उचक-उचककर वरकला के देवता जनार्दन स्वामी के दर्शन-लाभ की इच्छुक-सी दीखती होंगी।

गोबिन्दन म्याने कद और इकहरे शरीर का युवक था। मुस्कराता, बात करता, तो गहरी भवों के नीचे से उसकी बड़ी-बड़ी आखें उसकी प्रतिभा का नीलम उछालती-सी लगतीं। उसे कभी-कभी इस बात का ध्यान अवश्य आता कि उसका कद ऊँचा क्यों न हुआ। पिताजी तो छः फुट से निकलते हुए थे, पर वह पिता पर नहीं, माँ पर था।

शंख लम्बा था, मानो मूर्तिकार ने ऊँची चट्टान चुनकर उसकी आकृति घड़ी हो। लम्बे हाथ, बड़ा सिर, चौड़ा माथा। वह वरकला के वेप में था—कमर में 'मुण्डु', खुली आस्तीनों का कुर्ता, कन्धों पर सुनहरी किनारी वाला पटका। गोबिन्दन के समान पेंट और बुशशर्ट पहनने को वह राज़ी न था। उसके मुख पर मुस्कान खिल रही थी—केले के कुञ्जों से घिरे घर के सद्भाव और स्वागतम् भाव-सी।

तीनों कन्याएँ सूर्य की डूबती किरणों में स्वर्ण-मूर्तियाँ-सी लग रही थीं। वह युवक एक ओर को हटकर अधेड़ जोड़े के साथ किसी गलत पते वाले लिफाफे जैसे प्रसंग पर जल्दी-जल्दी ज़बान चला रहा था, मानो उस लिफाफे की सही मंज़िल पर पहुँचने की कोई आशा न हो।

गोबिन्दन बोला, "बम्बई में मुझे कैसे जूझना पड़ा। बहुत दिन तक फुटपाथ पर सोया। फिर खोली मिली। और दादर की खोली

से मैरीन ड्राइव के फ्लैट में आने की कहानी तुम सुनोगे तो मेरे साहस और परिश्रम को अवश्य सराहोगे।"

"इस हिसाब से तो मैं भाग्यशाली हूँ!" शंख मुस्कराया, "मैं तो वरकला से सीधा मैरीन ड्राइव के फ्लैट में ही चला आया।"

"एक बात यह भी तो है। मुझे इरा से मिलने में अनेक दिन लग गए थे। तुम कल ही, यानी बम्बई आने के तीसरे ही दिन इरा से मिल लोगे।" गोबिन्दन हँस पड़ा, "बस इरा के सामने कोई कच्ची-पक्की बात न कह बैठना। यह भी मत पूछना कि उसके सपनों के सूटकेस में क्या-क्या शंख-सीपियाँ सोई पड़ी हैं।"

"तुम कहते हो तो बोलूँगा ही नहीं। केवल मुस्कराकर ही उसे देखता रह जाऊँगा। मैं ऐसा ही करूँगा, बोलूँगा ही नहीं!" और शंख की कल्पना में जनार्दन स्वामी के मन्दिर का सुनहरा कलश घूम गया, जो आकाश में लटकता-सा लगता था, जैसे मन्दिर की घण्टियों की आवाज बराबर कान में पड़ रही हो। देवता का दर्शन-लाभ करने वाले यात्री जैसे सीढ़ियाँ चढ़कर मन्दिर को जा रहे हों। उसकी आँखें खुल गईं, जैसे नींद से जागकर उसने पूछा, "इरा का जन्म यहीं बम्बई का है?"

"यहाँ का नहीं, हैदराबाद का!" यह कहकर गोबिन्दन वैभव में पली उन कन्याओं की ओर देखने लगा, जिनके विचार मिट्टी में दबे बीजों से जन्मे नवजात अंखुओं-से थे।

शंख की आँखों में वरकला के घर घूम गए—केले के कुञ्जों के बीच मुस्कराते घर; नवजात बछड़ों को प्यार से चाटती गौएं; पकने को लटकाये केलों के गुच्छे; धूप में सूखने को फैलाई काली मिर्च; काजू के भूरे छिलके वाले ढेर, जो बम्बई तक आ पहुँचते थे और जिन्हें डालडा में तलकर और नमक लगाकर बम्बई के बँगलौरी और ईरानी रेस्तोराँ में परोसा जाता था। वरकला के किसी भी घर की विशेषता थी ताज़ा दोशे की गरम-गरम सुगन्ध। गोबिन्दन ने उसके कन्धे पर

हाथ रखकर कहा, "कमाल हो जाय, यदि हमारी नीलू भी इस समय यहाँ आ निकले ! कल तो नहीं, परसों उससे मिलने चलेंगे।"

श्वेत फूल वाली रूपसी दोनों युवतियों के बीच खड़ी चौखटे में जड़ी तस्वीर-सी लग रही थी। उसे देखकर शंख की आँखों में पिता की बनाई मातृ-मूर्ति घूम गई। यह भी माँ बनेगी, उसने सोचा—इसका दूध भी उतरेगा।

तीनों कन्याएँ किसी बात पर हँसकर दोहरी हो-हो गईं। गोबिन्दन बोला, "तुम्हें देखकर नीलू कितनी प्रसन्न होगी !"

"और इरा अप्रसन्न होगी ?"

"परिचय की बात है। नीलू अपनी जो है।"

"और इरा ?"

"फिर वही कच्ची-पक्की बात ! पूछ तो रहे हो, पर इसका भाव तुम नहीं समझते !" गोबिन्दन मुस्कराया, "मैं तुम्हें अहल्या की माँ से भी मिलाऊँगा।"

"और अहल्या से नहीं ?"

"फिर कच्ची-पक्की बात ! हाँ तो अहल्या की माँ आज भी उसी खोली में रहती है—उस खोली से तीसरी खोली में, जहाँ कभी मैं रहता था।"

इस बीच कई लोग नरीमान पॉइण्ट पर आये और चले गये। अधेड़ जोड़ा उस युवक से बातें किये जा रहा था, मानो वे अपनी कन्या के लिए वर पा गए हों। और उधर तीनों कन्याएँ मुस्कान के नीलम-मोती बिखेर रही थीं।

"पिताजी हमें सदा के लिए छोड़ गए !" गोविन्दन ने रुआसी-सी आवाज में कहा, "अब तो वे अपनी आत्म-कथा में ही जीवित रहेंगे। मलयालम में छप जाने दो। हम उसे हिन्दी में भी छपवायेंगे। पिताजी का यश तो बढ़ना ही चाहिए।"

"क्या उसकी फ़िल्म नहीं बन सकती ?"

"क्यों नहीं। पर रुपया कौन लगाये ? देखेंगे—जो भी बन पड़ेगा करेंगे।"

"गुरुदेव तो दोबारा जन्म लेंगे वरकला के मछुआटोला में !" शंख ने करुणा-भरी आवाज़ में कहा, "चिट्ठी में लिखी बातें झूठ तो नहीं हो सकतीं। तुम उन्हें उतना नहीं जान पाए, जितना मैं !"

गोबिन्दन ने आँखों में व्यंग्य-सा चमकाकर कहा, "सुना नहीं था, अँधेरी से लौटते समय रेल में हमारे पास बैठा युवक क्या गा रहा था !" और वह गुनगुनाने लगा—

"अगले वक्तों के हैं ये लोग इन्हें कुछ न कहो !"

शंख के लिए इस विचार से सहमत होना सहज न था। गुरुदेव की बातें रह-रहकर उसे याद आ रही थीं। उनकी कला, उनकी सहृदयता, उनकी लेखनी में समन्वय की भावना। इनका संगम ही तो थी गुरुदेव की आत्मकथा। गुरुदेव की चिट्ठी को आत्मकथा का उपसंहार बनाने की बात भी नम्पूतिरिप्पाड को समय पर सूझी।

"तुम मेरे साथ आ गए, यह तुमने बुद्धिमानी का काम किया।" गोबिन्दन मुस्कराया, "अब देखो, हम बम्बई को किस तरह उँगलियों पर नचाते हैं। हम एक नहीं, दो हैं। नहीं, हम दो नहीं, एक हैं। मुम्बादेवी हम पर दयालु होगी ! जन्मभूमि—नहीं, नहीं, जहाँ मनुष्य का जन्म होता है। जन्मभूमि तो सारा देश है। लक्ष्य-कोटि भुजाएँ उठाकर जन्मभूमि अपनी सन्तान को प्यार करती है।"

शंख कुछ न बोला। उसे लगा गोबिन्दन ठीक कह रहा है। जन्म-भूमि में तो सात लाख गाँव थे। उसमें तो शत-शत नगर-उपनगर थे। जंगल, पहाड़, मैदान थे; नदी-माताओं के प्रिय शत-शत जनपद थे ! ऐसी जन्मभूमि से तो जितना प्यार किया जाय, कम था।

"इरावती को इस बार तुम मातृमूर्ति भेंट करना शंख !"

"कहीं यह भी कच्ची-पक्की बात तो नहीं होगी ?"

"अरे नहीं, शंख !" और गोबिन्दन ने प्रसंग बदलकर कहा, "कल

शाम जब हम एक मित्र से मिलने गाड़ी में अँधेरी गये थे, तो तुम्हें डिब्बे में जैसे पूरा हिन्दुस्तान दिखाई दे गया था और तुमने आश्चर्य से पूछ लिया था—क्या ये सब लोग अँधेरी जा रहे हैं ? और मैंने हँसकर कहा था—और भी कई स्टेशनों से लोग अँधेरी जा रहे होंगे। और तुमने कहा था—अब तो समय-समय पर गाड़ी में आते-जाते ये लोग नज़र आया-जाया करेंगे।"

शंख ने आँखें नचाईं, "अँधेरी में उस मित्र के घर पहुँचते-पहुँचते तो हमने बम्बई के कई रंग देख लिए थे।"

वह अधेड़ जोड़ा चल पड़ा, साथ-साथ वह युवक भी। पीछे-पीछे जा रही थीं तीनों कन्याएँ, गलबहियाँ डाले।

नरीमान पॉइण्ट पर अँधेरा छा गया था, पर मैरीन ड्राइव का एक-एक फ्लैट बिजली के प्रकाश से जगमगा रहा था। "ऐसी ही पछवा वरकला में भी चल रही होगी इस समय !" शंख ने गोबिन्दन के गले में बाँह डालकर कहा, "अब उठा जाय। 'माँग का सिन्दूर' दिखा रहे हो न ?"

"अवश्य !" गोबिन्दन हस पड़ा, "मैं तो भूल ही गया था पिक्चर देखने की बात। पर कल तुम इरा से मिल रहे हो। हर हथियार से लैस होकर ही तुम्हें इरा से मिलना चाहिए। तो अब चलकर पहले पेट-पूजा करें, फिर पिक्चर के टिकट लें !"

दो

इरावती के जन्म-दिन की पार्टी में सम्मिलित होने के लिए गोबिन्दन पूरी तैयारी करके आया था। गैबोडीन के सूट में उसका व्यक्तित्व इस सीमा तक उभर सकता है, यह देखकर शंखधरन मन-ही-मन उसके रंग-ढंग पर गद्‌गद हो रहा था। पर जब ठीक समय पर इरावती के यहाँ जाने की बजाय गोबिन्दन उसे लेकर बाहर अन्धकार में जाकर खड़ा हो गया, तो उसे उसकी बुद्धि पर आश्चर्य हुआ।

"यहाँ अन्धकार में खड़े होकर हम यह अनुमान नहीं लगा सकते कि भीतर कितना प्रकाश है!" गोबिन्दन ने एक दार्शनिक के स्वर में कहा।

"तो वहाँ चलने की बजाय हम नरीमान पॉइंट की ओर क्यों जा रहे हैं?" शंखधरन ने चलते-चलते कहा, "इधर तो हम कल भी आये थे और कल फिर आ सकते हैं। पार्टी का समय तो कभी का हो गया।"

"इस समय का मेरी दृष्टि में कोई मोल नहीं।"

"तो क्या पार्टी हो चुकने के बाद जाओगे?"

"तुम देखते जाओ!"

शंखधरन बिलकुल न समझ सका कि गोबिन्दन वहाँ जाने से क्यों झिझक रहा है।

एक घंटे से वे इस अन्धकारपूर्ण कोने में खड़े थे। सागर की लहरें इस अन्धकार में भी मैरीन ड्राइव की पथरीली दीवार से टकरा रही

थीं। माँ-बेटे की मूर्ति को शंखधरन के हाथ से लेकर कल रात गोबिन्दन किस तरह ब्रासो से पालिश करता रहा था, वह दृश्य शंखधरन की आँखों में घूम गया।

अब वह मूर्ति एक खूबसूरत-से डिब्बे में बन्द थी, और वह इसे हाथ में लिये खड़ा था। वह सोच रहा था कि कैसे यह मूर्ति इरावती को भेंट करेगा। डिब्बे के भीतर बन्द-की-बन्द ही देना ठीक होगा या डिब्बे से निकालकर। उस समय उसके हाथ काँपने तो नहीं लगेंगे? क्या यह बताना अनावश्यक तो न होगा कि वह उस मूर्तिकार का पुत्र है जिसने यह मूर्ति बनाई? यदि गोबिन्दन ने वहाँ कह दिया कि वह संगीताचार्य है, तो उसे गाना भी पड़ेगा। पर पार्टी में वैसा गाना क्या अच्छा लगेगा? इस सम्बन्ध में वह गोबिन्दन को कुछ कहना ही नहीं चाहता था, क्योंकि उसका विचार था कि यदि उसने उसे ऐसा करने से मना किया तो वह ऐसा अवश्य करेगा; न करना होगा, तो भी करेगा। इसलिए उसने इतना ही कहा, "हम पार्टी में चलते क्यों नहीं?"

"अभी और बल्ब जल जाने दो!"

"देर से ही जाना था, तो हम अपने फ्लैट में ही क्यों न बैठे रहे? लोग भीतर जा रहे हैं। हम क्यों नहीं चलते?" शंखधरन ने तंग आकर कहा।

"यह मेरी टैकनीक है।"

"वाह! देर से जाना कौन-सी टैकनीक है?" शंखधरन ने उसे मानो पार्टी की ओर धकेलते हुए कहा।

"मैं चाहता हूँ कि देर से पार्टी में जाऊँ और हाथ उठाकर कहूँ— 'एक्सक्यूज़ माई लेट एराइवल!' तो वहाँ बैठे हुए लोगों की आँखें मुझे एक साथ देख लें।"

"पर इससे होगा क्या?"

"हाई सोसाइटी में दो ही अन्दाज़ सुन्दर समझे जाते हैं।"

"कौन-कौनसे?"

"ऐन्ट्रेन्स और ऐग्ज़िट !" गोबिन्दन जल्दी-जल्दी कह गया, और फिर उसने इस बात की ज़रा भी परवाह न करते हुए कि शंखधरन उसकी बात समझ भी गया या नहीं, दूर से एक कार को उस कोठी के अहाते में घुसते देखकर कहा, "लो वह आ गया !"

शंखधरन ने केवल इतना ही देखा कि एक कार उस कोठी के अहाते में प्रवेश कर रही है। उसने दबे स्वर में पूछा, "वह कौन ?"

"मेरा होने वाला फाइनान्सर मनोज सान्याल !" गोबिन्दन ने खुशी से उछलकर कहा, और वह शंखधरन को खींचकर कोठी में ले गया।

भीतर बहुत प्रकाश था—हाई सोसाइटी का चमत्कारमय सौन्दर्य, इन्द्र का अखाड़ा।

इरावती ने दूर से गोबिन्दन को देखा, तो वह लपककर उसके पास आ गई।

"ऐक्सक्यूज़ माई लेट एराइवल !"

"चलो लेट ही सही, आ तो गए !" इरावती मुस्कराई।

"ये हैं गुरुदेव रुद्रपदम् के शिष्य संगीताचार्य शंखधरन।" उसने परिचय कराया, "यह आपके लिए एक भेंट लाये हैं।"

शंख ने वह डिब्बा इरावती के हाथ में दे दिया।

"इसमें क्या है ?"

उत्तर में शंख केवल मुस्करा दिया।

"खोलकर देखिए न !" गोबिन्दन ने हँसकर कहा, "शुड आई हैल्प यू ?" उसने डिब्बा ले लिया और उसमें से चमचमाती मूर्ति निकालकर इरावती के हाथ में थमा दी।

"शुक्रिया !" इरावती मुस्कान बिखेरती हुई बोली, "किसने बनाई यह मूर्ति, शंखधरनजी ?"

शंख दोबारा मुस्कराया और मुँह से कुछ न बोला।

तीन-चार युवक और एक अधेड़ आयु का व्यक्ति आकर इरावती के पास खड़े हो गए, और मुग्ध दृष्टि से इस मूर्ति की ओर देखने लगे।

"आप हैं श्री मनोज सान्याल !" गोबिन्दन ने परिचय कराया।

शंख ने हाथ जोड़ दिए। मुँह से कुछ न बोला, खड़ा मुस्कराता रहा। अब वह मूर्ति सान्याल के हाथ में थी। उसने कहा, "शंखधरनजी, क्या इरा के मन में माँ बनने की भावना जगाने के लिए ही यह मूर्ति चुनी ?"

सान्याल के व्यंग्य का शंख ने कोई उत्तर न दिया।

इरा को मूर्ति देते हुए सान्याल खिलखिलाकर हँस पड़ा, "आगे हो चाहे पीछे, माँ बने बिना स्त्री का छुटकारा नहीं।"

"कुछ आप भी कहिये न, शंखधरनजी !" इरा ने आग्रह किया।

"मैं संयोग से ही संगीताचार्य बन गया, जब कि हमारे परिवार की परम्परा के अनुसार तो मुझे मूर्तिकार ही बनना चाहिए था। यह मूर्ति मेरे पिताजी की कलाकृति है।"

बैरे बड़ी-बड़ी प्लेटों में काजू, किसमिस और बादाम की गिरियाँ लिये घूम रहे थे। किसी के पास चाय और औरेंज था।

"आप क्या लेंगे, शंखधरनजी ?" इरावती मुस्कराई, और फिर उसने खुद ही फैसला किया, "कॉफ़ी लेंगे आप ! अच्छा कॉफ़ी मँगवाती हूँ।"

"हमारे लिए कॉफ़ी उधर भिजवा दीजिए—उस कोने में !" यह कहते हुए गोबिन्दन शंखधरन को एक कोने की तरफ़ ले गया।

पार्टी कोठी से सटे हुए लॉन में हो रही थी। कनातें तानकर सुन्दर मण्डप प्रस्तुत किया गया था। मण्डप में एक ओर स्टेज बनाई गई थी।

कॉफ़ी आई तो साथ में काजू की प्लेट भी थी।

सहसा रंगभूमि के पर्दे के पीछे से घुँघरुओं की आवाज़ तैरती हुई आई। नीलू नाच रही थी। नीलू को देखकर दोनों मित्र चकित रह गए। गोबिन्दन बोला, "लगता है, नीलू हमसे भी पीछे आई।"

नीलू नाच रही थी, जैसे लोक-कथा की राजकुमारी सौ साल की नींद से जाग उठी हो। जब वह रंगमंच पर नाचते-नाचते बैठ जाती और दोनों हाथ ऊपर उठाकर उँगलियाँ सिकोड़ती-फैलाती तो लगता,

कमल खिल रहा है।

नीलू यों नाच रही थी, जैसे किसी नदी को पहली बार पहाड़ों ने रास्ता दे दिया हो। घुँघरू यों बज रहे थे, जैसे नदी का रास्ता आत्म-विश्वास और भरोसे की डगर बन गया हो।

"जानते हो, इरावती ने मुझे बताया था, उसकी माँ बिलकुल नहीं चाहती कि वह ऐक्ट्रेस बने, क्योंकि ऐक्ट्रेस बनने के लिए तो उसकी माँ ने बड़ी लड़की को पहले ही तैयार कर रखा था। और फिर बड़ी बहन मर गई!…" कहते-कहते गोबिन्दन रुक गया।

"ओह! कैसे मर गई?"

"बस मर गई, जैसे हर कोई मरता है।"

"तो फिर इरावती ऐक्ट्रेस कैसे बन गई?"

"यह मत पूछो, शंख! खैर छोड़ो, नीलू का नाच देखो।"

नीलू नाच रही थी—नीली-पीली-हरी रोशनियों की किन्नरी! पिछले पर्दे पर बादलों के घिर आने का दृश्य प्रस्तुत किया गया। फिर बहुत सी लड़कियाँ एक साथ आईं। वे सब इन्द्र-पूजा नृत्य कर रही थीं। उनमें इरावती भी थी और वह बिलकुल अलग नज़र आ रही थी। उसके घूँघट का अन्दाज़ दूसरी लड़कियों से बिलकुल अलग था। मंच के एक ओर गायक और वादक बैठे गीत का स्वर उभार रहे थे।

गोबिन्दन ने शंख का कन्धा झँझोड़कर कहा, "देख रहे हो न! इरावती सबमें अलग नज़र आ रही है न! उसकी आँखों में सचाई का काजल चमक रहा है। उसकी भवों की तीखी रेखाएँ अपनी पवित्रता की कथा सुना रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है, स्वयं धरती नाच रही है, धरती की आत्मा नाच रही है।"

रोशनियाँ बदलती गईं—रंग-बिरंगी रोशनियाँ। फिर कुछ छोकरे आये—गाँव के छोकरे। राजस्थान की तरफ़ का लिबास प्रतीत होता था। लड़कियाँ एक तरफ़ को भाग गईं, और वे फिर आ निकलीं। एक-एक लड़के के साथ एक-एक लड़की मानो राधा और कन्हैया की जोड़ी बनी

नाच रही थी। एक विशेष ताल था, जिस पर इन्द्र-पूजा नृत्य हो रहा था, और इरा अलग नज़र आ रही थी।

सात वृक्षों की टहनियाँ लाई गईं, सात प्रकार का अन्न लाया गया, और अब गाँव की छोहरियाँ इन्द्र-पूजा नृत्य की चरम सीमा प्रदर्शित कर रही थीं। इरावती की देह-लता मानो किसी वृक्ष की टहनी के सदृश ही झुक-झुक जाती थी। उसकी आँखें पहले से बड़ी प्रतीत हो रही थीं; उनमें काजल के डोरे जैसे मुँह से बोल रहे थे, मानो वह स्वयं धरती हो—हरीतिमा की प्रतीक। तभी तो उसने हरे वस्त्र पहन रखे थे।

फिर सहसा नाच बन्द हो गया। रंगभूमि पर पर्दा गिर गया।

अब जन्म-दिन की पार्टी के अतिथि एक-एक करके जा रहे थे। इरावती सबको विदा दे रही थी।

जब सब अतिथि चले गए, तो इरावती नीलू के साथ उस अन्धेरे कोने में बैठे गोविन्दन और शंखधरन के पास आकर बोली, "मैं कॉफ़ी का ऑर्डर देकर आई हूँ। काजू की प्लेट भी आ रही है। मैं तो कुछ भी खा-पी नहीं सकी अब तक !"

नीलू बोली, "बम्बई में तुम्हारा संगीत चमकेगा।"

नीलू और इरा प्रसन्न मुद्रा में बैठी थीं। इरा हरे वस्त्रों में सज रही थी। उसके अपार सौन्दर्य पर शंख मुग्ध हो गया।

शंख की आँखें उसी पर गड़ी थीं। वह लजा गई। गोविन्दन ने इस स्थिति पर व्यंग्य-सा कसते हुए कहा, "बालज़ाक ने एक स्थल पर कहा है, 'संसार में सबसे सुन्दर तीन चीज़ें हैं—खुली पाल वाली वेगमयी नाव; सरपट दौड़ता घोड़ा और नाचती हुई नारी !' "

नीलू हँस पड़ी, "यह मेरे नृत्य की प्रशंसा है या इरा की भाव-मुद्रा की !"

शंख इस हँसी में भी गम्भीर रहा।

इरा बोली, "आपको कैसा लगा मेरा नृत्य, शंखधरनजी ?"

कमल खिल रहा है।

नीलू यों नाच रही थी, जैसे किसी नदी को पहली बार पहाड़ों ने रास्ता दे दिया हो। घुँघरू यों बज रहे थे, जैसे नदी का रास्ता आत्म-विश्वास और भरोसे की डगर बन गया हो।

"जानते हो, इरावती ने मुझे बताया था, उसकी माँ बिलकुल नहीं चाहती कि वह ऐक्ट्रेस बने, क्योंकि ऐक्ट्रेस बनने के लिए तो उसकी माँ ने बड़ी लड़की को पहले ही तैयार कर रखा था। और फिर बड़ी बहन मर गई!···" कहते-कहते गोबिन्दन रुक गया।

"ओह! कैसे मर गई?"

"बस मर गई, जैसे हर कोई मरता है।"

"तो फिर इरावती ऐक्ट्रेस कैसे बन गई?"

"यह मत पूछो, शंख! खैर छोड़ो, नीलू का नाच देखो।"

नीलू नाच रही थी—नीली-पीली-हरी रोशनियों की किन्नरी! पिछले पर्दे पर बादलों के घिर आने का दृश्य प्रस्तुत किया गया। फिर बहुत सी लड़कियाँ एक साथ आईं। वे सब इन्द्र-पूजा नृत्य कर रही थीं। उनमें इरावती भी थी और वह बिलकुल अलग नज़र आ रही थी। उसके घूँघट का अन्दाज़ दूसरी लड़कियों से बिलकुल अलग था। मंच के एक ओर गायक और वादक बैठे गीत का स्वर उभार रहे थे।

गोबिन्दन ने शंख का कन्धा झँझोड़कर कहा, "देख रहे हो न! इरावती सबमें अलग नज़र आ रही है न! उसकी आँखों में सचाई का काजल चमक रहा है। उसकी भवों की तीखी रेखाएँ अपनी पवित्रता की कथा सुना रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है, स्वयं धरती नाच रही है, धरती की आत्मा नाच रही है।"

रोशनियाँ बदलती गईं—रंग-बिरंगी रोशनियाँ। फिर कुछ छोकरे आये—गाँव के छोकरे। राजस्थान की तरफ़ का लिबास प्रतीत होता था। लड़कियाँ एक तरफ़ को भाग गईं, और वे फिर आ निकलीं। एक-एक लड़के के साथ एक-एक लड़की मानो राधा और कन्हैया की जोड़ी बनी

नाच रही थी। एक विशेष ताल था, जिस पर इन्द्र-पूजा नृत्य हो रहा था, और इरा अलग नज़र आ रही थी।

सात वृक्षों की टहनियाँ लाई गईं, सात प्रकार का अन्न लाया गया, और अब गाँव की छोहरियाँ इन्द्र-पूजा नृत्य की चरम सीमा प्रदर्शित कर रही थीं। इरावती की देह-लता मानो किसी वृक्ष की टहनी के सदृश ही झुक-झुक जाती थी। उसकी आँखें पहले से बड़ी प्रतीत हो रही थीं; उनमें काजल के डोरे जैसे मुँह से बोल रहे थे, मानो वह स्वयं धरती हो—हरीतिमा की प्रतीक। तभी तो उसने हरे वस्त्र पहन रखे थे।

फिर सहसा नाच बन्द हो गया। रंगभूमि पर पर्दा गिर गया।

अब जन्म-दिन की पार्टी के अतिथि एक-एक करके जा रहे थे। इरावती सबको विदा दे रही थी।

जब सब अतिथि चले गए, तो इरावती नीलू के साथ उस अन्धेरे कोने में बैठे गोबिन्दन और शंखधरन के पास आकर बोली, "मैं कॉफ़ी का ऑर्डर देकर आई हूँ। काजू की प्लेट भी आ रही है। मैं तो कुछ भी खा-पी नहीं सकी अब तक!"

नीलू बोली, "बम्बई में तुम्हारा संगीत चमकेगा।"

नीलू और इरा प्रसन्न मुद्रा में बैठी थीं। इरा हरे वस्त्रों में सज रही थी। उसके अपार सौन्दर्य पर शंख मुग्ध हो गया।

शंख की आँखें उसी पर गड़ी थीं। वह लजा गई। गोबिन्दन ने इस स्थिति पर व्यंग्य-सा कसते हुए कहा, "बालज़ाक ने एक स्थल पर कहा है, 'संसार में सबसे सुन्दर तीन चीज़ें हैं—खुली पाल वाली वेगमयी नाव; सरपट दौड़ता घोड़ा और नाचती हुई नारी!' "

नीलू हँस पड़ी, "यह मेरे नृत्य की प्रशंसा है या इरा की भाव-मुद्रा की!"

शंख इस हँसी में भी गम्भीर रहा।

इरा बोली, "आपको कैसा लगा मेरा नृत्य, शंखधरनजी?"

तीन

सामने वाले फ्लैट की बुढ़िया पड़ोसिन का मधुर व्यवहार न मिला होता, तो शंखधरन यहाँ से भाग निकला होता। तब वह वरकला पहुँचकर ही दम लेता। कभी वह मराठी कहावत का हवाला देती—"देवा ची करनी आणी नारियाल पाणी !" [देवता का प्रताप है कि नारियल के भीतर जल पैदा होता है।] संसार में लोगों को वैसे ही रहना चाहिए—नारियल के दूध के समान ! कभी वह हँसकर कहती—"भज कलदारम् भज कलदारम् भज कलदारम् मूढ़मते !" [कलदार को भज ले, कलदार को भज ले, कलदार को भज ले, मूढ़ मति !] "शंकराचार्य यहाँ बम्बई में आ जाते बेटा, तो वे कभी यह न कहते—भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम् मूढ़मते !" बुढ़िया पड़ोसिन हाथ हिलाकर, आँखें नचाकर कहती, "बम्बई में तो चाँदी के रुपये का राज है। कलदार चाहिए कलदार, जैसे भी मिले। कलदार बिना बम्बई बेचारी है। यहाँ कलदार का ब्याह होता है, कलदार ही बच्चे-कच्चे पैदा करता है। कलदार ही बम्बई का जहाज है।"

गोबिन्दन भी बुढ़िया पड़ोसिन के स्वर-में-स्वर मिलाता, "वह बात भी तो सुनाओ न, माँ ! वही—जेब में कलदार हो, तो बम्बई का मवाली भी सेठ की बोली बोलता है—हम बड़े, गली तंग; बाजार का रास्ता किधर ?"

"सो तो ठीक ही है, बेटा ! झूठ बात नहीं।" माँ दोनों हाथ

आकाश की ओर उठाकर मानो बम्बई के देवताओं का ध्यान धरती हुई कहती, "कलदार न हो जेब में तो बम्बई रोनी सूरत बनाकर कहती है—दूल्हा-दुलहन सावधान, घर में नहीं एक पायली धान !"

शंख विचित्र वीणा पर अभ्यास करने लगता, तो कमरे से निकलकर अहल्या की माँ कहती, "तेरे कण्ठ में तो सरस्वती विराजमान है, बेटा ! तेरी गाँठ में लक्ष्मी का निवास होकर रहेगा। फिर तो ठनठनाठन चले आयेंगे कलदार-ही-कलदार !"

गोबिन्दन कहता, "बम्बई का यह मौसम भी कितना विचित्र है ! धूप निकलती है, तो पूरी तरह खुलकर। और फिर ऐसा भी होता है कि घर से निकले आधा घण्टा भी नहीं हुआ कि रास्ते में ही वर्षा घेर लेती है।"

खिड़की में खड़े होकर वे बाहर की ओर देखते, तो सामने से उठती हुई घटा ऐसी लगती जैसे किसी ने आकाश पर गोट लगा दी हो। जब मूसलाधार वर्षा होने लगती, तो इस गोट का कहीं पता भी न चलता।

"बम्बई के बादल तो हाथियों की तरह हैं !" अहल्या की माँ ने एक दिन सवेरे-सवेरे ज्ञान बघारा, "अपनी-अपनी सूँड में सागर का पानी भरकर उँडेल डालते हैं ये हाथी !" और वह खिड़की से सागर की ओर देखती रह गई।

"यह उपमा तो सचाई से परे है, माँ !" गोबिन्दन ने हँसकर कहा, "मैं जानता हूँ। मैं केरल का रहने वाला हूँ, जहाँ सागर भी है और जंगल भी, जिसमें हाथी खुले आम विचरते हैं। सागर के किनारे आना तो दूर रहा, हाथी तो सागर की आवाज़ से भी वैसे ही डरता है जैसे आग से !"

शंख ने अपनी ही हाँकी, "तुम्हें याद है, गोबिन्दन ! जब हम बच्चे थे तो बादलों की गरज सुनकर यही सोचा करते थे कि बादल अपने घरों में चटाइयाँ घसीट रहे हैं।"

"बादलों की आवाज तो आज भी वैसी है !" अहल्या की माँ कह

उठी, "हम ही अब बच्चे नहीं रहे। अभी एक महीना और रहेगा वर्षा का ज़ोर बम्बई में। फिर आयेगी नारियाल पूर्णिमा ! सुन, बेटा गोविन्दन ! और तुम भी सुनो, बेटा शंख ! नारियाल पूर्णिमा को मेरे संग मन्दिर चलना।"

"ये मन्दिर हमें नहीं छोड़ेंगे !" गोबिन्दन ने विचित्र-सा मुँह बनाकर कहा, "वरकला में तो एक जनार्दन स्वामी का ही मन्दिर था, यहाँ बम्बई में तो मन्दिरों की गिनती करना कठिन है।"

"ये नास्तिकों जैसी बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं, बेटा ! तुम मत जाना। मैं शंख को तो ले जाऊँगी अपने साथ मन्दिर में देव-दर्शन कराने ! मन्दिर में देव-दर्शन करके हम सागर-पूजा को चलेंगे।"

"सागर-पूजा में क्या होता है ?" शंखधरन की उत्सुकता सजग हो उठी।

माँ को जैसे श्रोता मिल गया हो। गोबिन्दन शेव कर रहा था। शंखधरन खिड़की में खड़ा था। माँ ने पास आकर सागर-पूजा का चित्र उभारा, "बड़े आराम से फूलों को दोने में रखकर अपना नारियल सागर की लहरों पर छोड़ते हैं, बेटा !" माँ ने आँखें नचाकर कहा।

"लहरों पर फूल और नारियल डोलते-तैरते होंगे !" शंख ने रस-विभोर होकर कहा, "जैसे वीणा के तारों पर किसी रागिनी के स्वर डोलते-तैरते हैं।"

माँ ने नारियल-पूर्णिमा के दृश्य में थोड़ा और रंग भर दिया, "सागर के किनारे खड़े मछुवे झट वह नारियल उठाकर काबू कर लेते हैं।"

गोबिन्दन बैठा शेव बनाता रहा। वह जानता था कि भादों की पूर्णिमा नारियल-पूर्णिमा के नाम से मनाई जाती है। यह त्योहार वर्षा-समाप्ति का प्रतीक था। उस दिन से मछुवों के लिए अच्छा मौसम आरम्भ होता था। उस दिन से सागर-तट के साथ-साथ चलने वाली स्टीमर सर्विस, जो वर्षा के कारण रुक जाती थी, फिर से आरम्भ हो

जाती। शेव करते-करते गोविन्दन बोला, "बहुत से लोगों का विचार है कि आरम्भ में नारियल-पूर्णिमा मछुवों का त्योहार था। प्राचीन काल में तो सागर-पूजा करते समय बड़े-बड़े सौदागर नारियल पर सोना मढ़वाकर भेंट किया करते थे और वह मछुवा भाग्यवान होता था, जिसके हाथ पड़ जाता था यह स्वर्ण-मण्डित नारियल।"

"अब तो वैसे धनी-मानी नहीं रहे, बेटा!" माँ ने ठण्डी साँस भरकर कहा।

गोबिन्दन बोला, "तुम्हें यह मालूम नहीं होगा शंख, कि नारियल-पूर्णिमा के दिन ही पड़ता है रक्षा-बन्धन!"

इतने में अहल्या भी चली आई, "मैं तो इस बार शंख भैया के भी राखी बाँधूँगी।"

"एक कलदार से ज्यादा नहीं मिलेगा।" गोविन्दन हँस पड़ा, "मज़ा तो यह है कि नारियल-पूर्णिमा में नारियल डालकर बनाया हुआ भात भी खिलाना पड़ेगा।"

"वह तो चाहे आज भी खा लो।" माँ के मुख की झुर्रियाँ भी मानो मुस्करा उठीं और ठण्डी साँस भरकर बोली, "मँहगाई तो पहले से भी बढ़ गई, बेटा! टैक्स भी तो घटने के स्थान पर उलटा बढ़ रहे हैं।"

"इसमें क्या मन्दिर का देवता कुछ नहीं बोल सकता, माँ?" गोबिन्दन हँस पड़ा, "देवता कहाँ हैं? वे तो सब सागर में डूब गए जैसे स्टीमर डूब जाते हैं तूफ़ान आने पर!"

नारियल-पूर्णिमा से चलते-चलते बात मँहगाई तक आ पहुँचेगी, यह तो कोई नहीं जानता था।

अहल्या को एक काम बताकर माँ ने कमरे में भेज दिया और हाथ उठाकर बोली, "हे भगवान्, वह दिन जल्दी लाओ, जब अहल्या की डोली उठे और रास्ते-रास्ते हर नुक्कड़ पर नारियल तोड़ा जाय!"

"अच्छा तो अब समझा उस गीत का क्या भाव है, जो अहल्या गाया करती है!" गोबिन्दन ने गम्भीर होकर कहा, "वही गीत—नैहर

में आनन्द से रहती है कन्या, ससुराल जाने लगती है तो नारियल टूट जाता है !"

"गीत में नारियल के टूटने से लड़की के रोने का भाव है, बेटा !" माँ ने खड़े-खड़े बाँहें फैलाकर कहा, "इस मँहगाई में अहल्या का विवाह कैसे हो ? पुण्य की जड़ हरी होगी। वह शुभ दिन आयेगा, जब अहल्या की डोली उठेगी और रास्ते-रास्ते हर नुक्कड़ पर नारियल तोड़ा जायगा; इससे भूत-प्रेत का भय जाता रहता है।"

सहसा बादल घिर आए। एक-दो बार बादल गरजा, तो माँ ने कहा, "ऊपर वाली बुढ़िया चने की दाल दल रही है।"

गोविन्दन को हँसी आ गई, "यह क्यों नहीं कहती माँ, कि भगवान् चने चबा रहा है या हमारे साथ भगवान् भी हँस रहा है।" और फिर उसने शंख की ओर आँखें नचाकर कहा, "चने की दाल दलते हैं तो भरड़-भरड़ की आवाज़ निकलती है। ऊपर वाली बुढ़िया के रूप में चने की दाल दलती बादलों की माँ की कल्पना भी उतनी ही अटपटी है जितनी हमारी उपमा कि बादल चटाइयाँ घसीट रहे हैं।"

बाहर मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो गई। बीच-बीच में बिजली चमक जाती।

माँ बोली, "अब तो तुम लोग दिन-भर के लिए यहीं कैद हो गए समझो।"

शंख के मुख पर चिन्ता की रेखाएँ दिखाई दीं। वह यही सोच रहा था—मैं ट्यूशन करने कैसे जाऊँगा ?

इतने में अहल्या ने पास आकर कहा, "गोबिन्दन भैया, मेरा एक काम नहीं करेंगे ?"

"ऐसा भी क्या काम है ?"

"मेरी सहेली है प्रभाती, वह एक्स्ट्रा नहीं बनना चाहती। आप उसे एक्ट्रेस बनवा दें।"

चार

मालाबार हिल पर रहते थे नटवर देसाई, जिनकी सुपुत्री उर्वशी का विवाह जयन्त रावल के साथ हुआ था। पर अपने पति की अनुपस्थिति में उर्वशी अपने पिता के घर पर ही रहती थी। सागर के किनारे थी यह कोठी।

उर्वशी की ट्यूशन गोबिन्दन ने इरावती से कहकर दिलाई थी। शंखधरन को उसने समझा दिया था कि इस प्रकार की लड़कियाँ संगीत में वैसे ही रुचि रखती हैं, जैसे लिपस्टिक लगाती हैं। बस कुछ राग-रागिनियों के नाम आ जायँ; एक-आध राग का आलाप सुना सकें, वैसे ही जैसे अपने ड्राइंगरूम के पर्दों का रंग दिखाती हैं और अपने टेस्ट की डींग मारती हैं। "यमुना, सुलोचना और इला—ऐसी-ऐसी कई लड़कियाँ लम्बी क्यू में खड़ी हो रही हैं!" उसने हँसकर कहा था, "पर सवाल तो यह है, अधिक-से-अधिक कलदार कौन देती है! अभी तुम उर्वशी को संगीत सिखाना आरम्भ करो। संगीत तो वह क्या सीखेगी, आगे चलकर तुम्हारे संगीत की पैट्रन जरूर सिद्ध हो सकती है।"

उर्वशी ने शंखधरन के सम्मुख पहले ही दिन अपने व्यक्तित्व का पूरा परिचय दे डाला, "मेरी कल्पना में सहगल आज भी जीवित है। लोग कहते हैं, अधिक मदिरा-पान के कारण उसकी मृत्यु हुई; मैं कहती हूँ, सहगल के अंदर जो आग थी वह उसी में जल मरा। हाँ, उसका संगीत नहीं मरा, कभी मर भी नहीं सकता।"

इसके उत्तर में शंखधरन ने उदास-सा मुँह बना लिया।

उसने एक अल्बम में बहुत से फिल्म-स्टारों और दूसरे कलाकारों के फोटो लगा रखे थे। सहगल के चित्र के नीचे उसने ये शब्द लिखकर अपनी सूझ-बूझ का परिचय देने का प्रयत्न किया था :

Time goes, you say ? Ah, no
Alas time stays, we go!
[तुम कहते हो
समय बीत जाता है
पर नहीं
अफसोस, कि बीत जाते हैं हम
समय नहीं।]

फिर उसने अपनी डायरी से एक नीग्रो गीत का रूपान्तर पढ़कर सुनाया :

यदि तुमसे कोई पूछे—
कि यह गीत किसने बनाया ?
केवल इतना कहना—
कि वह एक काला किसान था।
दुःख के नीले रंग में रँगा
और उसका कोई घर नहीं था
उसका कोई घर नहीं था !

डायरी में सामने वाले पन्ने पर फ्रांस के एक लोकगीत का उल्लेख था :

न कोई नदी है बिना मछलियों के !
न कोई पहाड़ बिना घाटियों के !
न कोई बसन्त बिना नीलोफरों के !
न कोई प्रेमी बिना प्रेयसी के !

इन्हें देखकर शंखधरन मुस्कराकर रह गया, और फिर उसके ओंठों

पर यह मुस्कान मानो एक प्रश्न-चिह्न बन गई।

"अब तक कौन-कौनसा राग सीखा है ?"

"विशेष नहीं।"

"तो कैसे चला जाय ?"

"जैसी भी आपकी राय हो। दो-तीन महीने का समय खाली है मेरे पास। इसमें एक-आध चीज तो सीख ही जाऊँगी।"

"फिर ?"

"फिर जैसी जयन्तजी की राय होगी। और सुनिए, वे आते ही एक पिक्चर बनायेंगे। कहानी मैंने लिखी है। हालीवुड गये हुए हैं जयन्तजी सात महीने से। वे डाइरेक्शन और प्रोडक्शन का अनुभव लेकर आ रहे हैं। इरावती हीरोइन होगी।"

"और हीरो ?"

"देखें किसके सिर पर यह सेहरा रखा जाता है ?"

"कहानी क्या है ?"

"बम्बई के लाखों बेघर लोगों की कहानी समझिए, जो न जाने कब से पटरी पर रात गुज़ारते आ रहे हैं।"

इतने में नौकर चाय ले आया। साथ में केक-पेस्ट्री और मिठाई थी।

बालकनी से सागर का दृश्य बहुत सुन्दर था।

"ऐसा घर तो हर किसी को नहीं मिल सकता।" शंखधरन ने प्रसंगवश कहा, "पटरी पर सोने वाले तो पहले खोली मिलने का सपना ही देख सकते हैं। खोली भी मिल जाय तो समझो, बम्बई दयालु है!"

"खोली में रहने वालों को क्या-क्या तकलीफ़ें हैं, वे भी इस पिक्चर में दिखाई जायँगी।"

शंखधरन ने कुछ कहना चाहा, तो उर्वशी ने मुस्कराकर कहा, "पहले चाय पीज़िए, फिर मैं आपकी बातें सुनूँगी। लीजिए, ये रस-गुल्ला चखिए।"

शंखधरन ने ठण्डी साँस लेकर कहा, "हमारे देश के लोगों को बहुत

कष्ट हैं ।"

"इसीलिए तो यह पिक्चर बनाई जा रही है ।"

"पिक्चर का नाम क्या होगा ?"

"विष-मन्थन !"

शंखधरन ने बड़े ध्यान से उर्वशी की ओर देखा, "अमृत-मन्थन तो सुना था, यह विष-मन्थन क्या हुआ ?"

"न सागर-मन्थन कहने से बात बनती है, न अमृत-मन्थन से !" कहते-कहते उर्वशी हँस पड़ी, "खैर, कहानी पर अभी मैं काम कर रही हूँ। सागर के साथ मेरा सम्बन्ध कोई नया नहीं है । गोबिन्दन बाबू बता रहे थे, आप लोगों का जन्म भी सागर के किनारे हुआ ! तब तो इस कहानी को आप पूरी तरह समझ सकेंगे और इसमें आवश्यक सुझाव भी देंगे । आप ही सोचिए, बम्बई के बेघर लोगों के लिए सागर से अमृत निकला या विष ? कहते हैं सारा विष अकेले महेश पी गए थे । पर इसकी सचाई तो उनसे पूछिए जिन्हें आज भी विष पीना पड़ रहा है । ये लोग इस विष के कारण पल-पल मृत्यु की ओर जा रहे हैं । अच्छे घर नहीं मिलेंगे इन लोगों को, तो एक ही बात होगी···" कहते-कहते उर्वशी हँस पड़ी, "फिर तो ये लोग हमारी कोठियाँ छीन लेंगे ! खैर छोड़िये । अपनी कहानी की कहाँ तक प्रशंसा करूँ !"

"बेघर लोगों की कहानी की हीरोइन के लिए तो कोई वैसी ही हीरोइन चाहिए थी ।"

"पर पिक्चर को बॉक्स ऑफिस में सफलता तो वैसी हीरोइन से नहीं मिल सकती । और देखिए, संगीत आप दीजिए ! पर ध्यान रखिए, बेघर लोगों की कहानी में ध्रुपद वाला संगीत तो नहीं चलेगा ।"

शंखधरन ने बलपूर्वक कहा, "हीरो का चुनाव भी हीरोइन जैसा न कीजिए । मैं तो कहूँगा, सचाई और अनुभव के मेल से ही बनाइए यह पिक्चर। बाकी रहा संगीत । हम देखेंगे, आप लोगों की आवश्यकता को समझेंगे । फिर सोचेंगे, क्या होना चाहिए, और क्या नहीं !"

पाँच

"तुम हो संगीतकार, मैं हूँ अवतार ! हम दोनों मिले रहे तो एक दिन बम्बई हमारा पानी भरेगी ! हमारे गुरु ने तो एक ही बात सिखाई है—"यावत् जीवेत सुखं जीवेत, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत ।" [जब तक जीओ सुखपूर्वक जीओ ऋण, लेकर भी घी पीओ,।] गोबिन्दन हँसते-हँसते दोहरा हो गया, "आज डालडा मिलता है, तो कल असली घी मिलेगा ।"

"मैं समझ गया ।" शंखधरन मौन न रह सका, "तुम्हारी जेब गरम है । तुम्हारी बम्बई तुम्हारे लिए शुभ हो, मुझे जाने दो ।"

"तुम नहीं जा सकते ।" गोबिन्दन ने मेज़ पर मुक्का मारकर कहा, "यह गोबिन्दन का हुक्म है । आदमी के बच्चे बनो । जो मिलता है, उसे मत छोड़ो ।"

"मेरा दिल तो यही कहता है कि मुझे वरकला लौट जाना चाहिए ।" शंखधरन ने दृढ़तापूर्वक कहा ।

"तुम हो संगीतकार, मैं हूँ अवतार ।" गोबिन्दन ने आँखें नचाकर कहा, "तुम यहीं रहोगे, बम्बई में ।"

शंखधरन सोचने लगा—एक लड़की है इरावती, एक लड़की है उर्वशी, एक लड़की है अहल्या । एक लड़का है गोबिन्दन, एक लड़का है जयन्त, जो हालीवुड से अपनी उर्वशी को चिट्ठियाँ लिखता है । चाय की चुस्की भरते-भरते अपनी कल्पना में इन सबकी रूपरेखा उभर आई ।

उसे लगा, उसकी विचित्र वीणा के तार परस्पर उलझकर एक ऐसा संगीत प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसमें सब-कुछ होते हुए भी कम-से-कम गुरु-देव का सन्देश तो नहीं है।

गोबिन्दन ने नौकर को आवाज़ दी, "यह चाय तो ठण्डी हो गई। और चाय लाओ गरम-गरम।"

शंख का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए गोबिन्दन ने कहा, "फ़िल्म के लिए कहानी लिखना उतना कठिन नहीं, जितना इसे बेचना। जानते हो फ़िल्म में कहानी कैसे बेची जाती है। कहानी-लेखक कहानी सुनाने बैठता है तो खिड़कियाँ ही नहीं रोशनदान तक बन्द करा लेता है ताकि कहानी की हवा भी बाहर न निकल सके। वह कहानी सुनाते-सुनाते कई बार पानी पीता है। कई बार छाती पर दोहत्थड़ मारता है। कई बार गिरता है, कई बार उठता है। कई बार मरता है, कई बार ज़िन्दा हो जाता है। डाइरेक्टर और प्रोड्यूसर आँखों-में-आँखें डालकर बातें करते हैं इशारों-ही-इशारों में, और कहानी-लेखक बीच-बीच में इन लोगों के इशारों से ही उनकी पसन्द-नापसन्द का सुराग़ लगाने का यत्न करता है। फ़रहाद को जो नहर खोदने का काम सौंपा गया था वह फिर भी आसान था, पर फिल्म में कहानी बेचना सौ नहरें खोदने से भी कठिन है। और कहानी बेचने में चमचागीरी करने वालों का बहुत हाथ होता है।"

शंखधरन ने आश्चर्यपूर्वक पूछा, "चमचागीरी क्या हुई?"

"मस्का पालिश तो हुई चापलूसी। जो मस्का लगाता है, उसे भी मस्का कहेंगे। मस्का की ही एक किस्म है चमचा। हाँ तो कहानी के बिकने में सेठजी के चमचों का बहुत हाथ होता है। एक चमचा पास से कहता है—हाँ जी, हिट जायगी, सेठजी! भाड़ में गई कहानी की टैकनीक और 'कैरेक्ट्राइज़ेशन', सेठ को तो कहानी के हिट जाने से मतलब रहता है। और सुनो, चमचा कहानी-लेखक का भी हो सकता है। पर चमचे का कमाल यही है कि सेठ के चमचों के साथ मिलकर उसी

का चमचा बन जाय। खैर, मेरी कहानी कल बिक गई। सवा हज़ार मिला था। ऊपर के ढाई सौ चार चमचों को देने पड़े—दो चमचे सेठ के थे, दो मेरे अपने।"

शंखधरन ने आश्चर्य से गोबिन्दन की ओर देखा। वरकला में सागर-तट पर रेत के घरौंदे बनाकर अथवा मन्दिर के प्रांगण में बल्लौर की गोलियों से खेलते समय तो शंखधरन ने कभी न सोचा था कि गोबिन्दन बड़ा होकर हाथ की सफाई में इतना होशियार निकलेगा।

"मैं हूँ गोबिन्दन अवतार!" गोबिन्दन ने गम्भीर होकर कहा, "हँसो मत। अवतार को भी बहुरूप भरने पड़ते हैं। अहल्या की माँ मुझसे खिची-खिची-सी रहती है। कोई बात नहीं। अहल्या के लिए वर का बहुरूप भरने से मैंने इन्कार कर दिया। मैंने माँ से साफ़-साफ़ कह दिया—अपने को यह सब नहीं होना, माँ! ब्याह करना नहीं माँगता गोबिन्दन अवतार! यह सुनकर माँ की आँखें ऊपर को चढ़ गईं। अब मैं क्या कर सकता था?"

"सो तो ठीक है!" शंखधरन मुस्कराया।

"जानते हो, वह कहानी क्या थी, जो सवा हज़ार में बिकी? एक स्कूल मास्टर है, जिसे बहुत कम वेतन मिलता है। इसलिए वह ब्लैक-बोर्ड पर देश का नक्शा बनाकर उस पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखता है—निर्धनता! और फिर वह लड़कों से कहता है—हमारे देश में इतनी रबड़ पैदा होती है, पर लड़को, यह सारी रबड़ भी इस बात के लिए काफी नहीं कि देश के सफेद माथे से बड़े-बड़े काले अक्षरों में लिखा हुआ यह शब्द निर्धनता मिटाया जा सके!"

"कहानी का आरम्भ तो बहुत अच्छा किया है।"

"आरम्भ का यह भाग तो शत-प्रतिशत मौलिक है। आगे की सारी कहानी एक हंगेरियन कहानी से उड़ाई हुई है। पर पैवन्द लगाया है पूरी होशियारी से। इस स्कूल मास्टर का घर का खर्च पूरा नहीं होता था। साथ ही उसे बहुत प्यास लगी थी। वह नौकरी छोड़कर घर से

निकल पड़ा। आवारा हो गया। इधर-उधर से हथफेर करके पेट तो भर लेता, पर दो चीजें उसका ध्यान खींचती रहतीं। एक तो ब्लैकबोर्ड पर बना देश का नक्शा और उस पर लिखा हुआ शब्द—निर्धनता। और दूसरे, उसे प्यास लगी रहती। किसी ने एक शहर में उसे यह सलाह दी—हिमालय के एक झरने का पानी पी आओ। इसके लिए वह यात्रा पर गया। पर हिमालय के झरने का पानी पीकर भी प्यास न मिटी। फिर किसी ने कहा—मदिरा पीओ। उसने खूब मदिरा पी, फिर भी प्यास न बुझी। किसी मवाली ने बम्बई में उसे यह सलाह दी—लहू पीओ! प्यासे स्कूल मास्टर ने किसी बेचारे को मार डाला, और उसका लहू पीकर प्यास बुझाने का यत्न किया। प्सास फिर भी न बुझी। वह पकड़ा गया। पर मैंने उसके पकड़े जाने से पहले उसकी रंगरेलियाँ खूब दिखाई हैं। उसकी प्यास कई गुना बढ़ती गई। एक दिन वह पकड़ा गया। मुकदमा चला। जब उसे फाँसी दी जाने वाली थी तो उससे उसकी अन्तिम इच्छा पूछी गई, और उसने बताया—अब उसे वह बात याद आ गई है कि जब वह छोटा था—बहुत छोटा, तो एक दिन वह माँ की छाती से लगा दूध पी रहा था, और किसी ने उसे झटककर माँ की छाती से अलग कर दिया था! पहली शक्ल में उसकी प्यास माँ के दूध की प्यास थी। उसने माँ का ठिकाना बताया, और माँ के दूध की चार बूँदें माँगी।"

"तो क्या उसकी वह इच्छा पूरी की गई थी?"

"यह तुम उस समय देखोगे, जब यह कहानी फिल्माई जायगी।"

"तो चलो, आज तुम्हें मुक्तिबोध से मिलाने ले चलूँ जो आदमी के स्थान पर कबूतरों से प्रेम करते हैं।"

१९:

कबूतर की आँखों में झाँकते हुए मुक्तिबोध बोले, "रात को सोते-सोते मेरी आँख खुल जाती है, तो मैं कबूतरों वाले कमरे में जा झट बिजली का बटन दबाकर देखता हूँ कि कबूतर सो रहे हैं या नहीं। कबूतर पंख फड़फड़ा उठते हैं। मैं सच कहता हूँ, मुझे आदमी उतने अच्छे नहीं लगते, जितने कबूतर।"

"धन्य हो, मामा मुक्तिबोध !" गोबिन्दन ने आँखें नचाईं, "ये पचास जोड़े कबूतर तो सचमुच वही आदमी पाल सकता है जो आपकी तरह इन्हें एक कमरा दे सके।"

"विचित्र शहर है बम्बई !" शंखधरन भी मौन न रह सका, "जहाँ लाखों लोग रात को छत के नीचे नहीं सो सकते, पटरी पर बिस्तर लगाते हैं, वहाँ हमारे मामा मुक्तिबोध के कबूतर अगर उन लोगों से अच्छे नहीं तो भाग्यशाली अवश्य हैं।"

"मैं कबूतरों पर एक पुस्तक लिख रहा हूँ !" मुक्तिबोध ने गम्भीर होकर कहा, "आज का जमाना रिसर्च का है। खाली ग्रन्थों के हवाले देकर तो अच्छी पुस्तक नहीं लिखी जा सकती कबूतरों पर !" कहते-कहते वे मुस्कराए, और उन्होंने एक संस्कृत श्लोक पढ़कर सुनाया, जिसमें कबूतर-कबूतरी के प्रेम को आदर्श बताया गया था। फिर वे हँसकर बोले, "आप लोग शेखर आर्टिस्ट को तो जानते होंगे ?"

"वही रूबी वाला शेखर ?" गोबिन्दन मुस्कराया।

"या कहिए शेखर वाली रूबी !" मुक्तिबोध गम्भीर हो गए, "उनका प्रेम सच्चा प्रतीत होता है ।"

"उन पर आपका वरद हस्त है, मामा !" गोबिन्दन मुस्कराया, "वे कमरे में हों तो उन्हें बुलवाइए ज़रा ।"

"क्यों न वहीं चले चलें ?"

"यहीं बुलवाइए !" गोबिन्दन ने हँसकर कहा, "वहाँ जाना तो ऐसे ही होगा जैसे आप रात को चुपके से बिजली का बटन दबाकर कबूतरों का हाल-चाल देखने लगते हैं ।"

पता चला कि उनका कमरा बन्द है ।

"यह जो आपके सामने बैठे हैं, मामा !" गोबिन्दन ने आँखें नचाकर कहा, "बहुत बड़े संगीतकार हैं ! मालाबार से यहाँ आये हैं । पर पता नहीं आज की फिल्मी दुनिया में डटे रहते हैं या नहीं ।"

"वह भी क्या ज़माना था !" मुक्तिबोध ने कबूतर को अपने हाथ से छोड़ते हुए कहा, "फ़िल्म द्वारा हमने अपने इतिहास को सँवारा-निखारा । धार्मिक फिल्मों में हमने अपनी संस्कृति पेश की । सामाजिक फिल्मों में हमने जनता की राष्ट्रीय चेतना का प्रमाण दिया । वह भी क्या ज़माना था ! मैंने एक्टर बनकर नाम कमाया, पैसा कमाया । पर वैसे लोग नहीं रहे, मैंने काम छोड़ दिया ।"

"आपका संकेत न्यू थियेटर्स की ओर है ।" गोबिन्दन मुस्कराया, "न्यू थियेटर्स की क्या बात थी, मामा ! एक-से-एक बढ़कर फ़िल्में बनाईं उन लोगों ने ।"

"वही तो मैं कह रहा था ।" मुक्तिबोध ने उदात्त स्वर में कहा, " 'यहूदी की लड़की', 'देवदास', 'मंज़िल', 'मुक्ति' और 'प्रेसिडेन्ट' जैसी फ़िल्में अब क्यों नहीं बनतीं, कभी सोचा है आपने ? 'विद्यापति', 'चण्डीदास' और 'स्ट्रीट सिंगर' जैसी फिल्में बनाने वाले न्यू थियेटर्स की कमर क्यों टूट गई ?"

"प्रभात पिक्चर्स को भी तो नहीं भुलाया जा सकता ।" गोबिन्दन

ने बलपूर्वक कहा, " 'अमर ज्योति', 'पड़ोसी' और 'आदमी' जैसी फ़िल्में कोई शान्ताराम ही दे सकता था।"

"उन सबमें कोई-न-कोई बात कही गई थी। वह भी क्या ज़माना था! हर कदम पहले कदम से आगे जाता था। अब तो यह हाल है कि बीस फ़िल्मों में कोई एक फिल्म अच्छी भी आ जाती है। यह नहीं कि पहले घटिया फिल्में बिलकुल नहीं बनती थीं, पर अब तो बुरा हाल है। अब तो अच्छी फ़िल्में आटे में नमक के बराबर भी नहीं रह गई।"

"एक बात यह भी तो है!" गोविन्दन ने पैंतरा बदलकर कहा, "जो ज़माना बीत जाता है, वह अच्छा लगने लगता है।"

"नहीं, यह बात नहीं। 'मंज़िल', 'मुक्ति' और 'आदमी' जैसी फ़िल्में तब भी अच्छी मानी गई थीं, जब वे बनी थीं। और अब तो हमारी फिल्म इण्डस्ट्री फिनान्सर के हाथ की कठपुतली बन गई है। सेठ कहता है—साली फिलम तो अन्त आपी दो। [साली फ़िल्म का अन्त कर डालो।] और वहीं कहानी को तोड़-मरोड़कर समाप्त कर दिया जाता है।"

"आपका मतलब है, आज की फ़िल्मों में कहानी नाम की चीज़ भी होती है?" गोविन्दन ने अवसर देखकर पूछ लिया।

कबूतर ने अपनी जगह से उड़कर कमरे में दो-तीन चक्कर लगाए और मुक्तिबोध के हाथ पर आ बैठा।

शंखधरन मुस्कराया, "इसे भी हमारी बातों में रस आ रहा है।"

मुक्तिबोध कहते चले गए, "पिछले सप्ताह की बात है, एक सज्जन मुझे मिलने आये। नाम नहीं लूँगा। एक डाइरेक्टर-प्रोड्यूसर हैं। बता रहे थे, लाहौर में एक फ़िल्म बन रही थी। वह फ़िल्म मुश्किल से आधी ही तैयार हो पाई थी कि पैसा खत्म हो गया। बम्बई में आकर उन लोगों ने उस अधूरी फ़िल्म को पूरा करना चाहा। गाने लिखने के लिए एक शायर की सेवाएँ प्राप्त की गई। प्लेबैक के लिए शायद नूरजहां को चुना गया। स्क्रीन पर एक वेश्या को गाना था। उसके लिए एक एकस्ट्रा लड़की मिल गई। वह बेचारी एक सीन में

काम करने के कुल पच्चीस रुपये मांगती थी। डाइरेक्टर-प्रोड्यूसर कंजूसी पर अड़ गए। वीस में सौदा तय हुआ। अब वह 'एकस्ट्रा' लड़की 'एकस्ट्रा आर्डिनरी' एक्ट्रेस बन गई है। हाँ, तो वह डाइरेक्टर-प्रोड्यूसर सज्जन बता रहे थे—जब दूसरे डाइरेक्टरों की तरह वे भी एक दिन उस एक्ट्रेस के दरे-दौलत पर पहुँचे और एक पिक्चर के लिए मामले की बातचीत हुई तो वह बोली—पूरी पिक्चर में काम करने के पच्चीस हज़ार लूँगी! वह अपनी इस कीमत पर अटल रही और हमारे उन डाइरेक्टर-प्रोड्यूसर को उसी रकम पर कान्ट्रेक्ट करना पड़ा।" कहते-कहते मुक्तिबोध ने कबूतर को उड़ा दिया, जो कबूतरी के पास जाकर चोंच से चोंच लड़ाने लगा।

"संगीत के सम्बन्ध में आपने कुछ नहीं कहा।" गोबिन्दन ने बढ़ावा दिया।

इस पर मुक्तिबोध खिलखिलाकर हँस पड़े और फिर सँभलकर बोले, "हमारे डाइरेक्टर-प्रोड्यूसर आजकल यह समझने लगे हैं कि कहानी गई भाड़ में, नाच और गानों के बल पर ही वे पब्लिक को उल्लू बना सकते हैं। और यही हो रहा है। मतलब यह कि 'रम्भा', 'सम्भा' और 'जाज़' को चुन-चुनकर डाला जा रहा है फिल्मी संगीत के मर्तबान में! इस पर शंखधरन को कोई आपत्ति न हो तो मैं भी अपने होंट सी लेता हूँ!"

शंखधरन भी मौन न रह सका, "मैंने तो सुना है कि बम्बई के हर म्यूज़िक डाइरेक्टर ने टेप रिकार्डर ले रखा है, रेडियो की मदद से वे विदेशी संगीत के नये-नये रिकार्ड टेप रिकार्डर पर चढ़ाकर अपने पास रखते रहते हैं। और फिर इन्हीं धुनों को तोड़-मरोड़कर हमारी फ़िल्मों के हवाले करते रहते हैं। क्यों मैं कुछ झूठ कहता हूँ, मामा?"

"बिलकुल यही बात है!" मुक्तिबोध ने कहा, "तुम्हें चान्स मिले तो इस दोगले संगीत से बचना।"

सात

सात पीढ़ियों का इतिहास था इरावती के पीछे। कई बार वह सोचती —सात पीढ़ियाँ कम तो नहीं होतीं! यह विचार उसे बल देता, विश्वास देता और अभिनय करते समय उसकी कल्पना पीछे की ओर मुड़ जाती। पाँच पीढ़ियों की कहानी तो फिर भी कानों-सुनी बात थी। पिछली दो पीढ़ियों की बात तो आँखों-देखी थी। दादी अम्माँ को उसने देखा था। माँ की छत्रच्छाया तो अभी तक बनी हुई थी।

उसकी माँ किसी समय नगर की सबसे अच्छी गायिका थी। माँ ने होश सँभाला, तो दादी अम्माँ ने गाना छोड़ दिया था। अपने ज़माने में दादी अम्माँ कितनी बड़ी गायिका रही थी, यह तो इसी बात से स्पष्ट था कि हैदराबाद के हुज़ूर नवाब साहब ने उसे गोलकुण्डा के किले के पास एक जागीर देने के अतिरिक्त बम्बई में मैरीन ड्राइव की कोठी एक रात उसकी गायकी पर खुश होकर उसे भेंट कर दी थी। संगीत-विद्या की साधना में उसकी माँ ने भी तो कुछ कम कमाल न किया था। दादी अम्माँ कहा करती थी, "सब मेहनत की बात है। रियाज़ चाहिए रियाज़! जैसे घोड़े को सिधाया जाता है, वैसे ही गले को भी तैयार करना चाहिए। हर रोज़ रियाज़ करना होगा और दामन कलंक से बचाना होगा। दाग़ लगा नहीं कि बात गई।"

दादी अम्माँ खुश थी कि बड़े-बड़े जौहरी उसकी बेटी की कला पर सोना बरसाते रहते हैं। बेटी ने पाँच पीढ़ियों की लाज रख ली, माँ के

दूध को दाग भी नहीं लगने दिया; कोई यह नहीं कह सकता कि बेटी किसी भी तरह माँ से पीछे रह गई—यह बात दादी अम्माँ को पुलकित करने के लिए काफ़ी थी। दादी अम्माँ के पास कई डाइरेक्टर आ चुके थे; हर बार उन्होंने साफ़ इन्कार कर दिया, "सिनेमा-विनेमा के चक्कर में नहीं पड़ने दूँगी अपनी मैना को! आख़िर ऐसी भी क्या मुसीबत पड़ी है कि नवाब और राजा-रईस की मजलिस छोड़कर भड़वों के बीच ठिकाना तलाश किया जाय! मेरे रहते तो यह नहीं होगा।"

अब तो वह ज़माना बहुत पीछे छूट गया था। कहाँ यह हाल था कि दादी अम्माँ ने माँ का फोटो तक किसी को देने की मनाही कर रखी थी, कहाँ अब बम्बई की सुप्रसिद्ध गायिका मैना की बेटी इरावती हर रोज़ परदे पर चाँद बनकर उगती है!

इरावती की कहानी काफ़ी मनोरंजक थी। माँ ने तो बड़ी बेटी सुधा को ही सिनेमा के लिए तैयार किया था। सुधा के रहते इरा कभी सिनेमा के परदे पर न उतरती। सुधा के रियाज़ के सामने इरा का रियाज़ तो रुपये में चवन्नी भी न था। माँ तो कहा करती थीं, "मेरी इरा का ब्याह होगा, उसकी डोली उठेगी; वह सिनेमा-विनेमा के चक्कर में नहीं पड़ेगी। सिनेमा के परदे पर दुनिया को फ़तह करने आई है सुधा!"

सिनेमा के परदे पर उतरने से पहले ही सुधा चल बसी। माँ के दिल पर बड़ी चोट लगी। फिर उसकी नज़र इरा पर पड़ी। इरा भी तो सुधा बन सकती है—उसने सोचा। झट फ़ैसला हो गया। रियाज़ पर ज़ोर दिया जाने लगा।

दादी अम्माँ की मृत्यु तो पहले ही हो चुकी थी। माँ ने गोलकुण्डा वाली जागीर बेच दी थी। मैरीन ड्राइव वाली यह कोठी पुरानी स्मृति बनी रह गई थी। माँ के हीरे-जवाहरात भरे पड़े थे। बैंक बैलेंस इतना था कि आराम से गुज़र हो सकती थी। पर संगीत तो सात पीढ़ियों की विरासत था। इसे कैसे छोड़ा जाता! अब इरा बम्बई की प्रसिद्ध अभि-

नेत्री थी। उसके पाछे लम्बी कहानी है, उसका किसी को ध्यान नहीं। इरा पर फ़िल्म की छाप है, फ़िल्म पर इरा की; यह सभी मानते थे।

बालकनी में कुरसी से उठकर इरा टहलने लगी। सामने सागर का दृश्य उसका ध्यान खींच रहा था। अब वह दीवारगीर पर रखी माँ-बेटे की मूर्ति के सामने खड़ी थी। इस कलाकृति में उसे क्या नज़र आता है, यह बताना तो उसके लिए कठिन था। हाँ, उसका मन यह तो स्पष्ट शब्दों में कह सकता था कि कलाकार ने इस कृति में अभिनय नहीं दिखाया। माँ के मुख पर वही भाव था जो होना चाहिए; बेटा भी माँ की आशाओं का केन्द्र प्रतीत हो रहा था। इस मूर्ति को देखकर उसे शंख की याद आ गई।

वह कई फ़िल्मों में काम कर चुकी थी। अभिनय-कला में उसकी अपनी मार्केट थी। 'माँग का सिन्दूर' में उसके अभिनय की सबने मुक्त-कण्ठ से सराहना की थी। एक प्रश्न उसके मन में सदैव उठता रहता—क्या अभिनय हा सब-कुछ है?

शंख के शिष्टाचार व व्यक्तित्व से वह कुछ कम प्रभावित नहीं हुई थी। उसने अपने मन को समझाया—मेरे पीछे सात पीढ़ियाँ हैं, पाँच कानों-सुनी, दो आँखें-देखी। पाँच पीढ़ियों से संगीत चला आया है। शंख तो शायद ऐसा दावा नहीं कर सकता!

मूर्ति में माँ की ममता दिखाई गई है! उसने मन-ही-मन कहा—'माँग के सिन्दूर' में मैंने माँ का अभिनय किया है। मैं माँ नहीं हूँ तो क्या? अभिनय के लिए जो चाहिए वह मैंने दिया, उसे मैंने छिपाकर नहीं रखा।

उसे याद आया, अभी पिछले दिन गोबिन्दन मिला था। वह बता रहा था कि 'माँग का सिन्दूर' फ़िल्म उसने शंखधरन को दिखाई है।

आठ

मीना-बाज़ार ही तो थी बम्बई की फ़िल्मी दुनिया, जहाँ कम्पनियों के मालिक और फिनान्सर ही नहीं, डाइरेक्टर और एक्टर भी चन्द्रमुखी अभिनेत्रियों के पीछे लट्टू हुए घूमते थे। 'सेट' पर चन्द्रवदनी कोमलांगिनियों की अदाएँ भी मुड़-मुड़ मीना-बाज़ार की छवि अंकित कर जाती थीं।

कहानी चुनने का काम हो, चाहे गीत पसन्द करने का; 'रोल' बाँटने की बात हो, चाहे वेतन या मजदूरी देने का प्रसंग—कदम-कदम पर दलाली का दौर-दौरा था। कहानी-लेखक की हैसियत मुन्शी से अधिक नहीं थी। इसलिए इस मीना-बाज़ार में थोड़ा-बहुत दम-ख़म रखने वाला कहानी-लेखक भी डाइरेक्टर बन जाने के चक्कर में था, जिससे उसकी कहानी मँहगे दामों बिके और पूरे रंग-ढंग से फिल्माई जा सके। संवाद-लेखक भी डाइरेक्टर बनने की चिन्ता में घुले जा रहे थे। 'रिहर्सल' में जहाँ-जहाँ प्रेम-संवाद आते, लगता था, सहारा में नख़लिस्तान सामने आ गया। प्रेम-मुद्राएँ छाप लगातीं। 'प्यारी' और 'प्रियतमे' कहते रस छलकता।

कितने लोग इस मीना-बाज़ार में बरबाद हुए, इसका हिसाब कौन लगाये! जिनकी इस बाज़ार में जीत हुई, उन्होंने ही तो इतिहास नहीं बनाया। जो हारे और मैदान छोड़ गए, वे भी तो अपना अनुभव मिलाते गए। युद्ध के दिन हैं। घटिया-से-घटियां फ़िल्म बनाने की होड़ लग

रही है।

रिहर्सल में मीना-बाज़ार की दुकानें पीछे न रहतीं। घर या कॉलेज से सीधी यहाँ पहुँचने वाली हर युवती हीरोइन बनने का सपना लेकर पहुँचती, कलदार का नाम जपती, जैसे हीरोइन बनना इतना ही सहज हो। 'सेक्स-अपील' में पूरी उतरने वाली कन्याओं की भी परख होती। उनकी देह के 'कर्व' देखे जाते। डाइरेक्टर और कैमरामैन की आँखें उसकी रूपराशि को मानो धर्म-काँटे पर तोलतीं। उसे 'सेट' पर आने का सौभाग्य प्राप्त होता, तो हज़ार-हज़ार कैण्डल के बल्ब के प्रकाश में उसकी देह की एक-एक 'कर्व' को सिलोलाइड पर उतारा जाता। यही फ़िल्म का दस्तूर है!

इरा से कुछ भी छिपा तो न था। वह थी मीना-बाज़ार की रानी। जिन चित्रों में वह काम कर चुकी थी, उनमें से कई 'बाक्स-आफिस-हिट' हो चुके थे। 'माँग का सिन्दूर' में उसका काम सभी ने पसन्द किया था।

'माँग का सिन्दूर' तो शंख को भी अच्छी लगी थी। साथ ही शंख ने दूसरी दो-तीन फ़िल्मों की मुक्त-कण्ठ से निन्दा की थी, जिनमें सस्ते इश्किया गाने अटपटी धुनों में गाये गए थे। भोंडे मज़ाक अश्लील वातावरण के जनक थे। उसने एक धार्मिक चित्र की भी जी खोलकर बुराई की थी, जिसमें देवी-देवता भी बम्बइया मीना-बाज़ार के प्राणी दीखते थे। यह बात भी उसकी समझ में नहीं आती थी कि एक-एक दर्जन गाने देने की क्या तुक है। कोई मरे चाहे जन्म ले, हर जगह गाना क्यों इतना आवश्यक है, और फिर गाना भी ऐसा, जो न कल्पना की बाती संजोता है, न कहानी को आगे बढ़ाता है। पाँच-छः नृत्य भी रहने चाहिएँ—पर क्यों? हर कहानी में नृत्य क्यों आवश्यक है? बॉक्स-ऑफिस-हिट के लिए वह सब करना पड़ता है! यह कितना विचित्र उत्तर है!

मीना-बाज़ार की यही मूल-प्रवृत्ति है। इरा तो हीरोइन है। जैसी कहानी, वैसी हीरोइन। पर कहानी तो अच्छी भी हो सकती है। गुरुदेव

रुद्रपदम् पर क्यों फ़िल्म नहीं बन सकती ? इसके उत्तर में इरा ने इतना ही कहा, "मैं कह देखूँगी। खाली मेरी पसन्द-नापसन्द पर तो कोई फ़िल्म बनने से रही।"

गुरुदेव की आत्मकथा छपकर आ गई थी। नीलू ने किया था अनुवाद। पत्रों में इस पुस्तक की अच्छी-अच्छी आलोचनाएँ प्रकाशित हुईं। किसी-किसी ने तो गुरुदेव रुद्रपदम् को दक्षिण का तानसेन कहकर उनकी सराहना की थी, भले ही गुरुदेव इसी युग के संगीताचार्य हो गए थे।

नीलू ने पहले ही पुस्तक की प्रति इरा को न पहुँचा दी होती, तो शंख को यह पुस्तक इरा के हाथों में देते कितनी खुशी होती !

"फ़िल्मी दुनिया में हर तीसरा आदमी महा कलाकार होने का दावा करता है, शंखधरनजी !" इरा ने स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा, "यहाँ हर आदमी एक-न-एक कहानी लिये घूमता है।"

"मेरा तो विचार है कि जैसे शरत्चन्द्र के कई उपन्यासों के सफल चित्र बन चुके हैं और अभी और बनेंगे, वैसे ही गुरुदेव की आत्मकथा पर आधारित अच्छा चित्र बन सकता है।"

"संगीत तो आपका ही रहेगा !" इरा मुस्कराई, "और गुरुदेव ही नाम रहना चाहिए।"

फिर इरा ने यह प्रसंग छेड़ दिया कि हमारे आज के फ़िल्मी गाने अटपटी देशी-विदेशी धुनों की खिचड़ी होकर रह जाते हैं। फ़िल्मी कवि का कोई व्यक्तित्व नहीं होता। एक्टर और एक्ट्रेस से जिस भी भूमिका में चाहो, काम करा लो। वैसे ही यह आशा की जाती है कि गीतकार फ़िल्म-निर्माताओं के इशारे पर लिखे। मुखड़ा पसन्द न आने पर मुखड़ा बदल दे; चाहे तो एक-एक करके गीत के पूरे बोल ही बदलवा लिये जायँ, और इस प्रक्रिया में गीतकार के अहम् को ठेस लगने का तो प्रश्न ही न होना चाहिए।

"एक गीत का कितना मोल पड़ता है ?"

"पचास से पाँचसौ तक।"

"तब तो फ़िल्मी कवि सब-के-सब खाते-पीते प्राणी हैं।"

"सभी तो भाग्यशाली नहीं। चार-पाँच रुपये में गीत लिख देने वाले कवि ही अधिक हैं। उनसे ये गीत दूसरे लोग ख़रीद लेते हैं और आगे अधिक दाम पर चलाने की कोशिश करते हैं। महाकवि मौज करते हैं। सस्ते दामों ख़रीदी हुई चीज़ पर अपनी छाप लगाकर मुनाफ़ा कमाते हैं।"

"मैंने दूसरी बात सुनी है। संगीत-निर्देशक गाने की धुन पहले तैयार कर लेता है। गीतकार से कहा जाता है, इस धुन पर फ़िट बैठने वाले शब्द जड़ दो।"

"ऐसा तो बहुत होता है। मैं एक गीतकार को जानती हूँ, जो एक गीत का एक हज़ार लेता है। दस वर्ष पहले वह अपना एक गीत पाँच रुपये में बेच डालता था और इसके लिए भी पैदल दादर से ऑपेरा हाउस पहुँचता था।"

शंख को इरा के मुख पर अहम्मन्यता की कोई रेखा तो दिखाई न दी। उसने अपने हाथ से चाय का दूसरा प्याला भरकर दिया। "वैसे तो इस मीना-बाज़ार में आकर मैंने भूल की! अब भी सोचता हूँ, उर्वशी जैसी दो-तीन और ट्यूशनें मिल जायँ, तो काम चल जाय। पर एक मन कहता है, गुरुदेव पर चित्र अवश्य बनना चाहिए।"

"गुरुदेव पर पिक्चर बने-न-बने," इरा मुस्कराई, "अब हम आपको तो नहीं जाने देंगे।"

भीतर से इरा की माँ ने आकर कहा, "कहाँ जाने की बात चल रही है?"

"इन्हें बम्बई का पानी पसन्द नहीं।"

"बम्बई की हवा में नमी तो बहुत है!" माँ ने गम्भीर मुद्रा बनाकर कहा, "हर चीज़ में सील आ जाती है।"

इरा ने प्रसंग बदलकर कहा, "बहुत से लोग फ़िल्मी दुनिया को छोड़कर भाग गए। जो ठहर गए उनमें से ही हमें समझिए।"

"हमारी इरा के तलुए घिस गए, बेटा !" माँ ने प्रशंसा-सूचक स्वर में कहा, "मेहनत के बिना तो सेहरा नहीं बँधता।"

इरा की निगाह मैंटल पीस पर रखी माँ-बेटे की मूर्ति पर पड़ गई।

माँ ने हँसकर कहा, "जिस दिन से तुमने यह मूर्ति लाकर दी है बेटा, हमारी इरा पर तो जैसे जादू कर दिया है। स्टूडियो जायगी तो थोड़ी देर इस मूर्ति के सामने खड़ी रहेगी, लौटेगी तो फिर यहाँ आ खड़ी होगी।"

इरा ने वहाँ खड़े-खड़े आँखें घुमाकर कहा, "बॉक्स-ऑफिस-हिट के तौर पर हमारी फ़िल्म-कम्पनियों ने 'तानसेन' और 'बैजू बावरा' जैसी फिल्में बनाईं, पर उनकी संगीत-साधना को जिस तरह पेश किया गया, उसे तो असल से दूर का वास्ता भी नहीं कह सकते।"

"इरा ठीक कह रही है, बेटा !" माँ ने बेटी से एकमत होकर कहा, "यह ठीक है कि तानसेन और बैजू बावरा पर बनाई गई फ़िल्म बाक्स-ऑफिस-हिट सिद्ध हुई और उनके कई गाने भी लोगों की ज़बान पर चढ़ गए, पर इतने बड़े नामों के साथ इस तरह की अटपटी चीज़ों का ताल-मेल करने की कोशिश बड़े अफ़सोस की बात है।"

"यही तो मैं भी कहती हूँ, माँ ! क्या कोई इस तरह की हिमाक़त यूरोप के बड़े-बड़े संगीताचार्यों के जीवन पर बनी फिल्मों में कर सकता था ? चौपिन के जीवन पर 'सौंग टु रिमैम्बर' फ़िल्म बनाई गई। स्ट्रौस के जीवन पर 'शैम्पेन वाल्ट्ज़।' मुझे 'बिथेविन' फ़िल्म भी हमेशा याद रहेगी। इस तरह की सभी फ़िल्मों में संगीतकार के संगीत और उसकी शैली का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया। पर हमारे यहाँ का तो बाबा आदम ही निराला है।"

"सो तो तुम ठीक ही कह रही हो, इरा ! 'तानसेन' और 'बैजू बावरा' में उन बेचारों की संगीत-परम्परा को कहाँ दिखाया गया ? मैं कहती हूँ, तानसेन और बैजू बावरा अपने सम्बन्ध में बनी उन फ़िल्मों को देखते, तो शर्म से सिर झुका लेते या गुस्से से लाल-पीले हो जाते।"

"दूसरी बात ही ठीक है, माँ !"

शंख ने गम्भीर मुद्रा बनाकर कहा, "गुरुदेव रुद्रपदम् पर फ़िल्म भले ही न बने, पर बने तो उनके संगीत और उनकी शैली को पूरी तरह दिखाया जाय।"

"मैं भी यही कहती हूँ कि कोई ठोस कदम उठाया जाना चाहिए। या फिर उस काम को किया ही न जाय।" इरा ने गम्भीर मुद्रा बना ली।

"क्यों न किया जाय, बेटी ? गुरुदेव की जीवनी तो मुझे भी मुग्ध कर गई। उनके शिष्य हमारे सामने बैठे हैं। गुरुदेव की महिमा तो उस्ताद फैयाज खाँ भी गाते हैं। उन्होंने मुझे गुरुदेव के साठवें जन्म-दिन पर जाने का हाल सुनाया था, जब मैं एक बार बड़ौदा गई थी। उन्होंने आँखों-देखा हाल सुनाया था—कैसे गाते-गाते ही गुरुदेव के प्राण-पखेरू उड़ गए थे। देखो बेटा, या तो तुम यहाँ आये ही न होते, आये हो तो गुरुदेव पर फ़िल्म बनवा ही जाओ। मैं भी एक-दो जगह ज़िक्र करूँगी। उस्ताद फैयाज़ खाँ साहब से भी कहलवा सकती हूँ।"

"वरकला से पिताजी का पत्र आया है कि गुरुदेव का नया जन्म हो गया।"

"वह कैसे, बेटा ?"

"वरकला का बूढ़ा मछुआ है मुत्तु बाबा। मुत्तु बाबा के पोते के रूप में ही गुरुदेव ने दोबारा जन्म लिया है, ऐसा ही वरकला वालों का विश्वास है।"

"ये बातें तो मनघड़न्त ही होती हैं, बेटा ! इतने महान् संगीतकार की क्या मुक्ति नहीं हुई होगी ?"

"यह तो गुरुदेव की अपनी इच्छा थी। उन्होंने कहा था कि मैं वरकला के मछुआटोला में जन्म लेकर अपने शिष्य का शिष्य बनूँगा। जी तो चाहता है कि मैं अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए वरकला चला जाऊँ।"

"पहले वह फ़िल्म तो बन जाय।" कहते-कहते इरा ने स्विच दबाकर रोशनी कर दी, और माँ-बेटे की मूर्ति पर नज़रें गड़ा दीं।

शंख उठकर बोला, "अच्छा तो मैं चलूँगा।"

"खाना खाकर ही जाना बेटा! खाना बन रहा है।" माँ की आवाज़ में ममता की गहरी पुट थी।

शंख ने एक-दो बार जाने को कहा, पर इरा और माँ ने एक स्वर होकर रोक लिया।

माँ ने हँसकर कहा, "गोविन्दन के साथ तुम्हें कष्ट हो बेटा, तो हम तुम्हारे लिए यहीं रहने का प्रबन्ध कर सकते हैं।"

"मुझे वहाँ कोई कष्ट नहीं," शंख ने बलपूर्वक कहा।

माँ ने सात पीढ़ियों की बात छेड़ दी, "सात सागर, संगीत के सात स्वर और सात पीढ़ियाँ। हाँ, सात पीढ़ियों से ही हमारा परिवार बम्बई में है, बेटा! पीछे हम रेणुका के हैं। आगरा से दूर नहीं रेणुका। वही रेणुका, जहाँ कभी जमदग्नि ऋषि का आश्रम था। बम्बई में लिखे गए हमारे परिवार के सात अध्याय। सोचती हूँ, आठवाँ अध्याय···" और इरा ने माँ के मुँह पर हाथ रख दिया।

"सात राग गाये गए, बेटा!" माँ कहती चली गई, "आठवें राग का कैसे जन्म हो?"

इरा उठकर भीतर चली गई।

शंख कुछ न बोला।

माँ ने कहना शुरू किया, "इरा की बड़ी बहन जाती रही। मंझला भाई भी न रहा।" माँ चुप हो गई। उसने उठकर माँ-बेटे की मूर्ति को समीप से देखा और फिर सँभलकर बोली, "अब मेरी इरा है, या फिर उसका छोटा भैया शंकर! तुम बैठो, बेटा! मैं इरा को भेजती हूँ!" कहते हुए माँ भीतर चली गई, और शंकर आकर शंख से खिलौनों की बातें करने लगा।

फिर शंकर भी भीतर चला गया।

शंख के जी में आया, उठकर नीचे उतर जाय। पहले इरा चली गई, फिर माँ, और अब शंकर भी चला गया। बालकनी से सागर नज़र आ सकता था, जब वह यहाँ आया था। अब रात्रि के अन्धकार में सागर की हल्की-सी आवाज़ ही सुनी जा सकती थी। उसे वरकला की याद हो आई। माँ मुझे याद करती होगी। पापनाशा पर माँ पहले के समान ही सागर-स्नान को जाती होगी। उसे अपने ऊपर क्रोध आने लगा—मैं कहाँ चला आया। बम्बई की फ़िल्मी दुनिया में मीना-बाज़ार सजा है। यहाँ मेरे राग-रागिनियों को कौन लेगा? डाइरेक्टरों को मस्का लगाने की कला से तो मैं अनभिज्ञ हूँ। प्रोड्यूसरों का चमचा बनने की कला कैसे सीखूँगा? मुझे वरकला लौट जाना चाहिए। उसे लगा, राजवंश और साधारण परिवार उदय और अस्त होते आए हैं युग-युग से! बदला नहीं नारी और पुरुष का आकर्षण। इरा के गिर्द घूमती है फ़िल्मी दुनिया। सुषमा की मूर्ति है इरा।

शीघ्र ही इरा ने सफेद खादी की साड़ी में महाश्वेता के समान प्रवेश किया। मुख पर स्वीकृति की मुस्कान, जो इस बात की सूचक थी कि मनुष्य की क्षमता ही चरम सार्थकता की पहली शर्त है। और फिर एकाएक हँसकर बोली, "कहते हैं, बिथोविन को संगीत-रचना में अटक लगती, तो वह सिर पर नल की टोंटी खोलकर बैठ जाता था। आप क्या करते हैं?"

शंख अचकचाकर चुप हो रहा। इरा ने पास रखे ग्रामोफोन पर बिथोविन का एक रिकार्ड लगा दिया, और हाथ से ताल देने लगी। उसकी आँखें मानो शंख से कह रही थीं—मैं जानती थी, मेरे जीवन में एक-न-एक दिन आएगा उल्लास-कौतूहल का गीत। और वह दिन आ गया। कहो क्या कहते हो? क्या तर्क देते हो? मीना-बाज़ार में अभिनय करना छोड़-छाड़कर विरक्त हो जाऊँ? यह बात मन में आती तो है, पर ऐसा करने को साहस नहीं जुटा पाती। बोलो, क्या

बोलते हो ?···

शंख कुछ न बोला। वह समझ गया। इरा के मन पर माँ-बेटे की मूर्ति की छाप लग गई। बात करते-करते वह मूर्ति की ओर देखने लगती।

गोबिन्दन उसे बता चुका था कि इरा का सपना एक दिन सच होकर रहेगा। इरा मुझे अपना जीवन-साथी बना सकती है? क्या मुझे उसके साथ बँध जाना चाहिए?···

इरा ने दूसरा रिकार्ड लगाकर कहा, "यह रिकार्ड है—'ह्वेयर दि ब्ल्यू ऑफ़ दि नाइट मीट्स दि गोल्ड ऑफ़ दि डे।"

देर तक अभिभूत हुआ वह यह धुन सुनता रहा। गुरुदेव के शब्द उसे स्मरण हो आए—उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम—संगीत से ये दीवारें हटनी चाहिएँ। ये पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण की हदबन्दियाँ मिटकर रहेंगी!

"यह है क्रास्बी का रिकार्ड," इरा मुस्कराई। रिकार्ड बन्द हुआ तो वह बुक-शेल्फ से एक पुस्तक उठा लाई। बोली, "इसके लेखक हैं आर्कमान। किसी तरह वे गेटे के निकटस्थ बन गए थे। गेटे से जो बातें हुईं लिखते रहे, और उन्हीं सूक्तियों से भरी बातचीत आर्कमान की डायरी में मौजूद है।"

शंख सोच रहा था—जिस साहस से इरा बता सकती है कि वह बिथोविन का रिकार्ड है, यह क्रॉस्बी का; जिस प्रकार इरा बता सकती है कि इस पुस्तक के लेखक हैं आर्कमान, जिन्होंने गेटे की बातचीत संग्रहीत कर डाली; क्या इतनी ही जल्दी और इतने ही विश्वास से इरा मेरी पत्नी होना भी पसन्द कर सकती है? जिस इरा पर बड़े-बड़े फ़िनान्सर-डाइरेक्टर और हीरो की भूमिका में काम करने वाले दिल-फेंक अभिनेता लट्टू थे, वही इरा मुझसे कहे कि मैं उसका जीवन-साथी बन जाऊँ तो कोई मुहूर्त पूछने की आवश्यकता नहीं।

इरा ने क्रॉस्बी का रिकार्ड दोबारा लगा दिया। "जहाँ रात की

नीलाहट सवेरे के सोने से मिलती है !" उसने गम्भीर मुद्रा बनाकर अभिनय किया, "यह चित्र मुझे बहुत अच्छा लगता है। मैं सब-कुछ भूल सकती हूँ, पर यह जीवन-झाँकी कल्पना से ओझल नहीं होती।"

शंख को लगा, यह भी किसी फ़िल्म का डायलॉग था। आगे बात चलाने का इरा का ज़रा भी आग्रह न था। इरा की आँखें आकेमान की पुस्तक पर झुकी थीं। वह गेटे का कोई अच्छा-सा बिचार ढूँढ रही थी।

मुख-मुद्रा, कण्ठ-स्वर और स्वभाव में इतना ताल-मेल शंख को अच्छा लगा। इरा के पीछे सात पीढ़ी का इतिहास है, गोबिन्दन के पीछे बीस पीढ़ी का। मैं तो यही कह सकता हूँ, सदा से हमारे परिवार में मूर्ति-कला चली आई है। मैंने मूर्तिकला को अन्तिम प्रणाम किया। गोबिन्दन ने शास्त्रीय संगीत छोड़ा। क्या इरा भी अपने परिवार की सात पीढ़ियों की परम्परा छोड़ देने को उत्सुक है ? वह अचल-अटल-सा सोफ़े पर बैठा रहा।

इरा एकाएक हँस पड़ी, "अब मुसीबत तो यह है कि बहुत सी अच्छाइयाँ हमारी आँख को छू ही नहीं पातीं !"

माँ भी आकर पास बैठ गई, "कैसे ?" इससे आगे उसने कुछ न कहा। इरा भी चुप हो गई।

इरा की दृष्टि मूर्ति पर जमी थी। मूर्ति से हटकर उसकी नज़र पास रखे फ़ोटो पर पड़ी। वह बोली, "वह रहे मेरे डैडी !"

"बहुत अच्छे थे, बेटा !" माँ की आँखों में विचार और आवेग का सागर अशान्त हो उठा।

माँ मदन बाबू की कहानी कह गई। वह गाना सुनने आये थे। वैसे ही आये थे, जैसे और लोग आते थे। मदन बाबू खाते-पीते परिवार के युवक थे—संगीत के रसिया। भाग्य ने बिना माँगे ही कृपा की थी। मदन को घर वालों ने लाख रोका, वह न रुके। मैना का संगीत उनके मन-प्राण छू गया था। वह बहुत ज़ोर से हँसते। हँसकर सब धूल झाड़ डालते।

मदन बाबू की बातें सुनाते हुए माँ के मुख पर करुणा की रेखाएँ उभरीं। आँखों में आँसू आ गए। 'जीवन-भर यहीं पड़े रहे। कुछ काम नहीं किया। कुछ करने की जरूरत भी नहीं पड़ी।'

इरा उठकर डैडी के चित्र के सामने खड़ी हो गई। शंख को लगा, यह सब अभिनय है।

फिर इरा रो पड़ी। वह भीतर चली गई।

"क्या ऐसा नहीं हो सकता, बेटा ?" माँ ने समस्त करुणा उँडेलते हुए कहा, "कि मेरी इरा को भी जीवन-साथी मिल जाय ?" आवेग से माँ का कण्ठ-स्वर उदात्त हो गया था, "यह कोई अपराध तो नहीं बेटा ! ऐसे तो बहुत हैं, जो मेरी इरा को मुझसे छीन ले जाना चाहते हैं। पर कितने अच्छे थे मदन बाबू ! आये और यहीं रह गए—हमारे हो गए। पिछला इतिहास भूल गए। नया इतिहास बना गए। कभी-कभी मैं सोचती हूँ, बेटा ! वह इतनी जल्द क्यों चले गए ! और जानते हो, बेटा ! मदन बाबू की एक ही बात ने मेरी नाव किनारे लगा दी थी।"

"वह क्या ?"

"एक दिन जब सब लोग गाना सुनकर उठ गए, मदन बाबू बैठे रहे। मैंने हँसकर कहा—क्या संगीत में गुमराह हो गए ? वह बोले—संगीत के बिना भी गुमराह हो सकता हूँ। मैंने कहा—वह कैसे ? वह बोले—सात का चक्कर चलता है। यह सदा से चलता आया है, चलता रहेगा। मैंने कहा—यह क्या गूढ़ पहेली है। तब वह बोले—

जब मेह तब घास !
जब घास तब प्रजा सुखी !
जब प्रजा सुखी तब ऐश !
जब ऐश तब जुल्म !
जब जुल्म तब कहर !
जब कहर तब तोबा !
जब तोबा तब मेह !

वह ठीक कहते थे न, बेटा ! वैसे मैंने ऊपरी मन से कहा था—तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आई, मदन बाबू !...वह मुस्करा दिए। फिर वह चले गए। बहुत दिन तक न आये। फिर वह लौटकर आये तो घर से सब नाते तोड़कर। और हमने शादी कर ली। मुजरा तो अपना काम ठहरा। वह न रुका। कैसे रुकता ? वह भी क्या ज़माना था ! पचास रुपये मुजरा से लेकर एक हज़ार रुपये मुजरा तक मिलने लगा था। ठुमरी की तालीम पाई थी। उस्ताद कहते—मैना, तेरे गले में जादू है। कई उस्ताद आये और गये। फिर एक उस्ताद ने कह दिया—मैना सब सीख गई ! कई तरह के लिबास साथ रखने पड़ते थे और कपड़ों के साथ मैच करने वाले ज़ेवर भी ज़रूरी थे। दोबारा मुजरे की फ़रमाइश की जाती, तो मैं सिर से पैर तक लिबास और ज़ेवर बदलकर मुजरा करती थी।" कहते-कहते माँ रुक गई। कथा की पृष्ठभूमि में माँ की मुख-मुद्रा पर मानो किसी मुजरे की कोई याद अंकित हो गई थी। शंख को लगा, जैसे कोई फ़िल्म देख रहा हो।

माँ ने फिर कहना शुरू किया, "आदत के साँचे में ढलने पर सब चलता रहता है। इन्दौर-नरेश होली बहुत धूम-धाम से मनाया करते थे। हिन्दुस्तान-भर की तवायफ़ें उन दिनों इन्दौर में होली के जशन पर महाराज की मेहमान हुआ करती थीं, बेटा ! मैं भी जाती थी। गौहरजान तो मैं भला कैसे बन सकती थी ! वह तो कभी इस मौके पर इन्दौर न गई। एक महफ़िल में, जहाँ मुझे भी गौहरजान के साथ बुलाया गया था—भले ही मैं गौहरजान की चेली ही लगती थी—इन्दौर-महाराज ने पूछा—सारे हिन्दुस्तान की तवायफ़ें इन्दौर आती हैं होली पर, तुम क्यों नहीं आतीं, गौहरजान ? झट बोल उठीं गौहरजान—आपने मुझे बुलाया कब ? महाराज बोले—यह हमारा दस्तूर नहीं कि हम तवायफ़ों को न्योता दें। न्योता बराबर वालों को दिया जाता है। इसके जवाब में गौहरजान बोलीं—तब तो मैं भी मजबूर हूँ। मेरा भी बिन-बुलाए कहीं जाने का दस्तूर नहीं। और बेटा, मरते दम तक

गौहर ने होली पर इन्दौर का रुख नहीं किया था। मैं गौहर न बन सकी।…"

शंख ने पूछ लिया, "गाना सीखने में तो बहुत कष्ट नहीं आये होंगे ?"

"क्यों नहीं ? शुरू-शुरू में तो यह हाल रहा बेटा, कि ज़रा-सी भूल पर उस्ताद भरी महफ़िल में मुँह पर तमाचा मार देते थे। नाच-रंग की महफ़िलों में उन दिनों गाने वालियों में मुकाबले हुआ करते थे। एक बन्द लेकर सभी तवायफ़ें अपने-अपने ढंग से गातीं और सुनने वाले बेहतरीन तर्ज़ का फ़ैसला करते। ऐसे मौकों पर अगर ज़रा-सी भी भूल हो जाती तो तबलची उठकर सबके सामने मेरे मुँह पर तमाचा जड़ देता। और जैसा कि क़ायदा था, मैं गुस्सा होने की बजाय उलटी शुक्रगुज़ार होती। उसी तालीम का नतीजा था बेटा कि पचास रुपये मुजरा से एक हज़ार मुजरा तक पाने लगी थी।…" कहते-कहते माँ जैसे अपने अतीत में खो गई।

इरा ने आकर कहा, "खाना तैयार है, माँ !"

"तो लगवाओ। हम आते हैं।"

माँ के मुख पर फिर चमक आ गई। "मेरी कहानी बहुत लम्बी है, बेटा ! उन दिनों तवायफ़ को खड़े होकर गाना पड़ता था। सुनने वाले आराम से बैठ जाते थे। भला हो जद्दन बाई का। उन्होंने तवायफ़ों में बैठकर गाने का तरीका चलाया। शादी-ब्याह में तवायफ़ों का आना जरूरी था। नवाब रामपुर एक जशन करते थे। जब तवायफ़ें जशन में भी साथ जाती थीं। जद्दन बाई को यों बाज़ीगरों की तरह निकलने में तवायफ़ों की हतक महसूस हुई। आँखों-देखी बात सुनाती हूँ। उन्होंने तजवीज़ रखी कि हम जशन में निकलने से इन्कार कर दें। जब जुलूस का समय आया, तो सब डरकर चल पड़ीं। मैं पीछे रह गई जद्दन बाई के साथ। नवाब साहब को हमारी इस हरकत का पता चल चुका था। बाद में हम सामने गईं, तो उन्होंने मुँह फेर लिया। जद्दन बाई ने मेरे

कान में कुछ कहा। मैंने हाँ में सिर हिलाया। हम दोनों भिन्नाकर उलटे पाँव लौट आईं। पीछे-पीछे आ पहुँचा नवाब साहब का हुकमनामा—पौ फटने से पहले रियासत की सरहदों से बाहर निकल जाओ ! और हम रातों-रात वहाँ से चले आये थे, बेटा ! वह भी क्या ज़माना था !…"

इरा ने हँसकर कहा, "वह भी क्या ज़माना था ! और यह भी क्या ज़माना है !"

भोजन के बाद शंख चलने लगा, तो माँ ने गम्भीर होकर कहा, "जब मेह तब घास !"

इरा गम्भीर होकर बोली, "यह किसी गेटे का विचार नहीं, यह तो हमारे डैडी का बोल है !"

नौ

शंख ने इरा की कथा सुनी, तो पहले उसे ग्लानि-सी हुई। फिर वह मानो इस कथा को तर्कसंगत सिद्ध करने के लिए मन-ही-मन कह उठा—कमल कीचड़ में खिलता है! कमल से इरा की तुलना उसकी कल्पना को छू-छू जाती।

गोबिन्दन को किसी प्रकार पता चल गया था कि इरा से कहीं अधिक बूढ़ी गायिका मैना ही शंख के संगीत पर मुग्ध हो गई है। उसने शंख को समझाया, "इन लोगों के चक्कर में मत फँसना। पहली बात तो यह है, मैना को कभी यह सहन ही नहीं हो सकता कि कोई इरा को ब्याहकर ले जाय। दूसरी बात यह कि मैना को बहुत दिनों से एक घर-जमाई की तलाश है। छि: छि:, एक वेश्या के घर में घर-जमाई बनकर रहने पर लाख-लाख धिक्कार! मैं कहता हूँ शंख, तुम भले ही इन लोगों से मिलो, पर अपना काम निकालने के लिए। इरा तुम्हें काम दिला सकती है, अच्छे लोगों से मिला सकती है। तुम होशियार रहना। तुम्हारी बुद्धिमानी इसी में है कि सीढ़ी के डण्डों पर पैर रख-रखकर ऊँचे चढ़ते जाओ, न कि सीढ़ी से ब्याह करके घर-जमाई बन बैठो। उस रूप में तो तुम मिट्टी के माधो ही बन जाओगे। ख़बरदार! यह मैं कह रहा हूँ! मैं हूँ गोबिन्दन अवतार! बम्बई के फ़िल्म-जगत् का अवतार, जिसकी आज पूछ नहीं तो कल ज़रूर होगी।" इस लम्बे भाषण के उत्तर में शंख ने एक भी शब्द न कहा। केवल मुस्कराकर

आँखों-ही-आँखों में कहा—मैं इतना मूर्ख नहीं !

बम्बई में हर कोई दौड़ रहा था। अपनी-अपनी 'एंगेजमेण्ट' का चक्कर। एक मित्र दूसरे को 'हलो' कहता, और अगले ही पल देखता कि मित्र आगे निकल गया, 'हलो' पीछे छूट गया। शंख को इतना सन्तोष तो था कि गोबिन्दन उसके लिए बड़ी-से-बड़ी 'एंगेजमेण्ट' छोड़ सकता है।

उर्वशी ने कह-सुनकर दो-तीन और ट्यूशनों का प्रबन्ध कर दिया था। जब तक फ़िल्म-जगत् में कहीं पैर नहीं जमते, ट्यूशनें तो ज़रूरी थीं।

नीलू इस प्रयत्न में थी कि शंख को फ़िल्मी संगीत की दलदल में फँसने से बचाकर, अपने विद्यालय में संगीताचार्य की पक्की नौकरी दिलवा दे; भले ही वह जानती थी, शंख जीवन-भर गोविन्दन के चक्कर से नहीं निकल सकेगा, जिसके जीवन का उदय यहीं हुआ, अस्त भी यहीं होगा। पर यह तो नीलू भी चाहती थी कि गुरुदेव की जीवनी पर फ़िल्म बने तो उसमें शंख का संगीत रहना चाहिए।

शंख की कल्पना का कोई ओर-छोर न था। उर्वशी को अपनी कथा से अवकाश न था। उसके पति की अगले मास के आरम्भ तक आ जाने की सम्भावना है; अब देर नहीं होगी। संगीत में उर्वशी का मन नहीं लगता। बातें करते थकती नहीं। कभी किसी नीग्रो गायिका की सम्मति प्रस्तुत करते हुए कहती कि भारतीय और पश्चिमी संगीत में लय की पद्धति एक ही प्रकार की है। कभी आँखें मटकाकर यह दावा करती कि उस नीग्रो गायिका के लिए भारतीय रागों की वृन्दवाद्य द्वारा प्रस्तुत रचनाएँ सुनवाने का श्रेय उसीको मिलना चाहिए। बातें-ही-बातें। बातों की मटक पुतली थी उर्वशी। कई दिन तो नीग्रो गायिका का चक्कर चला। शंख सुनते-सुनते ऊब गया। भारत आने से पूर्व नीग्रो गायिका ने अमरीका में भी भारतीय संगीत सुना था। अमरीका में उसने रवीन्द्र-नाथ ठाकुर के दर्शन किये थे। तब वह बच्ची थी। तभी से भारत आने

के लिए वह लालायित रही। नीग्रो गायिका ने यह बात बलपूर्वक कही थी कि जैसे हम लोग यहाँ पश्चिमी संगीत सुनाने आते हैं, वैसे ही अमरीका और पश्चिमी देशों में ऐसे सुअवसर मिलने चाहिएँ जब भारतीय संगीताचार्य और गायिकाएँ भारतीय संगीत का प्रदर्शन करें। उर्वशी देर तक यह चर्चा ले बैठी कि शंख जैसे भारतीय संगीताचार्य को विदेशों में जाकर अपने देश का नाम ऊँचा करना चाहिए। शंख ने बाहर जाने की उत्सुकता न दिखाई, तो उर्वशी यह प्रसंग ले बैठी, "अमरीका में नीग्रो लोगों की जो हेय स्थिति है, उसके फलस्वरूप वहाँ नीग्रो संस्कृति पर परलोकवादी छाप लग गई है। इस लोक के अन्याय से मुक्ति पाने के निमित्त नीग्रो परलोक की कामना करता है। इस भाव-धारा के नीग्रो गीत समूह-गान के रूप में विकसित हुए हैं। सबसे अधिक लोकप्रिय यही गीत हैं। समूहबद्ध होकर नीग्रो स्त्री-पुरुष ये गीत गाते हैं तो फूट-फूट पड़ता है उनका आवेश; वातावरण में तिर-तिर जाती हैं।" उर्वशी ने आँखें मटकाकर यह वक्तव्य कुछ इस प्रकार दिया जैसे वह आँखों-देखा हाल बता रही हो।

उर्वशी को दुःख था तो यही कि शंख उस समय बम्बई आया, जब वह नीग्रो गायिका लौट गई थी। बम्बई के पत्रों में उस गायिका का विस्तृत परिचय प्रकाशित हुआ था। एक फ़ाइल से निकालकर उसने एक समाचारपत्र की कटिंग सामने ला रखी :

"इटली के प्रसिद्ध संगीतज्ञ स्वर्गीय आर्तुरो टोस्कानीनि ने अमरीकी नीग्रो गायिका मिस नोरा फिशर का संगीत सुनने के पश्चात् उसे 'देवलोक की किन्नरी' की उपाधि दी थी। एक सुविख्यात जर्मन संगीतज्ञ ने उसकी मधुर आवाज़ का यह कहकर अभिनन्दन किया था—'सौ वर्षों में भी ऐसी आवाज़ बड़े भाग्य से सुनने को मिलती है!'

"नोरा फ़िशर की मधुर आवाज़ सर्वप्रथम न्यूयॉर्क के एक नीग्रो चर्च में सुनी गई थी, जहाँ वह एक शिशु-मण्डली के साथ मिलकर गा रही थी।

"नोरा को सफलता तक पहुँचने के लिए लम्बा मार्ग पार करना पड़ा। अनथक लगन उसे माँ से विरासत में मिली थी। पिता से मिला था दृढ़ संकल्प। पहला वायलन खरीदने के लिए वह पड़ोस के एक सम्पन्न परिवार में झाड़ने-पोंछने का काम करके कई महीनों तक पैसे जुटाती रही। तब वह दस वर्ष की ही थी।

"यों अमरीका की इस सुप्रसिद्ध गायिका ने जीवन की डगर पर चलना शुरू किया। मुड़-मुड़ बाधाएँ आईं। मुड़-मुड़ उसने साहस से काम लिया और कला के उच्चतम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उसने अपनी साधना-रागिनी को चलने दिया। सरलता और विनम्रता की मूर्ति नोरा निरन्तर आगे बढ़ती गई। उसकी कटु आलोचना भी हुई, पर इससे भी उसने बल प्राप्त किया। माता-पिता-विहीन नोरा ने संगीत में ही माता-पिता का स्नेह उपलब्ध किया। कठिनाइयों ने नोरा को सोने की तरह तपाया और शुद्ध किया।

"संगीत के छोटे कार्यक्रमों में भाग लेकर, और वह भी बहुत थोड़े पैसों में, नोरा अपनी शिक्षा और जीवन-निर्वाह को जारी रख सकी। यह एक चमत्कार है। जब मिस नोरा की स्नातकीय शिक्षा पूरी हुई, तो कालिज के प्रिंसिपल ने एक विख्यात संगीतज्ञ के सामने मिस नोरा के गाने की व्यवस्था की। प्रेस कान्फ्रेंस में यह बताते हुए कि उस संगीतज्ञ ने बड़ी कठोरता से कह दिया था, 'अतिरिक्त छात्र-छात्रा के लिए मेरे यहाँ बिलकुल गुंजाइश नहीं। तुम्हारा संगीत सुनने के लिए मैंने जो बहुमूल्य समय दिया, वही सचमुच तुम पर भारी कृपा है।' यह बताते हुए मिस नोरा का गला भर आया था।

"फिर नोरा ने बताया कि संगीतज्ञ के कठोर उत्तर के बावजूद उसने 'गहरी नदिया' शीर्षक पुरातन नीग्रो गान गा सुनाया। संगीतज्ञ मन्त्रमुग्ध-सा रह गया। नोरा को प्रवेश मिल गया। अब यह समस्या थी कि शिक्षा के लिए खर्च कहाँ से आए। एक धनी परिवार की महिला ने कुछ मित्रों के साथ मिलकर नोरा के संगीत का आयोजन

किया। उससे जो धन आया, सब खर्च निकालकर, सात सौ डालर बच रहा।

"उससे अगले ही वर्ष नोरा को न्यूयार्क के संगीतज्ञों ने सर्वश्रेष्ठ गायिका घोषित किया।

"फिर तीन वर्ष बाद फिलाडेल्फिया ने नोरा को दस हज़ार डालर का वोक पुरस्कार प्रदान किया। पर नोरा ने इस राशि से एक पुरस्कार कायम करके उदारता का परिचय दिया।

"नोरा ने पूरे यूरोप की तीन बार यात्रा की है, और अनेक विश्वविद्यालयों ने उसे 'डाक्टर ऑफ म्यूज़िक' की सम्मानसूचक उपाधियाँ प्रदान की हैं। इस सिलसिले में बम्बई विश्वविद्यालय भी पीछे नहीं रहा।"

उर्वशी ने स्वयं नोरा का जीवन-परिचय पढ़कर सुनाया। शंख के मुँह से निकला, "स्वयं अपने ही देश के कलाकारों को सम्मान देने में बम्बई विश्वविद्यालय को देर लगेगी। पर कोई बात नहीं। हम इन्तजार कर सकते हैं।"

"नोरा जाते-जाते एक बात कह गई थी।"

"क्या ?"

"नोरा ने कहा था कि अमरीका में फ़िल्मी संगीत की कोई पृथक् पद्धति नहीं है और न ही फ़िल्मी संगीत को तिरस्कार की भावना से देखा जाता है।...." कहते-कहते उर्वशी रुक गई। और फिर सँभलकर बोली, "मैं नोरा को 'तानसेन' और 'बैजू बावरा' फ़िल्में दिखाने ले गई थी। ये फ़िल्में देखकर नोरा को कितनी निराशा हुई, इसका अन्दाजा आप नहीं लगा सकेंगे।"

"ठीक है !" कहकर शंख ने इस प्रसंग को यहीं समाप्त कर देना चाहा।

उर्वशी मुस्कराई, "मैंने गुरुदेव की आत्मकथा का स्क्रीन-प्ले लिखना शुरू कर दिया है, यह तो आपको बताया ही नहीं।"

"ठीक है।"

"क्यों, इससे आपको खुशी नहीं हुई ?"

"सब ठीक है। चलता है।"

"निराश होने की बात नहीं। नीलू कल आई थी। वह कह रही थी कि वैसे तो डाइरेक्टर-प्रोड्यूसर सान्याल भी गुरुदेव की जीवनी पर फ़िल्म बनाने को तैयार हैं, पर जयन्त भाई अपनी कम्पनी से पहली फ़िल्म के तौर पर ही इसका निर्माण करें, तो और भी अच्छा होगा। मैंने हाँ कर दी, और यह कहकर उसे चौंका दिया कि जिस दिन पुस्तक की प्रति मेरे हाथ में आई, मैंने इसे पढ़ना शुरू किया और समाप्त करते ही स्क्रीन-प्ले लिखने बैठ गई, जो आधे से ज्यादा लिखा जा चुका है। बढ़िया चीज़ बनेगी। क्यों ?"

"ठीक है।"

उर्वशी को शंख का 'ठीक है' कहना बहुत अखरा। वह चुप हो गई।

शंख ने ठण्डी साँस भरकर कहा, "सब पैसे का खेल है। पैसे को पैसा कमाता है..."

"उसमें गुरुदेव का रोल मुक्तिबोध करेंगे। मैं कल उनके घर गई थी। मैंने हँसकर कहा—कबूतर तो बहुत पाल लिये। अब फिर बाहर निकलो। बोले—तुम कहोगी, तो क्या इन्कार है, उरू! मेरा तो बचपन देखा है मुक्ति काका ने! मैं तो उनसे हाँ कराये बिना न टली।"

"यह तो बहुत अच्छा हुआ।"

"संगीत आपका रहेगा।"

"यह सब फ़ैसला तुम अपने-आप ही किये जा रही हो! जयन्त भाई को तो आने दो।"

"उनकी तरफ़ से मुझे सब अधिकार हैं। और एक बात बताऊँ। आपको विश्वास नहीं होगा।"

"क्या ?"

"इरा को तो सभी चुनते हैं। मैंने इरा की माँ को चुना है। गुरुदेव

की पत्नी अन्नपूर्णा का रोल मैना करेगी। कमाल हो जायगा। मुक्तिबोध और मैना का यह मेल कैसा रहेगा ?"

"ठीक है।"

उर्वशी खीझ उठी, " 'ठीक है' के अलावा भी उत्तर हो सकता है, संगीताचार्यजी ! खुश नहीं होते। पैसे मिलेंगे, जितने मुँह से माँगोगे। बोलो, आज की डेट से ही कान्ट्रेक्ट करते हैं ?"

"मुझे अपना मोल स्वयं मालूम नहीं।"

"मोल दे भी कौन सकता है ? खाली पत्रम्-पुष्पम् देने की बात है।"

"वैसे तो बात ठीक है। गुरुदेव पर फ़िल्म बने, तो मैं उससे पैसा कमाने की बात तो सोच भी नहीं सकता। फिर भी गोबिन्दन से भी सलाह कर लूँगा।"

"गोबिन्दन से क्या सलाह करनी है ?" उर्वशी हँस पड़ी, "मैं कहती हूँ, आज ही और अभी फैसला कर लो। मुक्तिबोध और मैना के कांट्रेक्ट कल ही हुए हैं। आज आपका कान्ट्रेक्ट भी हो जाय। बनियागीरी मुझे भी नहीं आती। मैं चाहती हूँ, जयन्त के आते ही काम शुरू हो जाय। स्टूडियो का प्रबन्ध भी कर रहे हैं। अब आप बम्बई में हैं, वरकला में तो नहीं। यह फ़िल्म शानदार बन जाय, और साथ ही गुरुदेव की परम्परा के अनुरूप संगीत चमक उठे तो आपका भविष्य उज्ज्वल है। अब केवल एक कवि की चिन्ता है। कवि भी ऐसा जो यह ज़िद न करे कि वह पहले गाने लिखे और आप उन पर संगीत फिट करें, बल्कि ऐसा कवि जो आपकी धुनों के अनुसार शब्द फिट करे।"

शंख कुछ न बोला।

उर्वशी देर तक इधर-उधर की बातें करती रही। सूर्यास्त हो रहा था।

खिड़की से सागर की लहरों पर सुनहरी आभा नजर आ रही थी।

पहले चाय आई।

फिर उर्वशी ने जल्दी-जल्दी कान्ट्रेक्ट टाइप किया और शंख के सामने

रखकर बोली, "लीजिए। पाँच हज़ार की बजाय मैंने सात हज़ार ही लिख दिए। मैं भला जयन्तजी का ही पक्षपात क्यों करने लगी ? कलाकार को भी भूख लगती है। यह और बात है कि यदि मैं आपकी जगह होती तो ऐसा सुअवसर पाने के लिए सात हज़ार पाने की बजाय पल्ले से सात हज़ार दे डालती। गोबिन्दन यह कान्ट्रेक्ट देखेगा तो कहेगा कि उर्वशी उदार है।''''''तो लीजिए, इस कान्ट्रेक्ट पर सही कीजिए। आज ही मैं अपनी सहेली नोरा फ़िशर को भी इसकी सूचना दे रही हूँ।"

शंख ने बहुत देर तक लेखनी न उठाई। फिर उसने काँपते हाथों से हस्ताक्षर कर दिए।

दस

जयन्त के हाथ में 'मिरर' मैगज़ीन का ताज़ा अंक था, जिसमें एक संगीतकार की महान् प्रतिभा दरशाने वाली यह टिप्पणी छपी थी :

एक बार एक संगीत-प्रेमी युवक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ मोजर्ट के घर गया और बोला, " 'सिम्फनीज़' के नोटेशन कैसे लिखे जाते हैं ?"

इस पर मोजर्ट ने उत्तर दिया, "अभी तुम लड़के हो। पहले 'बैलट' के नोटेशन लिखो। उसमें सफल हो जाओ तो आगे बढ़ना।"

"आप तो दस वर्ष की अवस्था में ही सिम्फनीज़ के नोटेशन लिखने लगे थे।"

"सो तो ठीक है। पर मैं किसी से पूछने तो नहीं गया था तुम्हारी तरह।"

पढ़ते-पढ़ते जयन्त को सिहरन-सी हुई। फ़िल्म जगत् को ही लो। कुछ लोग इसमें वर्षों से धक्के खा रहे हैं, फिर भी किसी ठिकाने पर नहीं पहुँच सके। कुछ किसी प्रकार गाड़ी ठेलने योग्य हो पाए, फिर भी उन्हें सफल तो नहीं कह सकते थे।

तीन साल बाद लौटा था जयन्त। अच्छी फ़िल्म बनाने के हज़ारों करतब सीख डाले। यूरोप की भी खूब यात्रा की। कोई स्टूडियो छोड़ा नहीं। बड़े-बड़े डाइरेक्टर-प्रोड्यूसरों से भेंट की। उनके अनुभव को पानी के घूँट के समान पी लिया।

उसके पास अपना इतना सामान न था, जितना फ़िल्म-सम्बन्धी

साहित्य । अनेक पत्रों की कटिंग, अनेक पुस्तकें । दुनिया-भर के फ़िल्म-सम्बन्धी नुसखे । और बहुत सी ऐसी पुस्तकें भी थीं, जिनका फ़िल्म-जगत् से सीधा सम्बन्ध तो न था, फिर भी उनसे मदद मिल सकती थी ।

बम्बई पहुँचकर उसे पता चला कि उर्वशी ने बहुत काम कर लिया । गुरुदेव की कहानी के पात्र चुनने में तो उसने कमाल ही कर डाला था । मुक्तिबोध तो अब पुराना सिक्का था, घिसा-पिटा । उसे फिर से फ़िल्म में लाने की बात अनोखी थी । वह तो वर्षों से कबूतर पालने में ही अपनी कला दिखाने लगा था । चलिए, यहाँ वह कला के कबूतर उड़ायेगा । इरा की माँ मैना पहली बार आ रही थी ।

शंखधरन—उसे तो जयन्त भूल ही गया था ! कहाँ पच्चीस हज़ार, कहाँ सात हज़ार ! ट्यूशन के फन्दे में उर्वशी ने उसे खूब फँसाया । बेचारे का पहला कान्ट्रेक्ट है । उसे क्या पता, बम्बई की मार्केट में म्यूज़िक-डाइरेक्टर का क्या मोल है । कान्ट्रेक्ट पर साइन कर दिया । अब तो वह बँध गया । अब कहाँ जायगा ?

आज कला मोवीटोन का मुहूर्त है । जयन्त के आनन्द का पारावार नहीं । उसका स्वप्न साकार होने जा रहा है ।

उर्वशी सवेरे से 'गुरुदेव की आत्मकथा' की मोरक्को बाइंडिंग वाली प्रति लिये बैठी थी । जयन्त कई बार उठकर उर्वशी के पास गया । मुस्कान-से-मुस्कान टकराई । नयनों ने दाद दी । धन्य है उर्वशी ! एक डाइरेक्टर-प्रोड्यूसर की पत्नी को इतना ही कर्मठ होना चाहिए । पूरा स्क्रीन-प्ले लिख चुकी है । फिर से पुस्तक पढ़ रही है । शायद कहीं कोई नया नुकता हाथ लग जाय । मेहनत का फल है । सफलता और किस चिड़िया का नाम है ! टोना नहीं सफलता, कोई मन्त्र नहीं । यह सब तो साधना पर निर्भर है । जयन्त को लगा, उसने स्वयं भी कुछ कम साधना नहीं की थी । छोटी उम्र से ही वह फ़िल्म में दिलचस्पी लेने लगा था, जैसे मोजर्ट दस वर्ष की उम्र में ही 'सिम्फनीज़' के नोटेशन लिखने लगा था ।

"सिगनेचर ट्यून सुनोगे ?" उर्वशी मुस्कराई।

"ज़रूर सुनेंगे।" जयन्त बोला, "आज तो कुछ मिलेगा, दायें हाथ की हथेली खुजला रही है।"

"पर मेरी तो बाईं हथेली खुजला रही है।" उर्वशी हँस पड़ी, "सफलता निश्चित है !" और उसने उठकर टेप रिकार्डर लगा दिया।

"वाह-वाह !" जयन्त झूम उठा, "शंख का स्वर भी खूब है। पिछले दस वर्ष में मैंने ऐसी धुन नहीं सुनी।"

"हालीवुड में भी नहीं ?"

"नहीं।"

"यह तो बताओ, सिगनेचर ट्यून के रूप में वह कैसी रहेगी ?"

"अभी यह बताना क्या बाकी रह गया ? बहुत ही बढ़िया धुन है। कला मोवीटोन की कला तो तुम्हीं हो, उर्वशी ! इस पिक्चर से हमारी धाक बैठ जायगी। हम फ़िल्म-इण्डस्ट्री का स्टेण्डर्ड एकदम ऊँचा उठा देंगे।"

उर्वशी मटक चिड़िया की तरह चहक उठी। जैसे सुहागरात की शहनाई बज रही हो : आज उसकी सिगनेचर ट्यून को जयन्त ने पसन्द कर लिया था। "सिगनेचर ट्यून तो पूजा-प्रसाद है !" उर्वशी ने दोबारा टेप रिकार्डर चलाते हुए कहा, "एक बार तो संसार झूम उठेगा। बातों-ही-बातों में शंख ने यह धुन सुनाई। मैंने बहुत प्रशंसा की। आर्टिस्ट की प्रशंसा ठीक स्थल पर की जाय तो बात बनती है।"

"यह तुम्हारे दिमाग़ का चमत्कार है।"

"मेरी प्रशंसा तो ज़रा थोड़ी ही करो।"

"क्यों, तुम क्या आर्टिस्ट नहीं हो ?"

"एक बात कहूँ ? पहले सुन लो। फिर कहीं भूल न जाऊँ। इस फ़िल्म में एक सिचुएशन ऐसी ज़रूर निकालेंगे, जहाँ वह गाना आ सके..." कहते-कहते उर्वशी रुक गई। फिर सँभलकर बोली, "ख़ैर छोड़ो। शायद तुम हँस दोगे, जयन्त !"

"कहो तो।"

"वह एक गीत है न !"

"कौनसा ?"

"रेलिया होइ गई मोर सवतिया, पिया के लादि लेई गई न !" उर्वशी ने लोकगीत की पूरी शक्ति दरशाने का यत्न किया।

"अरे वाह ! तुमने यह धुन कहाँ सीखी ?"

"बस देख लो। तुम हालीवुड और यूरोप में घूमते रहे। हमारा भी अपना हालीवुड है।"

"क्यों नहीं।"

"हाँ, तो हमारे देश में बहुत-कुछ है जिसे अभी एक्सप्लायट ही नहीं किया गया। हम बहुत-कुछ दे सकते हैं संसार को !"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं। पर रेलिया सवतिया वाले गीत को तुम कहाँ चिपकाना चाहती हो ? क्या इसी गुरुदेव वाली फ़िल्म में ?"

"अवश्य।"

जयन्त ने मुस्कराकर कहा, "हमें मुहूर्त से एक घण्टा पहले स्टूडियो पहुँच जाना चाहिए। तीन घण्टे रहते हैं। एक घण्टे में तो तुम जाकर कहीं तैयार होगी।"

"मैं तो दस मिनट में तैयार हो सकती हूँ। अभी लो !" उर्वशी ने रिकार्ड लगा दिया—'कर ले सिंगार, गोरी, कर ले सिंगार !'

लेकिन इस 'कर ले सिंगार, गोरी !' ने पैंतालीस मिनट ले लिये। गोरी सिंगार करती रही। सिंगार शेष ही नहीं हो रहा था।

"जल्दी करो ! कर ले सिंगार, गोरी !" जयन्त हँस पड़ा, "सारा सिंगार क्या आज ही कर लोगी ?"

उर्वशी दर्पण के सामने खड़ी लिपस्टिक लगा रही थी !

ग्यारह

स्टूडियो बहुत सजा हुआ था। जयन्त और उर्वशी गेट पर खड़े अतिथियों का स्वागत कर रहे थे।

मुक्तिबोध आ चुका था, पर मैना अभी तक नहीं आई थी। मनोज सान्याल तो यों चहक रहे थे, जैसे यह उन्हीं की फ़िल्म का मुहूर्त हो।

इरा का कहीं पता न था। बार-बार लोग उसी को पूछ रहे थे। फिर किसी ने कहा, "इरा तो आजकल शंख के चक्कर में है।"

"यह सब ग़लत बात है।" मनोज ने बलपूर्वक कहा, "लोगों ने न जाने इरा को क्यों इतनी मूर्ख समझ रखा है? वह तो बड़ी चलती रकम है।"

"होगी चलती रकम!" फिर किसीने कहा, "समय आने पर सब बुद्धि धरी-धराई रह जाती है। मनोज बाबू, आपकी इरा तो आपके हाथ से गई।"

मनोज हँस पड़ा, "इरा तो अपनी माँ की है। उसे जो पैसा मिलता है, वह सब मैना की जेब में ही तो जाता है।"

मुक्तिबोध भी चुप न रह सका, "मैना तो अपने जमाने की बहुत बड़ी गायिका है। मैना ने जितना कमाया, उतना तो इरा क्या खाकर कमाएगी? और अब देखते जाइए। मैना देवी फ़िल्म में उतरने जा रही हैं। मेरा तो ख़याल है कि वह नया स्टेण्डर्ड कायम करेंगी।"

"और आप अपनी बात भी तो कहिए मुक्तिबोधजी!" मनोज ने

चुटकी ली, "क्या आप फिर से न्यू थियेटर्स वाली आग जला सकेंगे ?"

"क्यों नहीं ? काम करने वाले पर नहीं, यह तो काम लेने वाले पर निर्भर है । हम तो इतना ही कहेंगे, मुक्तिबोध अभी ज़िन्दा है और वह मरेगा नहीं । वह तो कला से ही जी रहा है, और अब वह कला से ही अमर हो जायगा ।"

कई ओर से ऐसी आवाज़ें आईं कि इरा शायद जान-बूझकर नहीं आई । पर मैना भी तो अब तक नहीं आई थी ।

फिर किसी ने कहा, "जयन्त भाई, आपके म्यूज़िक डाइरेक्टर कहाँ रह गए ?"

"सात हज़ार वाला म्यूज़िक डाइरेक्टर मुहूर्त पर भी अवश्य पधारे, यह कुछ ज़रूरी तो नहीं ।" मनोज ने मुक्तिबोध के समीप आकर कहा ।

मुक्तिबोध ने वह किस्सा छेड़ दिया कि जिस ज़माने में मैना देवी ने गाना सीखा और मुजरे में नाचने का अभ्यास किया तो उस्ताद लोग बड़ी मुश्किल से कोई गुर बताते थे । मैना देवी ने एक बार आपबीती सुनाई थी कि पहली बार मुजरे में गलत कदम उठने पर तबले वाले ने सबके सामने उनके गाल पर तमाचा जड़ दिया था। कहते-कहते मुक्तिबोध ने विचित्र-सा मुँह बनाकर कहा, "वह भी क्या ज़माना था !"

इसके उत्तर में किसी ने कहा, "अगले वक्तों के हैं ये लोग, इन्हें कुछ न कहो !"

मनोज बाबू बोले, "अब हमारे जयन्त भाई मैना बाई पर तो फ़िल्म बनाने से रहे ।"

उर्वशी समझ नहीं पा रही थी कि शंख कहाँ रह गया । मैना नहीं आई, इसका तो उसे बहुत अफ़सोस नहीं था । फिर भी वह घबराई नहीं । वह तो बल्कि जयन्त से कह रही थी, "मुहूर्त में जितने लोग आये, उनके हम ऋणी हैं; जो नहीं आ पाए, उनकी कोई मजबूरी रही होगी ।"

"मुहूर्त की धरती में सफलता का बीज फूटता है ।" जयन्त ने उपस्थित मित्रों का धन्यवाद किया, "एक जर्मन कहावत है—किसी की

पीठ पर हाथ फेरो, उसका दिमाग आसमान पर चढ़ने लगता है ! आप मित्रों का अनेक धन्यवाद ! आपने हमारी पीठ पर हाथ फेरा, आपने हमारे दिमाग को आसमान पर चढ़ने का मौका दिया ।"

इस पर सबने तालियाँ बजाईं और उन सबकी नज़रें मिठाई-नमकीन और चाय की तरफ जा पड़ीं ।

चाय आरम्भ हो गई । किसी ने कहा, "मैना देवी के न आने से हम घाटे में रहे । वह आतीं तो हम उनसे उनकी प्रिय रागिनी जयजयवन्ती अवश्य सुनते ।"

उर्वशी ने टेप रिकार्डर लगाते हुए कहा, "यह है हमारी इस फ़िल्म की सिगनेचर ट्यून ! इसके बारे में आप लोग ज़रूर अपनी राय दें ।"

एक-दूसरे की ओर देखकर सबने आँखों-ही-आखों में सिगनेचर ट्यून की प्रशंसा की ।

"बलिहारी !" मुक्तिबोध चहक उठा, "महाकलाकार की प्रतिभा भी महान् ।"

जयन्त की खुशी का कोई ओर-छोर न था । उसकी बेताबी बढ़ी जा रही थी । उसे मैना की अब भी प्रतीक्षा थी । "कहीं रास्ते में कार-एक्सीडेण्ट न हो गया हो !" उसने उर्वशी के समीप होकर कहा ।

"सफलता भी क्या चीज़ है, मनोज बाबू ?" मुक्तिबोध ने प्रशंसा का कबूतर उड़ाया, "ज़िन्दगी-भर हम सफलता के पीछे भागते फिरते हैं । हमें कहीं ठिकाना नहीं मिलता । और जब मिलने पर आता है तो झट मिल जाता है ।"

"अटरिया पै गिरा रे कबूतर आधी रात ।" किसीने चुटकी ली, "क्यों मुक्ति बाबू, इस गीत का क्या मतलब है ?"

मुक्तिबोध ने झेंपने की ज़रूरत न समझी । सभी जानते थे कि पिछले कई वर्षों से उसे कबूतर पालने का शौक है । वह अपनी ही बात कहता चला गया, "कबूतर किसी अनजानी प्रेरणा के वशीभूत होकर गगन में दूर-दूर तक उड़ता है । नहीं तो बताइए, आपके पास क्या हुक्मनामा

है ? और अगर ठीक आधी रात के समय प्रेमिका की ही अटारी पर पहुँचकर प्रेमी की चिट्ठी पहुँचा देता है कबूतर, तो इसमें बुराई भी क्या है ?"

मुहूर्त के शोर में सभी बातें दब गईं। इतने में मैना, इरा और शंख ने एक साथ प्रवेश किया।

सबने तालियाँ बजाकर उनका स्वागत किया।

इरा को शंख के साथ देखकर मनोज सान्याल का रंग फीका पड़ गया।

बारह

नीलू नृत्य-कला के विकास की उस सीमा तक पहुँच जाने को उत्सुक थी, जहाँ परम रस की अनुभूति हो सके। उसकी साधना चल रही थी। जीवन का सारा सुख-दुःख नृत्य में उँडेल दे, नृत्य में ही तिल-तिल करके घुल जाय, यही उसकी साध थी। विधिपूर्वक अर्जित कला का बम्बई के मीना-बाज़ार में कोई मोल न हो सकता था। वहाँ तो विचित्र अराजकता का युग चल रहा था। उसे तो नृत्य का भोंडा उपहास ही कहा जा सकता था। चटक रंग, विलासमयी भाषा और अविवेकपूर्ण मुद्राएँ—यही तो फ़िल्मी नाच-गाने की गाड़ी को आगे ले जा रही हैं। आगे या पीछे—यहीं नीलू हतप्रभ-सी सोचती रह जाती। फ़िल्मों में प्रत्येक नाच में रसिकप्रिया ही चाहिए, यह क्यों? वहाँ तो अपरिपक्व कला की ही पूछ है। कला का शुद्ध व्यापक रूप वहाँ नहीं चलता। खोटा सिक्का चलता है, असली नहीं। मीना-बाज़ार वाले ठग-विद्या के धनी हैं। निरुद्देश्य उछल-कूद को नाच कहकर आगे ठेल देते हैं। मीना-बाज़ार में रहने वाले मेरी दूकान को वहाँ नहीं ले जा सकते। यह सब सोचते-सोचते उसे गोबिन्दन का ध्यान आया, जिसे आज चाय पर बुलाया था।

उसके हाथ में नीग्रो कविता पर लिखी गई छोटी-सी पुस्तक थी। विद्वान् लेखक ने यह सिद्ध कर दिखाया था कि स्वतन्त्रता के प्रति नीग्रो-कविता में जो छटपटाहट मिलती है, उसका अन्यत्र कहीं जवाब नहीं।

नीग्रो-जनता ने गुलामी के दिनों में कविता को मुक्ति-संघर्ष का हथियार बनाया। उसने एक पन्ने पर छपी चार पंक्तियों के नीचे लाल पैंसिल से निशान लगाया—

दास बनने की अपेक्षा
मैं कब्रों में गड़ जाना चाहूँगा।
मैं भगवान् के घर जाकर भी
स्वतन्त्रता की माँग करूँगा।

फिर उसने नीग्रो कवि पाल लारेन्स डनवर (१८७२-१९०६) के सम्बन्ध में दी गई कुछ पंक्तियाँ पढ़ीं, जिनमें बताया गया था कि वह एक लिफ्ट-चालक था और लिफ्ट के ऊपर-नीचे आने-जाने की अवस्था में ही उसने अधिकांश कविताओं की रचना की थी। पाल लारेन्स डनवर की एक कविता की चार पंक्तियों पर उसने नीली पैंसिल से रेखाएँ खींचीं—

हम मुस्कराते हैं, प्रभु ईश!
किन्तु हमारी व्यथित आत्माओं की पुकार
शायद तुम तक नहीं पहुँचती,
हाँ, संसार कुछ और ही समझता है।

पुस्तक की भूमिका में बताया गया था नीग्रो-कवि क्लाउट भीके की कविता 'अगर मरना ही है तो' नीग्रो जाति के स्वतन्त्रता-संघर्ष का युद्ध-गान बन गई थी। उस कविता की इन पंक्तियों को नीलू ने फिर लाल पैंसिल से रेखांकित किया—

हमें अगर मरना ही है तो
सूअरों की मौत नहीं मरना चाहिए
जिन्हें गन्दे घरों में बन्दी बनाकर मारा जाता है।
अगर हमें मरना ही है तो
आओ साथियो, हम शानदार मौत मरें।

नीग्रो-कविता के सम्पादक ने विस्तार से बताया था कि कैसे नीग्रो-

जाति को धीरे-धीरे राजनीतिक और सामाजिक सुविधाएँ प्राप्त होती गईं, और आज के नीग्रो-कवि का स्वर भविष्य को आशामयी आँखों से निहार रहा है—

> **अब हमारे सामने आने वाला कल है**
> **जो दीपक के प्रकाश जैसा उज्ज्वल होगा ।**
> **बीता हुआ कल तो वह रात है**
> **जो बीत चुकी है ।**

नीलू ने ये पंक्तियाँ बार-बार पढ़ीं। फिर उसने अपने बुक-शेल्फ से 'भारतीय कविता' का एक संकलन निकाला, और बंगला कवि प्रेमेन्द्र मित्र की एक कविता का अनुवाद पढ़ने लगी, जिसकी कुछ पंक्तियों को उसने लाल-नीली पैंसिल से जहाँ-तहाँ अलग-अलग रंगों से रेखांकित किया था—

> **मैं उन सब लोगों का कवि हूँ**
> **जो जुटे हुए हैं धन्धों में**
> **मैंने विलास को नहीं बुना**
> **अपने शब्दों में, छन्दों में**
> **मैं उनका कवि हूँ, जो—**
> **लोहे, लकड़ी, मिट्टी में गड़ते हैं**
> **मैं उनका कवि हूँ**
> **तरह-तरह की चीजों को जो गढ़ते हैं**
> **मैं मेहनत और पसीने के स्वर गाता हूँ**
> **मैं अपने शब्दों को विलास की**
> **मृत्यु नहीं दे पाता हूँ**
> **धरती व्याकुल है**
> **हल की ठोकर खाने को**
> **सागर की लहरें व्याकुल हैं**
> **हाल को समाने को**

पृथ्वी के भीतर लोहा सोच रहा है जो
कोई बलशाली खोद-खादकर
मुझे निकाल नहीं लेता क्यों ?
नदियों की इच्छा है
कि कोई उनकी छाती पर पुल बाँधे
फिर कैसे मुमकिन है कि कलम
मेरी केवल शोभा साधे ?
मैं उन सब लोगों का कवि हूँ
जो जुटे हुए हैं धन्धों में
मैंने विलास को नहीं बुना
अपने शब्दों में, छन्दों में ।

नीलू ने घड़ी देखी, गोबिन्दन अभी तक नहीं आया। शायद भूल गया हो। उसे यह सोचकर हँसी आ गई कि बम्बई के मीना-बाजार में खोटा सिक्का ही चलता है। गुरुदेव रुद्रपदम् का शिष्य है शंख, जिसने गुरुदेव के चरणों में बैठकर संगीत-साधना की। गोबिन्दन तो घर से भाग आया था। वह तो संगीत में कच्चा है। पर मीना-बाज़ार में वह भी म्यूजिक डाइरेक्टर की दूकान खोले बैठा है, जैसे उसमें और शंख में कोई अन्तर ही न हो।

त्रिवेणी कला संगम के चौपाटी के समीप स्थित नये भवन में ही नीलू एक कमरे में रहती थी। छुट्टी का दिन था। उसने खिड़की से सागर का दृश्य देखा। उसे लगा, यहाँ तो सागर पालतू-सा प्रतीत होता है। सागर का असली दृश्य तो जूहू में है। जूहू में सागर के साथ-साथ अमीरों के बँगले चले गए हैं। वहाँ बम्बई के नये ब्याहे जोड़े सैर करने आते हैं। खुले सागर-तट पर दूर तक घूमते रहो। आपने थोड़ा ध्यान न रखा, तो सागर की लहरें आपके कदमों को भिगो जायँगी। सागर की लहरें अपने नाच से कभी छुट्टी नहीं लेतीं।

खिड़की में खड़े-खड़े उसने पीछे मुड़कर दर्पण में अपना मुखड़ा

देखा। आज वह गुड़िया-सी सजी खड़ी थी। गोबिन्दन अपना ही आदमी सही, अपने वरकला का पुराना मित्र सही, फिर भी उसके स्वागत में नये वस्त्र कैसे न पहनती, जूड़े में फूल कैसे न लगाती? उसे ध्यान आया कि आज तो बरसोवा चला जाय। गोबिन्दन आ जाय सही, छूटते ही यह प्रस्ताव रखूँगी कि उसे मेरे साथ बरसोवा जाना ही होगा।

नीचे से दरवान ने आकर बताया, "गोबिन्दन बाबू कह गए हैं, हमें देर हुई। नीलू वेन से माँफी माँगना।"

"और कुछ नहीं कहा? अकेले थे या साथ में कोई और भी था?"

"अकेला नहीं था। तीन आदमी साथ था। बोला, हम नीलू वेन के पास आध घण्टे बाद आयेगा।"

नीलू 'अच्छा' कहकर चुप हो गई। दरबान नीचे चला गया।

आज उसे केरल की याद सताने लगी। अप्रैल का महीना केरल में 'चिगम' कहलाता है। आज के दिन केरल में नववर्षोत्सव के रूप में 'विशू' उत्सव मनाया जाता है। कितनी श्रद्धा और आस्था चली आई है इसके पीछे! नारियल के झुरमुट भी खुशी से नाच उठते हैं। मन्दिरों में हाथियों की सज-धज; सुनहले वस्त्रों से किया गया उनका शृङ्गार। गाजा-बाजा मन-प्राण को पुलकित कर जाता है। आज से कोई सवा ग्यारह सौ वर्ष पूर्व त्रावणकोर के एक राजा ने 'मलयालम्' वर्ष चालू किया था।

उसकी आँखों में केरल का चित्र उभरता चला गया। वरकला की सड़कें साफ-सुथरी हो गई होंगी 'विशू' की खुशी में। घर-आँगन गोबर से पुत गए। इमली से साफ कर लिये गए पीतल के बर्तन। बच्चों ने सागर-तट से सीप चुन-चुनकर कई दिन से पटाखे बनाने शुरू कर दिए थे। घर के बड़े-बूढ़ों ने कितना मना किया, फिर भी कई दिन से नवयुवकों पर यह भूत सवार रहा कि घर के कोनों को फुलझड़ियों और मशालों से सजाया जाय। पिछले वर्ष तो मैं भी वरकला में थी, विशू के दिन। किसान खेती-बाड़ी से छुट्टी पाकर मेले की धूमधाम देखते हैं।

सूर्यास्त होते ही नवयुवक अन्धेरे की बाट जोहने लगते हैं। मीलों तक पटाखों की आवाजें सुनाई देने लगती हैं। घर-घर स्त्री-पुरुष नारियल के पत्तों की जलती मशालें थाम लेते हैं। प्रतिक्षण 'कवि' का नाम ले-लेकर मशालों को ऊपर-नीचे घुमाते हैं। इस याद से नीलू पुलकित हो उठी। पिछले वर्ष तो वह भी गली के युवकों के साथ-साथ मशाल उठाए उन वृक्षों के पास गई थी, जो पुराने होने पर भी फल प्रदान करने में असमर्थ रहे। नीलू ने पुलकित होकर सोचा—मैंने भी तो उन वृक्षों को मशाल दिखाई थी। वे गाछ लज्जित हो गए होंगे और अब के उनमें भी फल लगे होंगे। पूरे तीन घण्टे तक मैं युवकों के साथ मशाल लिये घूमती रही थी।

उसे माता-पिता का स्मरण हो आया। पिछले वर्ष की तरह ही माँ ने घर के भीतर अपनी पड़ोसिनों की देखा-देखी छोटा-सा मन्दिर बनाया होगा। गोबर से पोतकर पवित्र किया होगा। इस मन्दिर में पीतल के कई दीपक रखे जायँगे। उन दीपकों में विषम संख्या की बत्तियाँ रखेगी मां; विधि के अनुसार सब सामग्री रखी रहेगी—अरवा चावल, नारियल, सोने के गहने, चाँदी के सिक्के, रामायण या महाभारत। पार्श्व में होगा सुब्रह्मण्य या विष्णु का चित्र। कटे हुए खीरे के दो टुकड़े भी रखेगी माँ! कटहल, आम और केले चहुँ-ओर कलात्मक ढंग से सजा दिए जायँगे। सुनहले-पीले फूल भी तो सजाकर रखे जायँगे। अच्छी तरह धुला हुआ सुन्दर किनारी का सफेद वस्त्र तह लगाकर फैलाया जायगा।

फिर उसे गोबिन्दन पर क्रोध आने लगा—अभी तक नहीं आया। अब चाय क्या पीयेगा? अब आया भी, तो खाना खाएगा।

वह अकेली ही बैठकर चाय पीने लगी। उसे याद आया, आज तो ब्रह्म-मूहूर्त में तीन बजे प्रातःकाल से ही वरकला के सभी ढोल बजने लगे होंगे। शंखनाद और झाल की ध्वनियों के बीचों-बीच मन्त्रों का उच्चारण होने लगा होगा। उसका जी हुआ, आज तो उसे भी वर-

कला में ही होना चाहिए था। आज रात प्रज्ज्वलित मशालें वरकला के रास्तों पर पंक्तिबद्ध हो जायेंगी; भक्तगण अपने-अपने घर के मन्दिर को उठाकर जुलूस निकालेंगे, घर-घर घूमेंगे।

उसे यह बात भी स्मरण हो आई कि 'विशू-कैनीतम' के समय गृह-स्वामी का होना परमावश्यक है। एक दिन पहले ही रुपये छोटे सिक्कों में भुना लिये जाते हैं, जिससे उपहार बाँटने में सुविधा रहे। उपहार बाँटने का काम मामा चालू करता है, जो घर के प्रत्येक सदस्य का नाम लेकर पुकारता है, और हर किसी को एक-एक सिक्का देता जाता है। वैसे उपहार चवन्नी का भी हो सकता है और पाँच रुपये का भी। फिर यह बात याद आने पर कि गर्भ के साढ़े चार मास से ऊपर के बच्चे को भी उपहार का भागी समझा जाता है, वह मन-ही-मन मुस्कराई। गोबिन्दन उसे छेड़ता रहता था—"नीलू, तुम तो एक से दो ही नहीं होगी, और दो से तीन तो फिर भला कैसे होगी!"

चाय पीते-पीते नीलू का ध्यान वरकला पर घूम गया। 'विशू' का आविर्भाव तो पहले-पहल ग्रामीण ज्योतिषी 'कनैय्यन' के यहाँ ही होता है। वरकला तो गाँव नहीं, नगर से होड़ लेता है। गाँव की तरह वहाँ तो एक ज्योतिषी से काम नहीं चलता। वरकला के ज्योतिषी अपने-अपने इलाके के घरों के लिए रात में देर तक बैठकर भविष्यवाणियाँ तैयार करते हैं, जिनमें आगामी वर्ष का लेखा-जोखा दरशाया जाता है। अना-वृष्टि, महामारी अथवा ग्राम-देवता के कोप सरीखे सम्भावी कष्टों के निवारणार्थ यथेष्ट उपहार की आशा भी तो लगी ही रहती है, और इस तरह वरकला के ज्योतिषियों के लिए 'विशू' लाभ का सौदा बनकर आता है।

नीलू की कल्पना में वरकला के किसान घूम गए जो 'विशू' दिवस पर हल से खेत जोतने का श्रीगणेश करना शुभ मानते आए थे। "विशू के दिन बीज बोने पर अच्छी फ़सल की आशा की जा सकती है!" मानो वरकला बोल रहा हो। और फिर वह यह सोचकर मानो किसी नशे में

झूम उठी कि आज रात वरकला के किसान ताड़ीखाने से गाते-झूमते अपने घरों को लौटेंगे।

गोबिन्दन अभी तक नहीं आया था। नीलू तनकर बैठ गई। आगे को कभी गोबिन्दन् को नहीं बुलाऊँगी, चाहे वह सोने का आदमी ही क्यों न बन जाय।

'नीग्रो कविता' खुली पड़ी थी। उसकी दृष्टि इन पंक्तियों पर पड़ी—

अब हमारे सामने आने वाला कल है
जो दीपक के प्रकाश जैसा उज्ज्वल होगा।
बीता हुआ कल तो वह रात है
जो बीत चुकी है।

फिर वह बंगला कवि के इस विचार पर ग़ौर करने लगी—

पृथ्वी के भीतर लोहा सोच रहा है, जो
कोई बलशाली खोद-खादकर
मुझे निकाल नहीं लेता क्यों ?

इतने में गोबिन्दन झूमता-झामता आ पहुँचा, और पहले से माफी माँगकर उसने नीलू का मुँह बन्द कर दिया।

"त्रिवेणी कला संगम का अंचल छोड़ो, नीलू !" वह गम्भीर होकर बोला, "ये बनिये तुम्हारी कला का मोल नहीं दे सकते।"

"तो त्रिवेणी को छोड़कर कहाँ जाऊँ ?"

"मीना-बाज़ार में, और कहाँ ?"

संगीत, नृत्य और नाटक—ये तीनों विषय 'त्रिवेणी' के आधार-स्तम्भ थे। 'त्रिवेणी' की नृत्य-संचालिका के रूप में नीलू ने देश-विदेश में काफी ख्याति पाई थी। वह यूरोप के कई देशों में अपनी संस्था के विद्यार्थियों की कला का प्रदर्शन करने गई थी। देश के बड़े-बड़े नगरों में, सभी प्रान्तों में, उसने 'त्रिवेणी' की पताका फहराई थी। फिर भी गोबिन्दन का यह साहस कि वह 'त्रिवेणी' की 'वर्किङ्ग कमेटी' को 'बनिए' कहकर उसे चिढ़ाये। यह बात नीलू को बहुत अखरी।

उसने छूटते ही भाषण आरम्भ कर दिया :

"तुम्हारा यह विचार एकदम गलत है गोबिन्दन, कि बम्बई केवल मीना-बाज़ार है। एक बम्बई के अन्दर कई बम्बइयाँ हैं। उनमें एक छोटी-सी बम्बई तुम्हारी फ़िल्मी दुनिया भी है, जिसे मीना-बाज़ार कहते हैं। बम्बई की चेतना एक आरकेस्ट्रा है। इसमें उत्तर का भी हिस्सा है, दक्षिण का भी; पूर्व का भी, और पश्चिम का भी। गुजरात की देन अधिक है या महाराष्ट्र की, यह झगड़ा हमारे लिए नहीं। इतना तो हम मानते हैं, पारसी भी बोलता है बम्बई की भाषा में। एक बम्बई लाल बाग और परेल है, जहाँ मजदूर रहते हैं। किसी भी फिल्म स्टूडियो को सिर्फ गुजराती या मारवाड़ी सेठों का सट्टे में कमाया हुआ रुपया ही नहीं चलाता। उसे चलाते हैं टैकनीशियन, जो मजदूर हैं। मैं भी गई हूँ वहाँ, मैंने अपनी आँखों से देखा है। एक बम्बई बरसोवा है, जहाँ तुम इसलिए नहीं जाते कि वहाँ सूखती मछलियों की बदबू आती है।"

"हाँ-हाँ, नीलू !" गोबिन्दन ने खिसियाना-सा होकर कहा, "मैंने कब कहा था कि तुम मीना-बाज़ार को बिलकुल ही नहीं जानतीं ?"

"फिर तुम कहना क्या चाहते हो ?"

गोबिन्दन ने हँसकर कहा, "तुम कब तक शुद्ध और पवित्र कला के चक्कर में फँसी रहोगी, नीलू ? कभी तुमने यह भी सोचा कि आदमी को एक जीवन-साथी भी चाहिए।"

"तुम्हारा मतलब क्या है ?"

"यही कि सेवा के लिए श्री एकसौ आठ गोबिन्दन अवतार हाज़िर है !"

नीलू एकदम चिढ़ गई। वह कुछ नहीं बोली।

गोबिन्दन ने स्थिति समझकर कहा, "मुझे माफ़ कर दो, नीलू ! तुम समझी नहीं ! मैंने तो यह कहा था कि तुम्हारे साथ 'लंच' करने के लिए आज मेरी सेवाएँ हाजिर हैं।"

तेरह

गोबिन्दन को भैरव में गाये जाने वाले ये शब्द बहुत प्रिय थे, और वह यह पंक्ति दोहराता पुलकित-सा हो-हो उठता—'दीपक की ज्योति घटी अँखियन को अंजना !'

शंख अभी सो रहा था, जब गोबिन्दन ने समीप आकर भैरव का ठाठ जगाया और आलाप लेकर वह राग के बोल पर आ गया :

जागिए गोपाल लाल भोर भई अँगना ।
बाट को बटोही चलत पंछी चुगत चुगना,
दीपक की ज्योति घटी अँखियन को अँजना,
जागिए गोपाल लाल भोर भई अँगना ।

अभी वह 'जा' के साथ सम पर आया ही था कि शंख ने आँखें खोल दीं ।

"गाओ गोबिन्दन, खूब गाओ !" वह मुस्कराया, "मैं तो सोच रहा था, तुम्हें पक्के गाने से चिढ़-सी हो गई हो । तुमने तो भैरव की आत्मा जगा दी आज !"

"प्रशंसा के पुल न बाँधो !" गोबिन्दन हँस पड़ा, "जानते हो कल श्री एकसौ आठ गोबिन्दन अवतार ने किसके साथ लंच किया था ?"

"पहेलियाँ तो न बुझवाओ ।"

"अच्छा, मैं ही बता देता हूँ । नीलू ने मेरी वह सेवा की कि 'विशू' उत्सव का मज़ा आ गया ।"

"अच्छा तो कल 'विशू' था ? बम्बई क्या आये, यह भी याद नहीं रहता कि 'विशू' कब आता है और चला जाता है।"

"अभी तो और भी खो जाओगे बम्बई में। बस तुम्हें इरा मिल जाय, बस। और हमने भी अपनी इरा ढूँढ़ ली जिसके साथ हमने लंच किया।"

"नीलू ? ये ठाठ हैं आजकल ?" शंख उछलकर उठ बैठा, "पर अगर मैं नीलू का मन पढ़ पाया हूँ तो याद रखना, वह कभी तुम्हारे फन्दे में नहीं आयेगी। मैं उसकी इज्जत करता हूँ।"

"पर श्री एकसौ आठ गोबिन्दन अवतार तो नीलू की इज्जत नहीं करते। वह तो उससे प्यार करते हैं, प्यार!" गोबिन्दन हँस पड़ा, "और देख लेना, शायद तुम्हारी और इरा की जोड़ी बनने से पहले ही मेरी और नीलू की जोड़ी बन जाय। उम्र का अन्तर कम है या अधिक, यह देखना मेरा काम नहीं।"

"तुम्हारा काम क्या है ?"

"वही जो तुम्हारा काम है। बस इतना अन्तर है जरूर, तुमने अपना काम पहले शुरू किया, मैंने बहुत पीछे। या यह कहो कि तुमने यह रहस्य पहले समझ लिया, और मुझे इसमें देर लगी।"

"कुछ कहोगे भी ?"

"कह तो रहा हूँ। स्त्री चाहती है कि पुरुष दबाकर उसकी प्रशंसा के पुल बाँधे। क्यों, मैं कुछ झूठ कहता हूँ ?"

"बात तो सच्ची है। पर नीलू को समझने में तुम बिलकुल भूल कर रहे हो।"

"मैं तुम्हें अपना जादू दिखा दूँगा। कल मैंने नीलू की बहुत प्रशंसा की। उसने भी मुझ पर रौब डालने के लिए नीग्रो-कविता सुनाई, फिर बंगला कविता का अनुवाद पढ़कर सुनाया। दोनों ही बकवास थीं। पर मैंने जी खोलकर नीलू के 'टेस्ट' की प्रशंसा की। मुँह और आँखों से उसे बधाई दी। उसने मुझे पपीता खिलाया। संतरे और चीकू बर्फ

में लगे हुए। मज़ा आ गया। वह एक कहानी पढ़कर मुझे सुनाने लगी। तमिल की कहानी है। नाम है 'संध्या की वेला'। लेखक हैं रंगनाथन।"

"तो तुमने उस कहानी की भी प्रशंसा की ?"

"कैसे न करता ? खैर कहानी बुरी नहीं थी।"

गोबिन्दन ने वह पत्रिका खोलकर दिखाई, जिसमें 'सन्ध्या की वेला' का अनुवाद छपा था। कुछ पंक्तियाँ नीली पैंसिल से रेखांकित थीं, जिन्हें शंख ऊँची आवाज़ से पढ़ने लगा :

"···हर साल उस देहाती नाटक में नकली दाढ़ी-मूँछ आदि लगा, हाथ में छड़ी ले और कुबड़े की चाल-ढाल दिखाकर ब्राह्मण नक्षत्रक का 'पार्ट' लेने का हक सिर्फ बड़े घर के मुत्तु कुरुप्पन को ही था। यह चिन्नप्पन मानो चन्द्रमती के भेष के लिए ही जन्मा हो। प्रतिवर्ष शैव्या का पात्र वही लिया करता था, और रो-धोकर तमाशाइयों के दिल द्रवित करने में तो वह बेजोड़ ही था। आसपास आठों मीलों तक उसका शोकालाप अपनी धाक जमा चुका था···स्त्री-वेश उस पर ऐसा फबता कि बस; लोच-लचक लहर उठती। चेहरा भी ऐसा खूबसूरत कि लोग एक अत्यन्त सुन्दर युवती ही समझ लेते···।"

यहाँ नीलू का प्रसंग बदल गया और दोनों मित्र आरम्भ से ही वह कहानी पढ़ने लगे।

दक्षिण भारत की यह सहज-सुन्दर झाँकी उन्हें पुलकित कर गई। ये नाटक-अभिनय देश की विरासत थे, और उनका बचपन इसी कला के प्रांगण में बीता था।

"और क्या-क्या बातें हुईं नीलू से ?" शंख मुस्कराया।

"कल हम बहुत घूमे। पहले मुक्तिबोध के यहाँ पहुँचे। यहाँ शाम की चाय पी। वहीं शेखर आर्टिस्ट अपनी पत्नी रूबी के साथ बैठा गप हाँकता रहा। मुक्तिबोध को अपने कबूतरों की प्रशंसा से फुरसत नहीं थी।"

"और कहाँ गये ?"

"नीलू तो बरसोवा जाने की ज़िद कर रही थी।"

"सूखती मछलियों की बदबू सूँघने। और क्या रखा है बरसोवा में ?"

"वह कह रही थी, एक बम्बई में कई बम्बइयाँ हैं, और उनमें एक छोटी-सी बम्बई है हमारी फ़िल्मी दुनिया, यानी बम्बई का मीना-बाज़ार। वह मुझे बरसोवा ले जाकर दिखाना चाहती थी कि एक बम्बई वह भी है।"

"वह तो तुम बरसोवा जाये बिना ही मान सकते थे। क्या तुमने इससे पहले बरसोवा देखा ही नहीं ?"

"देखा क्यों नहीं बरसोवा ? और इसीलिए मैं साफ इन्कार कर गया। मैं समझ गया, नीलू को वरकला का सागर याद आ रहा है, और मैं उसे जुहू ले गया।"

"बहुत मज़ा आया होगा।"

"मैंने उसकी प्रशंसा का वह स्वाँग भरा कि लगता था, उसे भी विश्वास होने लगा हो। तुम्हें याद होगा, 'त्रिवेणी' की ओर से पिछले दिनों नृत्य-नाटिका 'मछुआ और जल-परी' पेश की गई थी। हम तो उसे देखने नहीं जा सके थे। वह कहती रही—मछुआ शान्ति और सन्तोष का प्रतीक है और जल-परी ठहरी ऐश्वर्य और वैभव की देवी। जल-परी ने मछुए की अन्तरात्मा छीन ली। फिर क्या था, बेचारा वैभव और विलास के चक्कर में पड़ गया। शान्ति गई, सन्तोष गया, प्रेम गया। और उनकी जगह आई पल-पल की व्याकुलता, क्षण-क्षण की अतृप्ति और हमेशा का अहंकार। इस नृत्य-नाटिका की कहानी की मुरकी यह है कि मछुआ अपने पहले जीवन को पाने के लिए व्याकुल हो उठता है। यही संघर्ष इस नाटिका की जान है। मैं आराम से सुनता रहा। जल-परी तो तुम्हीं बनी होगी ?—मैंने पूछ लिया और उसे मुस्कराते देखकर मैंने कह डाला—काश ! मछुआ मैं बना होता !"

"तब तो वह प्रसन्न हो गई होगी ?"

"क्यों नहीं ? सुना नहीं, चापलूसी से मित्रता और सचाई से शत्रुता उपजती है। कल रात मुझे पता चला कि चापलूसी नारी का आहार है।"

"आज तो तुम बहुत दार्शनिक हुए जा रहे हो। यह मत भूल जाओ गोविन्दन, कि किसी ने ठीक ही कहा है—'प्रेम नाराज़गी के समान छोटी बातों को बड़ी बनाता है। पर एक का यह बड़ा बनाना गगन के तारों को दूरबीन से देखने के समान है, तो दूसरे का राक्षसों को खुर्द-बीन से बड़ा बनाने के समान !' समझे ?"

"मेरे हाथ में तो दूरबीन थी, खुर्दबीन नहीं। नीलू का रूप मैं दूरबीन से ही देख सका। यह दूरबीन है चापलूसी, जिससे नारी तुम्हारी तरफ सरकने लगती है।" कहते-कहते गोविन्दन हँस पड़ा, "पहले मैं भी एकसौ आठ गोविन्दन अवतार था, अब नीलू का प्रेमी। समझे ?"

"और क्या कह रही थी ?"

"कह रही थी—गोविन्दन, तुम मीना-बाज़ार वाला नकली चेहरा लगाकर मेरे पास मत आया करो। तुम तो उसके बिना ही अच्छे लगते हो। मैंने कहा—ऐसा ही सही, नीलू ! मेरी खुशी तो तुम्हारी खुशी में है।"

"फिर क्या बोली ?"

"मुस्कराती रही।"

"और फिर तुम भी कुछ न बोले ?"

"तुम जानते हो, शंख ! तुमने प्रेम किया है। जब सागर हँस रहा हो, जब प्रेमी सागर-तट पर घूम रहे हों, जब जीने में विश्वास जग रहा हो, जब आँखों की भाषा काम करने लगे, जब एक वसन्त से दूसरे वसन्त तक जीने की शपथ ले लें दो मन, तो फिर कुछ कहने को नहीं रह जाता। सागर हँस रहा था, जैसे कह रहा हो—मैं तुम्हारा साक्षी हूँ, मित्र ! खुलकर प्यार करो और वचन दो कि तुम एक-दूसरे को धोखा नहीं दोगे।"

"मेरे जीवन में भी आए हैं ऐसे क्षण, गोविन्दन ! हमारी आकांक्षा को स्वर कौन देता है ?—प्रेम। हमारी चेतना में सहानुभूति का रंग कौन भरता है ?—प्रेम।"

"लहरों का संगीत सुनते, बाँह में बाँह डाले, हम जुहू सागर-तट पर घूमते रहे—इधर से उधर, उधर से इधर।"

"फिर क्या हुआ ?"

"नीलू वह गीत गाने लगी—बंगाल का वही बाउल गान।"

शंख बोला, "वही न—तोमार पथ ढाकाइया छे ! मैंने भी सीख रखा है उससे वह बाउल गान। वह तो मुझे भी बहुत अच्छा लगता है। जैसा कि नीलू ने बताया, एकतारे के स्वर पर बंगाल का बाउल चरमावस्था में वादक, गायक और नर्त्तक बनकर स्वयं 'अनहद' का प्रतीक बन जाता है। मदन बाउल-रचित यह गान तो सुना है, रवीन्द्र-नाथ ठाकुर भी मस्त होकर गाया करते थे।"

"काश, तुम भी हमारे साथ होते, शंख !"

"यह मत कहो। मैं वहाँ क्या करता ? दो प्रेमियों के बीच न मन्दिर बनना अच्छा है न मस्जिद।" कहते-कहते शंख गम्भीर मुद्रा बनाकर बैठ गया और गाने लगा :

तोमार पथ ढाकाइया छे
मन्दिरे मस्जिदे।
तोमार डाक सुनि साँई
चलते न पाई
रुकाइया दाँड़ाये
गुरु ते मुरशिदे।
डुबाइया याते अंग जुड़ाय
बल तो गुरु कोथाय दाँड़ाय
तोमार अभेद साधन मरलो भेदे।
तोमार डुबाएइ नानान ताला

पुरान कोरान तसबी माला
भेख पंखइ ने प्रधान ज्वाला
कांदेई 'मदन' मरे खेदे ।
[तुम्हारा पथ ढक दिया है
मन्दिरों ने, मस्जिदों ने ।
तुम्हारी पुकार सुनकर, साईं !
मैं चल नहीं पाता ।
रोककर खड़े हो जाते हैं
गुरु और मुरशिद ।
जिसमें डूबकर अंग जुड़ जाना चाहिए
उसीसे यदि जगत जलने लगे
बोल, गुरु ! फिर हम कहाँ खड़े हों
तुम्हारी अभेद साधना भेद-भाव से मारी गई ।
तुम्हारे द्वार पर है अनेक ताला
पुराण, कुरान, तसबी, माला
भेष और सम्प्रदाय ही तो है प्रधान ज्वाला
खेद से रो-रो मरता है 'मदन' ।]

गोबिन्दन बोला, "तुम्हें विश्वास नहीं होगा, शंख ! नीलू की बड़ी-बड़ी आँखें डबडबा आईं । उसने यह गीत एक से अधिक बार गाया । बाउल के लिए जैसे प्रेम ही जीवन है, प्रेम ही संसार, और प्रेम ही भगवान् । प्रेम में स्वयं को खो देना ही बाउल की साधना है । उसने एक और गीत भी गाया था ।" और वह अपनी डायरी खोलकर गाने लगा :

तुमिई सागर आमिई तरी
तुमि खेओयार माझि ।
कूल ना दिया डूबाओ यदि
तातेई आमि राजि ।

[ओगो] तोमा हइते कूल कि
बड़ भरम कि आमार।
[तुम सागर हो तो मैं हूँ नैया
तुम्हीं हो उसे खेने वाले माँझी।
किनारे न लगाकर तुम मुझे डुबाना चाहो
तो भी मैं राजी हूँ।
तुममें खो जाने की अपेक्षा किनारा अच्छा है क्या ?
क्या यह मेरा बड़ा भ्रम है ?]

शंख की आँखें डबडबा आईं। बोला, "हम इस भावना से बहुत दूर निकल आए हैं। देखा जाय तो यही सच्चा प्रेम है। पर हम तो इरा और नीलू के पीछे भटक रहे हैं। जिस मीना-बाजार में हम रहते हैं, वहाँ बाउल गान की 'अनहद' पुकार हम पर असर नहीं करती। मीना-बाजार तो हमारे मन में दूसरी ही तरह की मस्तियाँ बो-बो जाता है, गोबिन्दन ! कभी-कभी मैं सोचता हूँ, हमें कहाँ ठिकाना मिलेगा ?"

"तो संन्यासी हो जायँ। इरा से विवाह का विचार छोड़ो। मैं भी नीलू का ध्यान बिसार देता हूँ। पर यह कैसे हो सकता है ? मैं तो कर्मयोगी बनना चाहता हूँ। तुम्हें इरा मिले न मिले, मुझे तो समझो, नीलू मिल गई। थोड़ी कसर बाकी है, वह भी पूरी हो जायगी। जुहू में वही सागर है जो वरकला में है। देख लेना, एक दिन यही सागर हमारे प्रेम का साक्षी होगा।"

शंख बोला, "बातें, बातें, बातें ! ये बातें क्या कभी खत्म भी होंगी ? चलो, चलकर कहीं मजेदार कॉफ़ी पी जाय !" वह उठकर मुँह-हाथ धोने चला गया।

चौदह

इरा को याद आ रही थी शंख की बात, जो उसने जाने किस महापुरुष का हवाला देकर कही थी—"लक्ष्मी का आना नाचघर में भीड़ इकट्ठी होने जैसा है, उसका जाना भी भीड़ के बिखर जाने जैसा ही समझो। अकल हो तो आदमी निर्धन होने पर भी धनी रहेगा, और अगर अकल नहीं तो धन-दौलत के रहते भी वह एकदम कंगला है!" उसे लगा, शंख को पाकर वह निहाल हो जायगी!

वह माँ-बेटे की मूर्ति के सामने खड़ी कंघी करती जा रही थी। दर्पण में उसकी रूप-माधुरी स्वयं उसे भी आज कितनी प्रिय लग रही थी। बनाव-सिंगार तो जरूरी है, यह सोचकर वह मुस्कराई। इसी में नारी की जीत है। दर्पण झूठ नहीं बोलता। एक आँख दबाकर मैं ज़रा मुस्कराऊँ, बस इसी पर शंख मस्त हो उठता है। ठोड़ी उठाकर कनखियों से उसकी ओर देखूँ, और फिर थोड़ी लजाकर आँखें झुका लूँ, फिर तो गज़ब हो जाता है। मैं इरा हूँ जनाब! कोई ऐसी-वैसी औरत नहीं! यह तुम्हारी खुशकिस्मती है, मिस्टर शंख, कि मैंने तुम्हें दिल दे डाला। ज़रा ठीक हो जाय सारी बात। फिर देखना, किस तरह फ़िल्मी अखबार और मैगज़ीन हमारी खबरें उछालते हैं। डरकर भाग जाना हो, तो पहले कह दो! तुम्हें कोई तकलीफ़ नहीं होगी। मैं तुम्हारी कनीज़ बनकर रहूँ, यह तो शायद मुमकिन न हो। डाइरेक्टरों और प्रोड्यूसरों को खुश रखना तो ज़रूरी होगा; मेरी मुस्कानें शादी के बाद भी उनकी तरफ

लपकेंगी, पहले की तरह ही ! फिर न बुरा मानना, जनाब ! मीना-बाज़ार में ऐसा ही होता रहेगा ।

एक उचटती-सी नज़र से माँ-बेटे की मूर्ति देखकर वह फिर कंघी करने लगी । उसकी स्मृति की खिड़कियाँ खुलती गईं । पास वाली अलमारी में उसके चाहने वालों के असंख्य पत्र पड़े थे, फाइलों में सँभालकर रखे हुए । उसके अभिनय की प्रशंसा में दुनिया के हर कोने से पत्र आते रहते हैं । उसने सोचा, विवाह के बाद भी इन पत्रों की कड़ी तो बन्द नहीं होगी । फ़िल्म के परदे पर मैं वैसे ही मुस्कराया करूँगी । वैसे ही लोग मुझे पसन्द करेंगे । वैसे ही कहेंगे—क्या रूप पाया है ! क्या नख़रा है ! ये नाज़, ये अदाएँ, ये सब इरा पर ख़त्म हैं ! कम्बख़्त शोख इरा ! जादूगरनी ! अँगड़ाई लेना तो कोई इरा से सीखे !……उसने कंघी करते-करते मन-ही-मन अपने इन प्रशंसकों को सम्बोधित किया—शादी करने पर भी मेरा अभिनय मरेगा नहीं । मेरा रूप तो और भी निखर जायगा । अभिनय जादू है तो शादी के बाद भी यह उसी तरह सिर चढ़कर बोलता रहेगा । ओ मेरे प्रशंसको, मेरा अभिनय तुम्हारी पूजा में पग घुँघरू बाँध नाचेगा, जैसे मीरा नाची थी अपने गिरिधर के सामने ! पर मेरे प्रशंसको, मुझे माफ़ कर देना । मैं शंख से विवाह करने जा रही हूँ, ताकि हमारा प्रेम एक गप बनकर ही न रहे । किसी ने कहा है न—'अपनी भूलों को ही लोग अनुभव का नाम दे लिया करते हैं !' पर मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ, मेरे प्रशंसको ! मैं कोई भूल करने नहीं जा रही हूँ । विवाह को मैं भूल नहीं कहूँगी, जीवन-भर !……और उसकी दृष्टि माँ-बेटे की मूर्ति पर जम गई ।

सवेरे की ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी । उसने खिड़की से सागर की ओर देखा । नरीमान पॉइण्ट तक उसकी दृष्टि फिसलती चली गई । उसे लगा, उसका कोई प्रशंसक पूछ रहा है—'चाय पी ली, इरा ?' और वह मुस्कराकर कंघी करती रही । दर्पण झूठ नहीं बोलता । इरा, तुम वाकई बहुत सुन्दर हो । जैसे यह दर्पण की नहीं, किसी प्रशंसक की

आवाज़ हो—तुम कितनी भुलक्कड़ हो, इरा ! अरे तुम्हें इतना भी पता नहीं चलता कि चाय का वक्त हो गया। ······और फिर उसे लगा कि उसके किसी दूसरे प्रशंसक की आवाज़ उसके कानों के परदों पर थाप लगा रही है :

ऐंड इन ऐंड आउट, एबव, एबाउट, बिलो
इट्स नथिंग बट ए मैजिक शैडो शो,
प्लेड इन ए बाक्स, हूज़ कैंडिल इज़ दि सन,
राउँड विच वी फैन्टम फीगर्स कम एण्ड गो !

उमर खैयाम की रुबाई का यह अनुवाद इरा को बहुत प्रिय था। पर इस समय, जब वह शंख से विवाह करने की बात सोच रही थी, रुबाई की भावभूमि उसे अटपटी-सी लगी—और अन्दर-बाहर, ऊपर-नीचे, चहुँ ओर जादू के एक छाया-नाटक के सिवाय कुछ नहीं है, जो खेला जा रहा है एक बक्स में, जिसमें सूरज का दीया रोशन है, जिसके चहुँ ओर हम छाया-आकृतियों-से घूम-घूम जाते हैं ! ······क्या प्रेम भी मात्र एक छाया है ? नहीं, नहीं, नहीं ! इरा आज चिल्लाकर कहना चाहती थी—प्रेम तो महा सत्य है। बाँसुरी-सी बज-बज उठती है प्रेम-लीला !···उसकी कल्पना में उसके प्रशंसकों की छाया-आकृतियाँ घूमने लगीं। आकृतियाँ बोल रही थीं—तुम इरा हो। हम जानते हैं, तुम रूप-लता-सी झूम-झूम उठती हो !

इरा ने दर्पण से कहा—तुम झूठ नहीं बोलते ! गर्दन घुमा-फिराकर उसने पीछे वाले दर्पण में अपनी देह का पिछला भाग देखा। यह है दो दर्पणों का जादू। उसे लगा, अतीत और वर्तमान भी दो दर्पणों का जादू है। ठीक है, खैरियत है ! वर्तमान के दर्पण में अतीत भी देखा जा सकता है। अतीत का सारा हँसी-मज़ाक, मिलना-जुलना, सागर के साथ-साथ चले गये नारियल-गाछ, और उन्हें भुलाकर सागर की लहरों से खेलती हवा। हवा तो वही है। क्या अतीत, क्या वर्तमान ! अतीत के कीर्ति-चिह्न तो वर्तमान को छू-छू जाते हैं। भला किस कीर्ति-चिह्न से

वर्तमान शुरू है, मिस्टर शंख ?—यह सवाल तो ज़रा पूछ ही सकती है। देखना, विवाह के बाद मुझे अभिनय छोड़ने को मत कहना। कमल पोखर के पास हम चलेंगे; पोखर के जल पर मुस्कान बिखेरते कमल तो हम फिर भी देखा करेंगे। फिर भी तुम एक कमल मेरे जूड़े में खोंस सकोगे। पर मिस्टर शंख, मुझे अभिनय छोड़ने को न कहना। अभिनय ही मेरा जीवन है। अपने प्रशंसकों को मैंने जो वचन दिया, उसे तो मैं निभाऊँगी ही।

मशीन का पुरज़ा बिगड़ सकता है, मिस्टर शंख ! हमारी शादी ठीक चलेगी। शादी तो एक ही बार की जाती है !

वैसे तो मैं जानती हूँ कि तुम्हारे जैसा पति मुझे मिल ही नहीं सकता शंख ! हम एक से दो हो जायँगे और दो से तीन······

मुझे किसी डाइरेक्टर या प्रोड्यूसर के साथ हँसते देखकर अपना दिमाग मत बिगड़ने देना। झगड़ा मत करना। अनाप-शनाप जो जी में आये, बकना मत। खुशकिस्मती समझो, मैं तुमसे शादी करने जा रही हूँ। मेरी मीठी हँसी के लिए तो बम्बई का मीना-बाजार तरसता है। अब वह तुम्हारे लिए ही होगी। पर ऊपर से तो सबके लिए मुस्कराना होगा। यही तो दुनिया चाहती है। खफा मत होना। मुहब्बत सलामत रहे, मिस्टर शंख ! फिर तो शादी चलेगी, नहीं तो हम दोनों ही रोयेंगे, आँखों पर हाथ रखकर। हम रोयेंगे नहीं। हम दुनिया को अपने ऊपर हँसने नहीं देंगे।

हम मिलकर सुख-दुःख की बातें किया करेंगे, तिल-तिल जीवन का रस लेंगे। मुझे किसी के साथ हँसते देखकर कलेजे को मत फटने देना। लोगों को छी-छी मत कहने देना। देखो, मिस्टर ! पहले से समझ लो। शादी कोई जोर-जबरदस्ती तो नहीं है। मिजाज ठण्डा रखना, जैसा अब है। तुम्हारे शान्त स्वभाव ने ही तो मुझे मोह लिया है।

पैसा तो अभिनय करने से ही मिलेगा। पैसा जरूरी है। पैसे के

बिना गाड़ी नहीं चलती। कमायेंगे नहीं, तो खायेंगे क्या ? खायेंगे नहीं, तो जीयेंगे कैसे ? जीवन है, तो प्रेम है !

कंघी करते-करते उसके हाथ रुक गए। फिर वह सोफे पर बैठकर अपनी डायरी पढ़ने लगी, जिसमें कुछ पन्ने कल ही शंख ने अपने हाथ से लिख डाले थे, और कह गया था कि वह देश-देश के महापुरुषों की इन सूक्तियों को पढ़कर उसके विचार समझ सकती है :

—अच्छी स्त्री के साथ विवाह जिन्दगी के तूफान में बन्दरगाह है; बुरी स्त्री के साथ, बन्दरगाह में तूफान !

—विवाह के पहले अपनी आँखें खूब खुली रखो, शादी के बाद आधी बन्द।

—विवाह जरूर करना। अच्छी पत्नी मिलेगी तो सुखी होगे, और खराब तो तत्त्वज्ञानी। यह भी क्या खराब है ?

—आज हम जिसे विवाह कहते हैं, वह विवाह नहीं, उसका आडम्बर है। जिसे हम भोग कहते हैं, वह भ्रष्टाचार है।

—नारी संसार का सार है।

—नारी पति को मारती नहीं है, पर नारी का मिजाज पति पर हुकूमत करता है।

—यह एक राय थी, किस साधु पुरुष की मैं नहीं जानता, कि दुनिया में केवल एक अच्छी स्त्री है; और उसकी सलाह थी कि हर विवाहित आदमी को सोचना चाहिए कि उसकी पत्नी ही वह स्त्री है।

—प्रेम स्वर्ग का रास्ता है।

—सब-कुछ प्रेम की खातिर और बदले में कुछ नहीं।

—प्रेम में हम सब समान रूप से मूर्ख हैं।

—प्रेम की भाषा आँखों में है।

—जिस प्रेम को प्रकट न किया जा सके, वह सबसे पवित्र है।

—दूसरों से प्रेम करना, स्वयं अपने साथ प्रेम करने के बराबर है।

—प्रेम और धुआँ छिपाये नहीं जा सकते।

—प्रेम समय को गुजार देता है और समय प्रेम को।

—प्रेम झोंपड़ी को सोने का महल बना देता है।

—जीवन एक फूल है, प्रेम उसका मधु।

—प्रेम वह सुनहरी जंजीर है, जिससे समाज परस्पर बँधा हुआ है।

—सफलता का मार्ग बुद्धि से नहीं, प्रेम से ही सूझता है।

—प्रेम प्रत्येक बात में विश्वास करता है, आशा रखकर प्रत्येक बात सहता है, किन्तु प्रेम कभी असफल नहीं होता।

—प्रेम से असम्भव सम्भव हो जाता है।

—प्रेम सबसे कर, विश्वास थोड़ों पर कर, नुकसान किसी को मत पहुँचा।

—प्रेम की भाषा सबकी समझ में आती है।

—अगर तुम चाहते हो कि लोग तुमसे प्रेम करें, तो तुम प्रेम करो और प्रेम किये जाने योग्य बनो।

—धनवान होना अच्छा है, बलवान होना अच्छा है, पर बहुत से मित्रों का प्रेम-पात्र होना और भी अच्छा है।

ये सूक्तियाँ किसी एक पुरुष या स्त्री के लिए नहीं थीं, ये तो सभी के लिए थीं। किसी एक देश के विवेकशील प्राणियों ने ही इनमें अपना अनुभव नहीं उँडेला था, इनमें तो देश-देश का, युग-युग का विवेक बोल उठा था।

माँ की आवाज आई, "इरा, नाश्ते के लिए नहीं आओगी ?"

चाय की मेज पर इरा बेतहाशा हँसती रही। माँ चौकन्नी-सी होकर बोली, "आज कैसी दौलत हाथ आ गई ?"

फिर नीचे से शंख जीना चढ़ते-चढ़ते हाँपता हुआ-सा आ पहुँचा।

"हमें भी चाय चाहिए," वह बोला।

चाय पीते समय वह एकटक इरा की ओर देखता रहा। आज उसे नीलवसना इरा बहुत सुन्दर लग रही थी। कानों में सोने के झुमके अलग डोल-डोल जाते, जैसे वे इरा के विचारों पर ताल दे रहे हों।

इरा तो बार-बार उसकी ओर देखकर उसके प्रेम का उत्तर दे रही थी।

"इरा, आज तो तुम बहुत सुन्दर लग रही हो।"

इरा हँस पड़ी।

माँ बोली, "अपनी सहायता आप करो, शंख बेटा ! हिम्मते मर्दां मददे खुदा !"

और शंख चीकू छीलकर खाने लगा।

"चीकू से अच्छा कोई फल नहीं," वह मुस्कराया, "मुश्किल यही है कि इसे भी छीलना पड़ता है। वैसे प्रेम भी तो छिलके के नीचे छिपा रहता है।"

इस पर इरा और माँ एक साथ हँस पड़ीं।

पचपन

शंख का सितारा एकदम ऊँचा उठ रहा था। इरा का प्रेम उसका स्वागत कर रहा है, यह बड़ी बात थी। प्रेम का तत्काल पता चल जाता है। प्रेम हर विचार को सँवार-निखारकर पेश करता है। सुन्दर आकृति और भी सुन्दर लगने लगती है। इरा संगमरमर की मूर्ति-सी ही तो लग रही थी। उसका मुखमण्डल कमल जैसा खिल उठा था। इरा की उपस्थिति में उसे कितना रस आता ! इरा उसे मिलनसार समझती है, उसकी समझ में यह बात तो कब की आ चुकी थी, मानो वह उसके और अपने प्रेम को तराजू में रखकर तोल चुकी हो। मुझे अब अपना तन-मन इरा को ही समर्पित कर देना चाहिए, वह सोचता, इरा अच्छी है, सौ में नहीं, हज़ार में भी उस जैसी सुन्दरी मिलना कठिन है।

मानो सब रागिनियों में इरा ही परम सुन्दरी हो। उसकी सभ्य और व्यावहारिक मनोवृत्ति ने उसे मोह लिया था। कहीं भी तो कुरूपता अथवा कुरुचि का इंगित न था। सब-कुछ सुरुचिपूर्ण था। वैभवपूर्ण भवन, आतिथ्य, अदब-कायदा, खानदानी जायदाद, ख्याति—इरा के पास सब-कुछ था।

मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है। इसमें तो कोई असंगति नहीं। प्रेम मन का परम संस्कार है। प्रेम से ही मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा होती है। प्रेम ही परम आनन्द है, परम उद्दीपन है। वह इस प्रसंग पर वैसे ही सोच रहा था, जैसे उसकी सधी हुई अँगुलियाँ वीणा पर चलती थीं।

इरा में कितना उत्साह है, कितनी स्फूर्ति ! आनन्द-विभोर हो-हो उठती है, तालियाँ बजाती है, आँखों में आँखें डालकर देखती है। काले-काले बाल, लम्बे और घुँघरीले; जूड़ा बाँधती है, तो मेरा दिल हाथ से निकलने लगता है। माँ-बेटे की मूर्ति ने उसे मोह लिया। यह सब उसीका जादू है। चिरंजीवी इरा, तुम धन्य हो ! उसे इरा के ओंठों की याद आ गई। इरा का अंग-संचालन कितना आह्लादमय है ! बोलती है तो बाँसुरी-सी बज-बज उठती है।

नरीमान-पॉइंट पर पूनम के ज्वार-भाटे का खेल देखता शंख कन्धे उचकाकर बैठा रहा। जो रागिनी हमें अच्छी लगती है उसे ही हम गाते और सुनते हैं, उसने सोचा, सौ चमत्कारों का एक चमत्कार यही है कि इरा मुझे अच्छी लगती है। उससे सुन्दर कोई दूसरी कन्या नहीं होगी बम्बई में। वह स्वयं मुझसे प्रेम करती है। चमत्कार ! रागिनी स्वयं गायक से प्रेम करती है। सौन्दर्य प्राण-प्रतिष्ठा करता है।

उसे याद आया, आज सवेरे जब वह इरा के यहाँ गया था तो इरा ने अपने हाथ से एक चीकू छीलकर उसके मुँह में डाला था।

सागर की लहरें नरीमान-पॉइंट से टकरा रही थीं। शंख सोच रहा था, इरा के फ्लैट की बत्तियाँ जल रही हैं। वह अपने कमरे में बैठी कुछ पढ़ रही होगी, शायद वह यही पढ़ रही होगी कि चाँद की किरणें सागर-मन्थन करने की क्षमता रखती हैं। वह पढ़ रही होगी कि जब मनुष्य प्रेम करता है, तो वह किसी देव-मूर्ति से कम नहीं होता। वह पढ़ रही होगी कि दिल की आग से दिमाग को धुआँ चढ़ता है। सागर से बड़ी चीज़ है आकाश, आकाश से भी बड़ी चीज़ है मनुष्य की आत्मा—यह सूक्ति भी तो इरा ने अवश्य पढ़ रखी होगी। आज सवेरे जब मैंने किसी का वह बोल दुहराया, 'दुनिया में जुड़वाँ आत्माएँ नहीं हैं !' तो उसने चौंककर मेरी ओर देखा, जैसे वह इससे असहमति प्रकट कर रही हो। तो क्या वह अपनी और मेरी आत्मा को जुड़वाँ समझने लगी है ?

आज सवेरे चाय पीते-पीते मैंने इरा से पूछा, क्या तुम्हें किसी

विवेकशील प्राणी का यह बोल पसन्द नहीं—'एक आनन्दमय मनुष्य से मिलना सौ रुपये का नोट पा जाने से अच्छा है !' तो वह गम्भीर मुँह बनाकर बैठी रही, जैसे यह बात उसके गले न उतर रही हो।

मैंने कहा—इच्छा से दुःख आता है ! वह हँसकर बोली—क्या मेरी इच्छा पागल की बड़ है ? मैंने कहा—जो लोग इतिहास के प्रसंग बनते हैं, उन्हें इतिहास लिखने का अवकाश नहीं होता ! वह कनखियों से देखकर बोली—आजकल सूक्तियाँ रटी जा रही हैं तोते की तरह ?

आज दिन के समय मेरे साथ घूमते हुए इरा ने कह दिया कि उसका प्रम मुझे समर्पित है। मैंने भी खोजती आँखों से उसके मन में झाँकने का यत्न किया था। तो क्या मैंने इरा को जीत लिया ? यह मेरी जीत है या मेरे संगीत की ?

पूनम-रश्मियों से सागर की लहरों में जो उथल-पुथल हो रही थी, उससे कहीं अधिक मादक-सी अनुभूति शंख के दिल और दिमाग को झकझोर रही थी। प्रेम भी विलक्षण वस्तु है। "जीवन की सबसे प्रबल भावना है प्रेम !" यह बात इरा के मुँह से निकल गई आज। और इसके उत्तर में मैंने कहा, "प्रेम करना न कल सहज था, न आज।" वह फिर बोली, "प्रेम के कारण ही इन्सान का भविष्य है ! प्रेम के बिना कुछ नहीं, क्योंकि प्रेम के बिना न जीवन है न भविष्य !"

आज न जाने क्यों इरा मेरे बचपन का बातें पूछती रही, और यह भी मालूम करती रही कि मेरे पिता वह माँ-बेटे की पीतल की मूर्ति कैसे बनाते हैं। यह भी पूछती रही कि गोबिन्दन इतना चतुर कैसे है और मैं कैसे भोली प्रकृति का हूँ। वह गुरुदेव के बारे में भी देर तक पूछती रही। उनकी आत्मकथा की साहित्यिक विशेषताओं पर तर्क-वितर्क करती रही। शायद वह मुझे समझने के लिए ही यह सब पूछ-सुन रही थी। कभी मेरी संगीत-साधना की प्रशंसा में खो जाती, कभी वह यह कहकर गम्भीर हो जाती—"राग रोते भी हैं, हँसते भी हैं !" फिर वह मुझे समझाती रही—"मेरा दिल पत्थर का नहीं है। बाहर से मैं सदा

हँसती रहती हूँ, भीतर से मैं रोती हूँ। मैं हँसती हुई रागिनी नहीं, रोती हुई रागिनी हूँ।" मैंने हँसकर कहा, "तुम्हारे रोने से मेरे राग भी रोने लगेंगे।"

इरा का आत्म-विश्वासयुक्त माँसल मुख-मण्डल इस समय उसकी कल्पना को छू-छू जाता था। उसने पूनम के चाँद की ओर देखा, सागर की लहरों का गर्जन-तर्जन सुना। यह दृश्य तो बहुत बार देखा था। उसे उन मारवाड़ी और गुजराती सेठों का ध्यान आया, जो सट्टे के बाज़ार में रुपया कमाते थे, और फिर इस रुपये से बम्बई के मीना-बाज़ार में फ़िल्म-कम्पनियों की गाड़ी में पेट्रोल डालते थे। पैसे का जोड़-तोड़ सेठ का काम था। एक्ट्रेसों की रूप-माधुरी के रसिया थे सेठ। मीना-बाज़ार की गप-शप में सेठ का कार्टून कैसे न रहता? इरा से भी यह बात भूली हुई नहीं कि सेठों की बातें उबाने वाली होती हैं।

"तुम्हें देखकर, तुम्हारी बातें सुनकर मेरी मन-वीणा के तार बज उठते हैं!" इरा ने आज कह ही तो दिया। मैंने सब देख-सुन लिया। वह यही कहना चाहती थी कि मेरी बातें किसी सेठ की तरह उबाने वाली नहीं हैं।

इरा आज बहुत प्रसन्न थी। राग-रागिनियों की बारीकियों में उतरने के लिए आज उसी ने पहल की थी। आज से पहले कभी उसने राग-रागिनियों के बारे में इतनी दिलचस्पी नहीं दिखाई थी। आज उसके बाल बड़े-से गोल जूड़े में बँधे हुए थे। आज उसकी देह-लता कितनी सुन्दर लग रही थी! उसने देख लिया है कि मैं सीधा-सादा आदमी हूँ, गोबिन्दन की तरह चतुर नहीं। मुझमें गोबिन्दन से आधी चतुराई भी होती, तो शायद इरा ने मुझे ठुकरा दिया होता।

आज सवेरे का जल-पान करके हम एलिफेण्टा केव की यात्रा पर चल दिए थे। दोपहर का खाना वहीं खाया, त्रिमूर्ति के पास बैठकर। आज की यात्रा क्या मैं कभी भूल सकता हूँ? इरा का सहज सौन्दर्य मुझे मुग्ध कर गया। कितनी बातें हुईं! उससे सुनी हुई शोरी मियाँ

और सोना की प्रेम-कथा क्या मैं कभी भूल जाऊँगा ?

दोपहर के समय शोरी मियाँ और सोना की कथा सुनाई इरा ने। सोहनी रागिनी के रसिया थे शोरी मियाँ, जो आधी रात की रागिनी है। वह कहती चली गई थी, "शोरी मियाँ मुलतान के थे, और उन्होंने 'टप्पा' ईजाद किया था। लखनऊ की नर्तकी थी सोना। मुलतान से चलकर शोरी मियाँ लखनऊ आये। सोना की ख्याति सुनकर आये थे। उससे मिले तो प्रेम हो गया। लोगों ने सोना से कहा—शोरी मियाँ तुम्हें दिल से प्यार करते हैं तो तुम उनसे कहो, अपने सीने पर गरम-गरम तवे बाँधकर परीक्षा दें। शोरी मियाँ ने यह शर्त मान ली। गरम-गरम तवे बाँधने से वे मर गए। उनके पीछे सोना भी पागल हो गई। बहुत से लोग यह मानते हैं कि सोहनी के ये पंजाबी भाषा के बोल शोरी मियाँ के ही रचे हुए हैं, जिन्हें उत्तर भारत के गायक आज भी गाते हैं।"

उसने सोहनी के बोल मेरी डायरी में नोट कर दिए थे :

जा वे मियाँ केहीयाँ कीतीयाँ,
तूँ साडड़े नाल बुराइयाँ !
असाँ हस्स हस्स तेंडड़े नाल
अक्खीयाँ लाइयाँ ! जा वे मियाँ
[जा रे मियाँ, कैसी कीं
तुमने हमारे साथ बुराइयाँ !
हमने हँस-हँसकर तुम्हारे साथ
आँखें लगाईं ! जा रे मियाँ]

आधी रात का समय तो नहीं हुआ था। शंख बैठा सोहनी का यह बोल अलापता रहा। डायरी में शब्दों के अर्थ उसने लिख लिए थे। अब तो लगता था, जैसे वह अपनी ही भाषा में रागिनी गा रहा हो।

वह सोचने लगा—इरा ने आज शोरी मियाँ और सोना की कथा मुझे क्यों सुनाई ? शायद वह यही समझाना चाहती थी कि अब गरम-गरम तवे सीने से बाँधकर परीक्षा देने का युग बीत गया। मैं भी तो

अपने गोरी मियाँ को पाना चाहती हूँ, इसी जीवन में !

वह मन्त्रमुग्ध-सा बैठा रहा ।

पूनम का चाँद मुस्करा रहा था । सागर की लहरें मानो अपनी भाषा में कहे जा रही हों—यह धरती इसी सागर से बाहर निकली थी !

उसे इरा की याद सताने लगी । उसने घूमकर इरा के फ्लैट पर नजर डाली । वहाँ रोशनी थी । क्या इरा अभी तक सोई नहीं ? इरा भी क्या यही सब सोच रही होगी, जो मैं सोच रहा हूँ ? इरा के बाल रेशम के लच्छे हैं । मैंने उन्हें छूकर देखा है । वह चाहती है, हम एक से दो हो जायँ, और दो से तीन······वह आगे कुछ न सोच सका । पूनम की किरणें मुस्कराती रहीं । सागर की लहरें उसी तरह नरीमान-पॉइट के पत्थरों से टकराती रहीं ।

···इरा के स्वर में आज कितना उतार-चढ़ाव था, जब वह एलिफेण्टा केव की त्रिमूर्ति के सामने खड़ी मुझसे बातें कर रही थी । और भी दर्शक मौजूद थे । आज इरा कितनी सुन्दर लग रही थी; उसकी आँखें कोई और ही भाषा बोल रही थीं ।

···मैंने साफ-साफ कह दिया—इरा, मैं तुम्हारे जितना शिक्षित नहीं हूँ । शायद मैं तुम्हारे योग्य सिद्ध न हो सकूँ !

···वह बोली—शिक्षा एक ही तरह की नहीं होती । तुम अपनी शिक्षा की कमी पूरी कर चुके हो, शंख !

···मैंने कहा—हम जल्दी न करें । पूरा विचार कर लें ।

···वह बोली—मैंने तो सब विचार लिया । सारी बात तोल ली । हमें एक से दो होने से दुनिया नहीं रोक सकती । हमारा प्रेम निष्कलंक है ।

···मैंने कहा—सुन्दर चीज़ तो सुन्दर ही रहती है ।

···वह बोली—सुन्दर भी और पवित्र भी । मैं तुम्हें अच्छी तरह समझती हूँ, शंख ! क्या तुम मुझे नहीं समझते ?

···मैंने कहा—समझता क्यों नहीं ? मैं तुम्हें वैसे ही समझता

हूँ इरा, जैसे मैं किसी रागिनी को समझता हूँ। और जब भी रागिनी में शुद्ध स्वर लगाये जाते हैं तो वह पवित्र होती है।

…यही तो मैं भी समझती हूँ। चिरकाल तक चलेगी हमारी कहानी। हम एक-दूसरे के साथ न्याय करेंगे। हम निर्माण करेंगे, जैसे बलशाली हाथों ने और विवेकशील दिमाग ने कभी यह त्रिमूर्ति बनाई थी।

…मैंने कहा—क्या यह सच है इरा, कि प्रेम आदमी को निर्माण-शील बनाता है? यह कैसी अनुभूति है? सच्चे प्रेम में कभी तू-तू, मैं-मैं की नौबत भी आ सकती है, यह मेरा दिल नहीं मानता, इरा! यही देखना होता है कि रागिनी में उसीके सच्चे, खरे स्वर लग रहे हैं।

…वह बोली—भविष्यवक्ता होती है सच्ची रागिनी। वैसा ही प्रेम है।

…मैंने कहा—अभी और देख लो, इरा! कहीं जल्दी में भूल न हो जाय।

…वह बोली—मैं किसी फ़िल्म के काण्ट्रेक्ट पर साइन तो नहीं कर रही। मैं कोई सौदा नहीं पटा रही।

चहुँ ओर पूनम की चाँदनी थी। सागर अपनी वाणी में बोल रहा था। शंख लहरों से बातें करने लगा—इरा का स्वर अति मधुर है। और इरा के मधुर स्वर में एक खास गहराई है, सागर की लहरो! बहुत जल्द हम एक से दो होकर रहेंगे।

उसने चाँद की ओर देखा।

चाँद मानो स्वीकृति में मुस्कराया।

सागर की लहरें हँस पड़ीं।

"क्या मेरी बातों में तुम्हें कोई असंगति दिखाई दी, सागर की लहरो?"

सागर की लहरें फिर हँस पड़ीं।

"मैं इरा से प्रेम करता हूँ, सागर की लहरो! इरा मीना-बाज़ार

में रहती हुई भी मीना-बाज़ार में खो नहीं गई। वह उससे अलग है। हमारे बीच कोई दीवार न होगी—न बनावट, न धोखाधड़ी। हमारी भाषा शब्दातीत को पकड़ने का जतन करेगी। एक-दूसरे को धन्यवाद देने की ज़रूरत न होगी। इतिहास के पदचिह्न कोई नहीं मिटा सकता। साधना फलवती होकर रहती है; ऋतु-चक्र की तरह चलती है। सुन रही हो न, सागर की लहरो ?"

सागर की लहरें फिर हँस पड़ीं। रात आधी से ज्यादा बीत चुकी थी। शंख उठकर खड़ा हो गया, और अलसाई आँखों और थके पैरों से मैरीन ड्राइव की ओर चल पड़ा।

सोलह

जयन्त ने पुण्य का भागी होने की ठान ली थी। इरा और शंख की जोड़ी बनने में अब अधिक देर न हो, इसके लिए उसने एक स्कीम बनाई। उसकी कोशिश थी कि बात तभी खुले, जब विवाह हो जाय।

"इरा हमारे अहसान तले दबी रहेगी, डार्लिंग!" उसने अपनी पत्नी से कहा, "हमारा तो लाभ-ही-लाभ है। यह जोड़ी हमारी फिल्म-कम्पनी की ही पहल किया करेगी।"

"पर हम स्वार्थ की दृष्टि से ही क्यों देखें?"

"स्वार्थ की आरती उतारने वाले हम अकेले तो नहीं। 'बिज़नेस' की बात तो देखनी ही पड़ती है। वैसे आत्मा के पोखर में खिला है यह कमल, डार्लिंग!"

"आत्मा के पोखर की भी एक ही रही!" उर्वशी हँस पड़ी, "ख़ैर छोड़ो यह बात। हमें अगली पिक्चर का काम अब धड़ल्ले से शुरू कर देना चाहिए।"

"पिक्चर का नाम तो मैंने सोच लिया।"

"क्या?"

"जालन्धर।"

"जालन्धर तो पंजाब का एक नगर है न!"

"तो तुमने नहीं सुनी जालन्धर की कहानी? वह एक अति पराक्रमी राक्षस हुआ है। शिव के तृतीय नेत्र की अग्नि से उसका जन्म

आता है। जालन्धर ने नारद से पार्वती
उसके मन में यह इच्छा बलवती हो उठी कि
लिया जाय। निशुम्भ, शुम्भ, कालनेमि आदि राक्षसों
जालन्धर ने कैलाश पर धावा बोल दिया।"

विवाह की इच्छा कितनी बलवती होती है!"

"शिव की सेना से पार न पाकर, गान्धर्वी विद्या से शिव को मोहित कर, स्वयं शिव-रूप धारण कर जालन्धर पार्वती के पास गया। पार्वती को पता चल गया कि यह राक्षस है। वह गुप्त होकर विष्णु की शरण में चली गई। जालन्धर को वरदान था कि जब तक उसकी पत्नी का पतिव्रत धर्म कायम है, कोई उसे मार नहीं सकेगा। विष्णु ने जालन्धर का रूप धारण करके जालन्धर की पत्नी का सतीत्व नष्ट किया। पता चलने पर वृन्दा ने विष्णु को शाप दिया कि त्रेता युग में उनकी पत्नी राक्षस द्वारा अपहृत की जायगी और वह वन-वन भटकते फिरेंगे। वृन्दा ने अपने पति को प्राप्त करने के लिए एक स्थान पर बैठकर घोर तपस्या की। उस स्थान का नाम वृन्दावन हो गया। एक बार वृन्दा को जालन्धर के दर्शन हुए और अन्त में विष्णु ने चक्र से जालन्धर का सिर धड़ से अलग कर दिया। जहाँ जालन्धर गिरा, वहाँ तक अपूर्व तेज प्रकट हुआ। वह तेज भी शिव के तेज में मिल गया। वृन्दा अग्नि में प्रवेश करे, इसके सिवा वह बेचारी कर ही क्या सकती थी? कहो, कैसी रहेगी यह कथा हमारी अगली फिल्म के लिए?"

"तो तुम भी पौराणिक चित्र बनाने की सोचने लगे? यह काम तो और बहुत से लोग कर रहे हैं। मैं पूछती हूँ, इससे सिद्ध क्या होगा?"

"पैसे आयेंगे धड़ाधड़। और क्या सिद्ध करना चाहती हो?"

"जैसी कहानी, वैसे गाने। इसमें इरा को वृन्दा की भूमिका में पेश करोगे क्या? मैं तो सोच भी नहीं सकती कि शंखधरन इस तरह की फिल्म में संगीत देने को राजी होगा।"

"कहो, 'जय जालन्धर' नाम कैसा रहेगा? खाली जालन्धर तो

ठीक नहीं रहेगा।"

"नाम का सवाल नहीं। नाम तो लिफ़ाफ़ा है। मैं पूछती हूँ, लिफाफे के भीतर चिट्ठी क्या होगी ?"

"तो तुम्हारा क्या सुझाव है ?"

"सुझाव मेरा नहीं, इरा का है।"

"वह क्या कहती है ?"

"कल रात एक जगह मिल गई थी इरा। बता रही थी कि वह शंख के साथ एलिफेण्टा देखने गई थी। कह रही थी, कोई पहली बार तो नहीं देखी एलिफेण्टा, पर इस बार बहुत आनन्द आया। और वह कह रही थी—जयन्त भाई को अब ऐसी पिक्चर बनानी चाहिए जिसमें बम्बई की कथा बोल उठे, यानी बम्बई का गत दो सौ वर्ष का इतिहास—कैसे बम्बई का जन्म हुआ, कैसे वह बड़ी हुई।"

"बात तो ठीक कहती है इरा। पर सवाल तो पैसे का है, डार्लिंग। पीछे भले ही यह पिक्चर हाथ में ले सकूँ। पहले तो 'जय जालन्धर' ही बनानी होगी।"

"डार्लिंग, पौराणिक दलदल में एक बार फँस गए, तो फिर इससे बाहर नहीं निकल सकोगे। क्यों नहीं बम्बई की कहानी में फिरंगी को जालन्धर के रूप में दिखाते ?"

बिना यह समझे कि इस बात में कोई तुक भी है या नहीं, पति-पत्नी हँस पड़े। फिर उर्वशी ने नौकर को आवाज दी कि वह खाना लगाये।

"पक्की रही न वह बात ?" उर्वशी ने हँसकर कहा, "कल इरा मिसिज़ शंख बनेगी।"

कृष्ण पक्ष की रात में सागर की लहरें उतनी चंचल नहीं रह गई थीं, जितनी पूनम की रात को थीं।

सत्रह

मैना के मन में धुकधुकी-सी हो रही थी, कहीं सचमुच इरा को कोई चुराकर न ले जाय। सवेरे से ही उसकी दाईं आँख फड़क रही थी। उसे शंख बुरा तो न लगता था, पर मनोज और शंख का क्या मुकाबला! सात हज़ार का काण्ट्रेक्ट करके शंख ने लुटिया ही डुबो दी थी। इससे तो यही अच्छा था कि मुफ्त ही सेवा-समिति की सेवा कर डालता। उसे उर्वशी पर भी बहुत क्रोध आ रहा था—बनिये की बनियाइन! उसने मन-ही-मन उर्वशी को धिक्कारा—सेठ की सेठानी बनने के ये लच्छन! कोई बात हुई भला! बेचारे शंख को ठग लिया!

वह इरा के कमरे में गई। इरा बाहर जाने की तैयारी कर रही थी। नीचे से ऊपर तक आज इरा को लाल रंग की गुड़िया बनी देखकर मैना बोली, "इरा, यह क्या स्वाँग रचा है आज?"

इरा हँस पड़ी।

"हँसो नहीं, ठीक-ठीक बताओ।"

"आज एक जगह शूटिंग है। मैंने सोचा, वहाँ जाकर दुलहिन बनने के बजाय यहीं सारा मेक-अप कर डालूँ!"

मैना खुश हो गई। उसने अपने मन को समझाया। मैं तो वैसे ही डर गई थी। इरा मेरी है, मुझसे पूछे बिना वह कहीं नहीं जा सकती। फ़िल्म में सौ बार दुलहिन बनी है। वह तो धन्धा है। फ़िल्म का मेक-अप यही चाहता है। मैं भी तो अब फ़िल्म के परदे पर उतर आई हूँ।

चलो ठीक है ।

उसने इरा का मन जोहने के लिए शंख की प्रशंसा शुरू कर दी ।

इरा ने नाक-भौं चढ़ाकर अभिनय किया ।

"क्यों, शंख तुम्हें पसन्द नहीं ?"

"बिलकुल नहीं ।"

"क्यों, उसमें क्या बुराई है ?"

"उसकी चाल भी देखने लायक है ! मैं उसके साथ हर रोज़ तो नहीं चल सकूँगी । देखा नहीं था उस दिन, गुरुदेव के मुहूर्त पर ! किस तरह लोग हमारी तरफ़ आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे !"

मैना का मन-मयूर नाच उठा । उसे यह समझते देर न लगी कि इस जन्म में तो शंख उसकी इरा पर जादू नहीं डाल सकेगा । इरा मेरी है, मेरी ही रहेगी। फ़िल्म की रंगीनियाँ बनी रहें। फ़िल्म की रंगरेलियाँ ही एक एक्ट्रेस की सफलता की सीढ़ियाँ हैं । फ़िल्म के मौज-मेलों में ही हमारे लिए बरकत का सामान है। फ़िल्म की दुनिया खुले-ख़ज़ाने खुशियाँ बाँटती है ।

"तुम्हारे मन-पसन्द का आदमी है मनोज । क्यों, इरा ?"

इरा लजाई नहीं । दर्पण के सामने खड़ी मेक-अप करती रही ।

"मेक-अप का भी एक हिसाब रहता है न ! ऐसे ही हमारी परम्परा है। किसी की घर वाली बनकर एक्ट्रेस बनना कठिन है। घर-गृहस्थी चलाये या ऐक्टिंग करे !"

इरा मुस्करा दी, जैसे माँ के उपदेश पर स्वीकृति की मुहर लगा रही हो ।

"यह काण्ट्रेक्ट डेढ़ लाख का किया है । अगला दो लाख से कम न हो। तुम्हें तो यही देखना चाहिए । एक मैं हूँ। पचहत्तर हजार का काण्ट्रेक्ट मुश्किल से मिला । उम्र-उम्र की बात है। मैं समझती हूँ कि मैंने फिर भी कुछ कमाया इरा !"

इरा ने नाक-भौं चढ़ाई, जैसे माँ का वार्तालाप उसे खल रहा हो ।

"माँ का प्यार तुम्हें अब भारी लगने लगा !" मैना ने व्यंग्य के शब्द-रूपी बाण छोड़े, "तुम मुझसे अलग रहने की बात सोच रही हो बहुत दिनों से, यह मैं देख रही हूँ।"

"शायद !" इरा मुस्कराई।

"शायद क्या, यही बात है। मैं साफ देख रही हूँ।"

"तो मेरा सिंगार तुम्हें अच्छा नहीं लगता, माँ ?"

"सो बात नहीं है, बेटी !" माँ ने आवाज में नरमी लाकर कहा, "सुना नहीं ! माँ मारे भी और चोट भी न आने दे।"

"मैं तो अपनी राह चली जा रही हूँ, माँ ! तुम मारो चाहे प्यार करो। राह मुझे बुला रही है। राह की पुकार मैं कैसे अनसुनी करूँ ?"

माँ ने इरा की ठोड़ी उठाकर प्यार जताया, "जाओ, शूटिंग में देर हो रही है, बेटी !"

ड्राइवर तैयार था।

इरा नीचे जाकर कार में बैठ गई।

"कौनसे स्टूडियो में चलना है ?"

"पहले जयन्त देसाई के घर चलो—मलाबार हिल !"

कार शीघ्र ही हवा से बातें करने लगी।

इरा ने आगे की राह तय कर ली थी। पीछे की बात पीछे, आगे की बात आगे। बचपन में माँ कहा करती थी न—तेरा दूल्हा आयेगा नीले घोड़े पर चढ़कर !......अब मैं दुलहिन बनी स्वयं अपने दूल्हे के पास जा रही हूँ। सपनों का दूल्हा चुन लिया गया। मीना-बाज़ार में हर चीज़ मिलती है—दूल्हे की भी क्या कमी ? नीले घोड़े पर चढ़कर दूल्हा उसके घर नहीं आ पाया था। कार पर चढ़कर दुलहिन ही दूल्हे के पास जा रही है ! और इरा मन-ही-मन कह रही थी—ब्याह के सदाबहार सपने, तेरी सदा ही जय ! ओ री ओ ब्याह की शहनाई, तेरी मटक रागिनी की सदा ही जय !......

अठारह

ड्राइंग-रूम आज पूरी तरह सजाया गया था।

जयन्त दिल से नहीं चाहता था कि उसके घर कोई ऐसा-वैसा नाटक खेला जाय।

पर उर्वशी ने उसे मना लिया था कि इरा और शंख की जोड़ी बनने में सहायता देकर उन्हें अपने काम में भी आसानी हो जायगी।

"इरा हमारे अहसान तले दब जायगी।" उर्वशी मुस्कराई।

"और शंख?"

"वह भी यही सोचेगा कि हमारे ही घर उसे उसकी इरा मिली।"

जयन्त को इस व्यापार में लाभ-ही-लाभ दिखाई दिया।

बाहर आँगन में वेदी सजाई गई थी। पण्डित विवाह की तैयारी कर रहा था। उसने फिर आवाज़ दी, "दुलहिन अभी तक नहीं आई?"

सब बड़े हैरान थे। शंख का चेहरा तो बहुत उतरा हुआ था। कहीं इरा ने अपना इरादा बदल तो नहीं लिया? बड़ी भद्द होगी। उसने सोचा, किस झंझट में पड़ गया। इससे कहीं अच्छी बात होती कि मैं वरकला चला जाता, और पंचानन को संगीत सिखाता।

"तुम घबराओ मत!" गोबिन्दन ने शंख की ओर देखा, "इरा तो अब तुम्हें मिलकर ही रहेगी। इरा पीछे हटने वाली लड़की नहीं। सारी बात उसके फैसला करने की थी, वह उसने कर लिया। तुमने मेरी बात नहीं मानी। मैंने तुम्हें अपना आशीर्वाद दे डाला! मैं हूँ

गोबिन्दन अवतार !" वह कहते-कहते हँस पड़ा, "मेरी बात आज तक झूठ नहीं हुई। मैं हूँ त्रिकालदर्शी। मैं देख रहा हूँ, इरा अपने घर से चल पड़ी है।"

उर्वशी के घर से तीन मकान छोड़कर एक फ्लैट शंख के लिए ठीक किया जा चुका था। इस काम में उर्वशी ने ही मदद दी थी। उसी ने पूरा सामान जुटाने में हाथ बटाया था। यह बात इरा से छिपाकर रखी गई थी। शंख का पक्का इरादा था कि वह इरा से शादी करके उसे अपने उसी मकान पर ले जायगा।

नीचे से किसी ने पुकारा।

शंख ने नीचे जाकर कार का दरवाज़ा खोला।

शंख का हाथ पकड़े लाल कपड़ों में सजी इरा कार से नीचे उतर आई।

जब वे ऊपर पहुँचे, तो गोबिन्दन ने हँसकर कुछ कहना चाहा। हाथ के संकेत से इरा ने उसे रोक दिया।

बालकनी से नीचे झुककर इरा ने अपने ड्राइवर से कहा, "तुम चलो। मैं इन लोगों के साथ स्टूडियो चली जाऊँगी।"

ड्राइवर चला गया तो इरा की जान-में-जान आई।

गोबिन्दन बोला, "मैं हूँ गोबिन्दन अवतार ! इरा देवी, तुमने आने में दस मिनट की भी देर की होती तो विवाह का मुहूर्त टल जाता।" और वह अपनी बात पर स्वयं ही हँस पड़ा।

शंख कुछ न बोला। वह इरा की ओर देखता रह गया। पहले तो कभी इरा इतनी सुन्दर नहीं लगी थी।

आज तो इरा पूरी दुलहिन लग रही थी !

इरा की एक-एक अदा नई थी, एक-एक बात नई थी। शंख एकटक देखता रहा। अब उसे वरकला जाकर पंचानन को संगीत सिखाने की बात बिसर गई थी। इस रूप-शिखा के सम्मुख बेचारे पंचानन की क्या बिसात ! आज मेरी माँ होती यहाँ, तो अपनी बनने वाली बहू को

गोबिन्दन अवतार !" वह कहते-कहते हँस पड़ा, "मेरी बात आज तक झूठ नहीं हुई। मैं हूँ त्रिकालदर्शी। मैं देख रहा हूँ, इरा अपने घर से चल पड़ी है।"

उर्वशी के घर से तीन मकान छोड़कर एक फ्लैट शंख के लिए ठीक किया जा चुका था। इस काम में उर्वशी ने ही मदद दी थी। उसी ने पूरा सामान जुटाने में हाथ बटाया था। यह बात इरा से छिपाकर रखी गई थी। शंख का पक्का इरादा था कि वह इरा से शादी करके उसे अपने उसी मकान पर ले जायगा।

नीचे से किसी ने पुकारा।

शंख ने नीचे जाकर कार का दरवाज़ा खोला।

शंख का हाथ पकड़े लाल कपड़ों में सजी इरा कार से नीचे उतर आई।

जब वे ऊपर पहुँचे, तो गोबिन्दन ने हँसकर कुछ कहना चाहा। हाथ के संकेत से इरा ने उसे रोक दिया।

बालकनी से नीचे झुककर इरा ने अपने ड्राइवर से कहा, "तुम चलो। मैं इन लोगों के साथ स्टूडियो चली जाऊँगी।"

ड्राइवर चला गया तो इरा की जान-में-जान आई।

गोबिन्दन बोला, "मैं हूँ गोबिन्दन अवतार ! इरा देवी, तुमने आने में दस मिनट की भी देर की होती तो विवाह का मुहूर्त टल जाता।" और वह अपनी बात पर स्वयं ही हँस पड़ा।

शंख कुछ न बोला। वह इरा की ओर देखता रह गया। पहले तो कभी इरा इतनी सुन्दर नहीं लगी थी।

आज तो इरा पूरी दुलहिन लग रही थी !

इरा की एक-एक अदा नई थी, एक-एक बात नई थी। शंख एकटक देखता रहा। अब उसे वरकला जाकर पंचानन को संगीत सिखाने की बात बिसर गई थी। इस रूप-शिखा के सम्मुख बेचारे पंचानन की क्या बिसात ! आज मेरी माँ होती यहाँ, तो अपनी बनने वाली बहू को

देखती ही रह जाती।

उर्वशी ने इरा की ठोड़ी उठाकर कहा, "घर से पूरा मेक-अप करके आओगी, यह तो हमें आशा न थी।"

"यह रूप, यह यौवन!" गोविन्दन हँस पड़ा, "मैं हूँ गोबिन्दन अवतार! अरे शंखजी महाराज! क्या सोच रहे हैं, श्रीमान्? दुलहिन वही नहीं जो बाहर से नज़र आ रही है। दुलहिन तो मन के भीतर छिपी बैठी है। भोली-भाली मिट्टी से उगा है दूल्हा हमारा! और चंचल मिट्टी से उगी है दुलहिन।" कहते-कहते वह लोट-पोट हो गया।

आँगन से पण्डित ने टेर लगाई, "दुलहिन तो आ गई। अब क्या देर है?"

"अब कुछ देर नहीं।" उर्वशी ने उत्तर दिया, "हम अभी आ रहे हैं। पहले दुलहिन को उसका रूप दिखा दें दर्पण में।"

इरा का मुख ललौंहा पड़ गया। लाज से उसके कानों की लावें तक ललौंही हो गईं।

जयन्त शान्त-प्रसन्न मुद्रा में खड़ा था। वह बिलकुल चुप था।

"मियाँ-बीबी राज़ी तो क्या करेगा काज़ी!" जयन्त भी चुप न रहा।

इरा के जूड़े पर उर्वशी ने फूल लगाना चाहा। गोबिन्दन बोला, "मैं हूँ गोबिन्दन अवतार। क्या दुलहिन नंगे सिर बैठेगी जो उसके जूड़े पर फूल लगाया जा रहा है? दुलहिन का फूल है दूल्हा, सो हाज़िर है। उठो, शंख! अब विवाह में देर नहीं। पण्डित को तंग मत करो। विवाह का मुहूर्त तो टल नहीं सकता। फ़िल्म के मुहूर्त से कहीं पवित्र है विवाह का मुहूर्त!"

इरा को हँसी न आई, न वह मुस्कराई। लाज-लजी-सी दर्पण के सामने खड़ी रही। उसे उसका रूप दिखाया जा रहा था दर्पण में।

केले के गाछ काट-काटकर जाने कहाँ-कहाँ से लेता आया था गोबिन्दन। वेदी सजाने की उसी की जिम्मेवारी थी। दूल्हा-दुलहिन को एक साथ चौकियों पर बिठाकर पण्डित उन्हें आचमन कराने लगा।

उन्नीस

'गुरुदेव' की शूटिंग चल रही थी। मैना को पहली बार फ़िल्म के परदे पर उतरते शरू-शुरू में कुछ संकोच भी हुआ था। पर अब तो गाड़ी चल निकली थी।

आज वह जल्दी ही थक गई। जहाँ वह बैठी थी, स्टूडियो में कुछ और लोग भी बैठे थे। पास ही खड़े थे मनोज सान्याल और जयन्त देसाई।

"मनोज बाबू, इरा तो अब आपके हाथ से गई!" सहसा जयन्त के मुँह से निकल गया।

मैना ने यह बात सुनी, तो पास आ गई। मनोज और जयन्त देर तक बातें करते रहे। सेट पर अगले दृश्य की तैयारी में थोड़ी देर थी।

जयन्त ने छूटते ही यह खबर सुना डाली, "इरा का व्याह हो गया।"

"शंख के साथ?" मनोज चुप न रह सका।

"हाँ, शंख के साथ!" जयन्त को कहना पड़ा।

मनोज का रंग फीका पड़ गया।

जयन्त ने यह खबर तो सुना दी, पर पीछे उसे पछतावा हुआ। यह बात तो मैना तक जा पहुँची थी, और अब स्टूडियो में हर कोई आँखों-ही-आँखों में इसी को दोहरा रहा था। उर्वशी ने जयन्त से बार-बार कहा था कि वह आज शाम की बात आज रात को अवश्य पचा जाय, और स्टूडियो में किसी के कान में इसकी भनक न पड़ने दे। मैं इतनी-सी बात न पचा सका। उर्वशी सुनेगी तो क्या कहेगी?

मैना ने पास आकर कहा, "चुप क्यों हो गए, जयन्त भाई ? सारी बात बताइये न ! कहाँ ब्याह हुआ ? कितनी शहनाइयाँ बजीं ? कौन भाग्यवान दूल्हा मिला है मेरी इरा को ?"

जयन्त झेंप-सा गया, "मैंने तो यह खबर उड़ती चिड़िया से सुनी।"

"खबर सुनाकर वह चिड़िया कहाँ उड़ गई ?"

"क्यों, तुम्हें नहीं बताया था इरा ने ?"

"मुझे वह क्यों बताने लगी, बेटा ! ज़माना ही ऐसा है। मुझसे पूछती तो कोई अच्छी राय ही देती।"

"यह तो ठीक है। माँ हमेशा बेटी को अच्छी राय ही देती है।"

"सागर, धरती और पहाड़ से कुछ कम बूढ़ा नहीं इन्सान !" जयन्त ने ज्ञान बघारा, "जितना बूढ़ा है इन्सान, उतनी ही बूढ़ी है ब्याह की परम्परा। अच्छा तो यही है कि बेटी माँ से पूछकर यह कदम उठाये। पर वह किसी कारण ऐसा न कर सके तो भी क्या बुरा है ? ब्याह तो ज़रूरी है। मैं तो हालीवुड में रहा, यूरोप का चप्पा-चप्पा छान मारा। हर जगह यही देखा। हर जगह ब्याह की शहनाइयाँ सुनीं। शहनाइयाँ नहीं तो कोई और बाजा। सब ठीक हो जायगा। इरा तो बहुत समझदार है। शंख बुरा नहीं। दूल्हे के चुनाव में पहला हक तो दुलहिन का ही होना चाहिए। ब्याह ही जीवन का आनन्द है। सारी दुनिया में हर कहीं लड़कियाँ ब्याह कराती हैं। हर फ़िल्म में कहीं-न-कहीं यही नुक्ता रहता है। इसके बिना कहानी चलती ही नहीं।"

"उसने मुझसे पूछा क्यों नहीं ? झूठ बक दिया। बोली—घर से दुलहिन का मेक-अप करके जा रही हूँ, ताकि स्टूडियो में देर न लगे। मैं क्या जानती थी कि यह फ़िल्म के लिए मेक-अप नहीं, वह सचमुच ही दुलहिन बनकर जा रही है।"

मैना बातें करते-करते उदास हो गई। अब तक इरा मेरी सेवा को अपना आदर्श बनाये बैठी थी। अब वह पराई हो गई। आज तक वह जिस डगर पर चल रही थी, उससे हट गई। नये साथी का प्यार इरा

को मुबारक ! पर मैं क्या करूँगी ? ······उसकी पीड़ा पाताल तक चली गई ।

···बारात को देखकर तो हर लड़की खुश होती है ।

···सो तो ठीक है ।

···वह गुड़ियों का ब्याह रचाती है ।

···हाँ, जयन्त भाई !

···तो फिर ?

'तो फिर' का ही तो सारा झगड़ा था । माँ की लोरी में दूल्हे की कल्पना घुली रहती है । एक कश्मीरी हातो से मैना ने वह गीत सुना था—व्याह का गीत, जिसमें कश्मीरी स्त्रियाँ गाती थीं : 'हम सड़कों पर तुम्हारे लिए कपूर बिछा देंगी । ऐ इश्क के भौंरे, क्या तू आ पहुँचा, अपनी लैला को लिवा ले जाने के लिए ?' ···यहाँ तो उलटी बात हुई; लैला अपने-आप 'इश्क के भौंरे' के पास चली गई !···उसकी कल्पना में मदन बाबू का चेहरा उभरा । वह भी तो इश्क का भौंरा बनकर आये थे, मेरा संगीत सुनने । फिर वह हमेशा के लिए मेरे हो गए । एक बार गये भी, तो घर वालों के साथ सब रिश्ते तोड़कर आये, मेरे होकर रहे । उसी इश्क के भौंरे की निशानी है इरा । उसी की निशानी है शंकर । शंकर को पता चलेगा, तो रो-रोकर आँखें सुजा लेगा । वह अपनी दीदी के बिना कैसे रहेगा ?···मैना को मदन बाबू की बातें याद आती हैं । वह कहा करते थे—स्त्री माँ है । बड़े-बड़े अवतार भी उसी की कोख से जन्मे !···मदन बाबू यह भी कहा करते थे—जब मेह, तब घास । जब घास, तब प्रजा सुखी । जब प्रजा सुखी, तब ऐश । जब ऐश, तब ज़ुल्म । जब ज़ुल्म, तब कहर । जब कहर, तब तोबा । जब तोबा, तब मेह ! सात का चक्कर चलता है । यह सदा से चलता आया है, चलता रहेगा ।···मदन बाबू के साथ मैना का व्याह हुआ था । वह भी बैठी थी मदन बाबू के दायें हाथ वाली चौकी पर ! उसने भी अग्नि के सामने भाँवरें ली थीं । पण्डित ने आशीर्वाद दिया था । ···मदन बाबू के

सामने मैं कैसे शाल में लिपटकर बैठी थी, लाज लजी-सी, जैसे दूल्हे ने इससे पहले दुलहिन को कभी नहीं देखा था।...वह सब क्या था ? एक अच्छा-खासा नाटक !...वैसा ही नाटक अब मदन बाबू की बेटी ने किया। पर उसने अपनी माँ की तरह नहीं किया। वह उलटी चाल चली।...सदा सुहागिन रहो, बेटी !...युग-युग बना रहे तेरा सुहाग ! पर माँ से पूछ लिया होता।...माँ के मुँह पर तमाचा मारकर तो न गई होती !...कैसे कह दिया मुँह बनाकर—स्टूडियो में दुलहिन का 'टेक' है आज !...दुलहिन का टेक है !...दुलहिन !...अब दुलहिन बनने का मज़ा चख लेगी—दूल्हा की गुलाम ! उम्र-भर की गुलाम ! आँखों पर हाथ रख-रखकर पहले की आज़ादी को याद करेगी। न करे, तो मेरा नाम मैना नहीं !...

स्टेज पर अगले दृश्य की तैयारी पूरी हो चुकी थी और शूटिंग चल रही थी। मैना अभिनय कर रही थी, पर मन की रंग-भूमि पर संघर्ष चल रहा था। मुक्तिबोध ने गुरुदेव रुद्रपदम् का मेक-अप करने में कमाल कर दिया था। एक ओर गुरुदेव का शिष्य शंख बैठा वीणा पर नित-नित का अभ्यास कर रहा था। शंख की रोल एक नये युवक को दी गई थी। और अन्नपूर्णा के मेक-अप में मैना भी स्टेज पर चली गई। मैना को अपना डॉयलाग पूरी तरह याद था। यह वह प्रसंग था जहाँ गुरुदेव की पत्नी अन्नपूर्णा यह शिकायत करती है कि अपने बेटे गोबिन्दन को तो उन्होंने पूरा प्यार न देकर घर से भगा दिया, और इस पराये पुत्र शंख पर व्यर्थ ही माथा-पच्ची कर रहे हैं। और इस पर गुरुदेव का यह उत्तर—"एक परम्परा को पुत्र आगे बढ़ाता है, एक को शिष्य ! बेटे ने संगीत नहीं सीखा तो क्या शिष्य भी न सीखे ?" और फिर अन्नपूर्णा की त्रिया-हठ और शब्दों के विष में बुझे बाण !....

देर तक फाइनल रिहर्सल चली, फिर असली शूटिंग शुरू हुई। मैना सोच रही थी—इरा गिरी तो किस पर गिरी !...उधर 'टेक' की आवाज पड़ी, इधर मैना बेहोश होकर सेट पर गिर पड़ी।

को मुबारक ! पर मैं क्या करूँगी ? ······उसकी पीड़ा पाताल तक चली गई।

···बारात को देखकर तो हर लड़की खुश होती है।

···सो तो ठीक है।

···वह गुड़ियों का ब्याह रचाती है।

···हाँ, जयन्त भाई !

···तो फिर ?

'तो फिर' का ही तो सारा झगड़ा था। माँ की लोरी में दूल्हे की कल्पना घुली रहती है। एक कश्मीरी हातो से मैना ने वह गीत सुना था—व्याह का गीत, जिसमें कश्मीरी स्त्रियाँ गाती थीं : 'हम सड़कों पर तुम्हारे लिए कपूर बिछा देंगी। ऐ इश्क के भौंरे, क्या तू आ पहुँचा, अपनी लैला को लिवा ले जाने के लिए ?' ···यहाँ तो उलटी बात हुई; लैला अपने-आप 'इश्क के भौंरे' के पास चली गई !···उसकी कल्पना में मदन बाबू का चेहरा उभरा। वह भी तो इश्क का भौंरा बनकर आये थे, मेरा संगीत सुनने। फिर वह हमेशा के लिए मेरे हो गए। एक बार गये भी, तो घर वालों के साथ सब रिश्ते तोड़कर आये, मेरे होकर रहे। उसी इश्क के भौंरे की निशानी है इरा। उसी की निशानी है शंकर। शंकर को पता चलेगा, तो रो-रोकर आँखें सुजा लेगा। वह अपनी दीदी के बिना कैसे रहेगा ?···मैना को मदन बाबू की बातें याद आती हैं। वह कहा करते थे—स्त्री माँ है। बड़े-बड़े अवतार भी उसी की कोख से जन्मे !···मदन बाबू यह भी कहा करते थे—जब मेह, तब घास। जब घास, तब प्रजा सुखी। जब प्रजा सुखी, तब ऐश। जब ऐश, तब जुल्म। जब जुल्म, तब कहर। जब कहर, तब तोबा। जब तोबा, तब मेह ! सात का चक्कर चलता है। यह सदा से चलता आया है, चलता रहेगा।···मदन बाबू के साथ मैना का व्याह हुआ था। वह भी बैठी थी मदन बाबू के दायें हाथ वाली चौकी पर ! उसने भी अग्नि के सामने भाँवरें ली थीं। पण्डित ने आशीर्वाद दिया था। ···मदन बाबू के

सामने मैं कैसे शाल में लिपटकर बैठी थी, लाज लजी-सी, जैसे दूल्हे ने इससे पहले दुलहिन को कभी नहीं देखा था।···वह सब क्या था? एक अच्छा-खासा नाटक !···वैसा ही नाटक अब मदन बाबू की बेटी ने किया। पर उसने अपनी माँ की तरह नहीं किया। वह उलटी चाल चली।···सदा सुहागिन रहो, बेटी !···युग-युग बना रहे तेरा सुहाग ! पर माँ से पूछ लिया होता।···माँ के मुँह पर तमाचा मारकर तो न गई होती !···कैसे कह दिया मुँह बनाकर—स्टूडियो में दुलहिन का 'टेक' है आज !···दुलहिन का टेक है !···दुलहिन !···अब दुलहिन बनने का मज़ा चख लेगी—दूल्हा की गुलाम ! उम्र-भर की गुलाम ! आँखों पर हाथ रख-रखकर पहले की आज़ादी को याद करेगी। न करे, तो मेरा नाम मैना नहीं !···

स्टेज पर अगले दृश्य की तैयारी पूरी हो चुकी थी और शूटिंग चल रही थी। मैना अभिनय कर रही थी, पर मन की रंग-भूमि पर संघर्ष चल रहा था। मुक्तिबोध ने गुरुदेव रुद्रपदम् का मेक-अप करने में कमाल कर दिया था। एक ओर गुरुदेव का शिष्य शंख बैठा वीणा पर नित-नित का अभ्यास कर रहा था। शंख की रोल एक नये युवक को दी गई थी। और अन्नपूर्णा के मेक-अप में मैना भी स्टेज पर चली गई। मैना को अपना डॉयलाग पूरी तरह याद था। यह वह प्रसंग था जहाँ गुरुदेव की पत्नी अन्नपूर्णा यह शिकायत करती है कि अपने बेटे गोबिन्दन को तो उन्होंने पूरा प्यार न देकर घर से भगा दिया, और इस पराये पुत्र शंख पर व्यर्थ ही माथा-पच्ची कर रहे हैं। और इस पर गुरुदेव का यह उत्तर—"एक परम्परा को पुत्र आगे बढ़ाता है, एक को शिष्य ! बेटे ने संगीत नहीं सीखा तो क्या शिष्य भी न सीखे ?" और फिर अन्न-पूर्णा की त्रिया-हठ और शब्दों के विष में बुझे बाण !····

देर तक फाइनल रिहर्सल चली, फिर असली शूटिंग शुरू हुई। मैना सोच रही थी—इरा गिरी तो किस पर गिरी !···उधर 'टेक' की आवाज पड़ी, इधर मैना बेहोश होकर सेट पर गिर पड़ी।

बीस

इरा और शंख सवेरे-सवेरे माँ से मिलने आये। सात दिन पहले हुआ था इरा का विवाह। वे माँ के सामने जाते डरते थे। सेट पर माँ के बेहोश होकर गिरने की खबर उनसे छिपाकर रखी गई थी। उर्वशी ने आज गोबिन्दन से यह खबर शंख तक पहुँचाई। शंख ने यह खबर इरा को दी।

माँ को देखने के लिए इरा का दिल तड़प उठा। सात दिन से माँ बीमार है, पलंग से उठी ही नहीं। इरा सोच रही थी कि इसके लिए वही दोषी है।

ड्राइंग-रूम में शंख को बिठाकर इरा बोली, "तुम अभी अन्दर मत चलो। माँ की तबियत शायद बहुत खराब है।"

इरा को देखकर माँ ने मुँह फेर लिया। शंकर चहक उठा, "दीदी, तुम आ गईं! जीजाजी नहीं आये?"

इरा ने शंकर के कान में कहा, "वह बाहर बैठे हैं। तुम उनके पास चले जाओ।" और शंकर बाहर चला गया।

इरा ने माँ के पैर दबाने की चेष्टा की। माँ ने पैर खींच लिये।

माँ को हाई टैम्प्रेचर था। माथा तप रहा था। आँखों में जैसे आग जल रही हो।

धीरे-धीरे इरा ने माँ का माथा सहलाना आरम्भ किया।

नौकर से बर्फ मंगवाई और बर्फ की पट्टियाँ सिर पर रखने से माँ

की तबियत थोड़ी संभल गई।

"तुम अकेली आई हो ?"

"हाँ।"

"शंख क्यों नहीं आया ? क्या मुझसे डर लगता है ?"

"वे आना तो चाहते थे पर मैं उन्हें लाई नहीं।"

इतने में शंकर ने आकर कहा, "माँ, दीदी झूठ बोलती है। जीजा-जी भी आये हैं।"

माँ की आँखें चमक उठीं।

इरा उठकर शंख को लेती आई। शंख ने माँ के चरण छू लिये।

"यह सुहाग-घड़ी बनी रहे !" माँ ने आशीर्वाद दिया, "यह जोड़ी सदा बनी रहे। बैठो, बेटा ! मेरे पास बैठो।"

माँ को पता लग चुका था, विवाह नियमपूर्वक जयन्त देसाई के घर हुआ। उर्वशी स्वयं आकर बता गई थी; क्षमा माँग गई थी।

माँ के मुख पर सहानुभूति और प्रीति के फूल खिल उठे। माथा अब भी तप रहा था, पर मन में ठण्ड पड़ गई।

"सुख को बुलाओ तो सुख पास आता है !" माँ ने जैसे अपने अनुभव की गठरी खोल दी, "राग-रागिनियों के सुरों वाली बात है। एक राग में और सुर लगते हैं, दूसरे में और। बँधे-बँधाये सुर लगते हैं हर राग में। हालाँकि वही सात सुर हैं। फेर-बदल करके अलग-अलग सुरों के जोड़े बनाये उस्तादों ने। अनेक लड़के हैं, अनेक लड़कियाँ। जोड़ी किसी-किसी की ही बनती है। मन-मरज़ी की बात है। दुनिया को बकने दो। कौन किस पर खुश है यहाँ ! जितने मुँह उतनी बातें। तुम सच्चे, तो सारा जहान सच्चा।..."

"ज्यादा न बोलो, माँ !" इरा ने समझाया, "माथा फिर तप जायगा।"

शंख ने मुस्कराकर इरा की हाँ-में-हाँ मिलाई।

"अब क्या तपेगा माथा ? पर एक बात है, शंख बेटा ! यह घर

तो मुझे खाने को दौड़ता है। या तो मैं उधर आ जाऊँ, या फिर तुम लोग इधर आ जाओ। इरा के बिना मैं नहीं रह सकती। शंकर की आँखें नहीं देखीं ? जिस दिन से इरा गई है, इसके आँसू नहीं थमे। रोता ही रहा। दीदी के घर चलो, माँ—यह रट रही इसकी। बच्चा है, कौन इसे समझाये ?"

इरा की आँखों में आँसू आ गए। वह माँ को दुखी नहीं देखना चाहती थी, फिर भी कुछ कहते उसे संकोच हो रहा था।

इरा ने एक बार शंख की ओर देखा।

शंख को इरा के ये तेवर बिलकुल न भाये। वह यह बात पसन्द नहीं कर सकता था कि इरा फिर यहीं चली आये, और वह भी इरा के साथ रहकर घरजमाई बन जाय।

"बीच-बीच में तुम उधर आ जाया करना, माँ !" शंख ने सोच-सोचकर कहा, "वह घर भी तो तुम्हारा है, माँ !"

"सो तो ठीक है, बेटा ! अब तो सब जवाबदेही तुम्हारे ही सिर पर है, चाहे उधर रहो, चाहे इधर। शंकर को लायक बनाना भी तुम लोगों का काम है। मेरा क्या है....." और इरा ने झट माँ के मुँह पर हाथ रख दिया।

माँ अपनी बात कहने से कब टलने वाली थी ?

"आज नहीं तो कल। कौन जाने मेरी आँखें कब बन्द हो जायँ ! मरने से क्या डरना ?"

"लाख बरस तुम्हारी उम्र हो, माँ !" इरा मुस्कराई।

"हाँ, लाख बरस !" शंख ने भी स्वर भरा।

माँ की आँखें चमक उठीं। एक पल का एक महीना माना जाय, एक दिन का एक बरस, तो यह हिसाब ठीक बैठ सकता है। हिसाब की बात ही तो है न, बेटा ! तुम तो जानते ही हो। संगीत-विद्या में भी यही हिसाब का खेल है सारा। हिसाब ही से चलता है ताल !"

इरा मुस्कराई, जैसे मुस्कान ही अब जीवन की टेक हो। इरा की

मुस्कान को कहीं रोक नहीं। वह मुस्कराती ही रही। बुद्धि से बड़ी है प्रीति ! मनमानी खुशियाँ देती है प्रीति। किसमें इतनी हिम्मत कि प्रीति की खिल्ली उड़ाये ! प्रीति नये घर बसाती है। प्रीति की धूप में मुस्कान के फूल खिलते हैं। व्याह की शहनाइयाँ भी तो प्रीति के ताल पर ही बजती हैं। व्याह के बिना तो इस मीना-बाज़ार में मन ऊब जाय। जिस अभिनेत्री का व्याह नहीं हुआ, उस पर लाख-लाख भौंरे मंडराते हैं। उसकी कोई इज्जत नहीं। लहू रगों में दौड़ता है, दौड़ता-दौड़ता आग-सी जला जाता है। इस आग को ठण्डा करती है प्रीति ! मीना-बाज़ार में व्याह की खबरें आये-दिन उड़ा करती हैं। व्याह की खबर ! यही तो वह दाना है, जिसे मीना-बाज़ार में सपनों का कबूतर चुगता है !···

"क्या सोच रही हो, बेटी ?"

"कुछ नहीं, माँ !"

शंख मुस्कराया।

शंकर ने रेडियो लगा दिया। यह कोई लोक-गीत था, जिसके सुर धीरे-धीरे डोल रहे थे।·······'रत्ताई रत्ताई रे गाई पुअरत्ता। आऊरी रत्ताई जे धर्म-देवता !' यह कोई उड़िया लोक-गीत था—लाल रंग का है रे, लाल रंग का। गाय-पूत है लाल रंग का ! उससे भी अधिक लाल है धर्म-देवता !···गीत की पृष्ठभूमि में मानो आगे-पीछे जुड़े छकड़े बढ़े चले जा रहे हों जंगल के मार्ग पर ! बड़े-बड़े गाछ झूल रहे थे। गाड़ीवानों का बैल हाँकने का स्वर बीच-बीच में उभर रहा था।···माँ बड़े ध्यान से सुनती रही।

"हम भी छकड़े के बैल हैं।" माँ ने गम्भीर मुद्रा बनाकर कहा, "यह सब बोझ तो ढोना ही होगा। गाय-पूत की धर्म-देवता से तुलना की जायगी बार-बार ! उससे क्या फ़र्क पड़ता है ? बोझ तो बोझ है, वह तो ढोना ही होगा। मदन बाबू आये। उनका बोझ मैंने ढोया ! या शायद मदन बाबू ने मेरा बोझ ढोया। शंख बेटा, अब तुम्हारा बोझ

ढोयेगी मदन बाबू की बेटी इरा ! या यह कहो कि तुम ढो ले चलोगे मदन बाबू की बेटी इरा का बोझ !…"

"ज्यादा बोलना तो ठीक नहीं, माँ !" इरा ने चेतावनी दी।

माँ की आँखों में अब भी कोई आग जल रही थी।

रेडियो से अब उस्ताद फैयाज़ खाँ की गाई हुई ठुमरी आ रही थी —बाजूबन्द खुल-खुल जाय !…यह ठुमरी माँ को पसन्द थी। मदन बाबू इस ठुमरी की अक्सर फरमाइश किया करते थे। "हालाँकि मैं फैयाज़खाँ जैसा नहीं गा सकती, बेटा ! पर मदन बाबू यह ठुमरी मुझसे सुने बिना न मानते थे।"

माँ की आँखों में आँसू आ गए। इरा ने हाथ बढ़ाकर माँ के आँसू पोंछ दिए।

माँ बोली, "जाकर अपने डैडी की फ़ोटो तो उठा लाओ, बेटी !"

इरा वह फ़ोटो लेती आई। फ़ोटो में मदन बाबू की बड़ी-बड़ी आँखें मानो 'बाजूबन्द खुल-खुल जाय' सुनकर ही नाच उठी थीं। माँ बोली, "देख लो, मदन बाबू ! अपने जमाई को देख लो। शंख तुम्हारी इरा का दूल्हा है। नामी संगीतकार ! नामी संगीतकार का शिष्य ! उस्ताद रुद्रपदम् का शिष्य ! उसे देख लो !" माँ विभोर हो गई। शंख ने मदन बाबू की फ़ोटो को प्रणाम किया।

इक्कीस

नीलू एक मास से वरकला में थी। आज की डाक से 'फ़िल्म इण्डिया' का अंक आया, तो उसकी दृष्टि इसके विवाह-स्तम्भ पर पड़ी, जिसमें इरा और शंख के फोटो के नीचे लिखा था : नव-दम्पती।

पहले तो उसने सोचा कि 'फ़िल्म इण्डिया' का यह अंक अपने पिता से छिपा ले। फिर उसने पहले यह वचन लेकर कि वे वरकला में यह खबर किसीको नहीं बतायेंगे, उन्हें वह चित्र दिखा दिया।

नव-दम्पती के चित्र के साथ विशेष लेख प्रकाशित हुआ था। पत्रिका के विशेष संवाददाता ने शंख और इरा का अलग-अलग इन्टरव्यू लेकर यह लेख तैयार किया था।

लेख का शीर्षक था : 'अन्तिम चट्टान के मछुवे को इरा मिल गई !'

लेख का आरम्भ एक लोक-कथा से किया गया था, जिसका सम्बन्ध कन्याकुमारी की अन्तिम चट्टान से था।

इस लोक-कथा का नायक था एक मछुवा :

"एक था मछुवा, कन्याकुमारी का वासी। सीधा, मनमौजी।

उसमें ज़रा भी झिझक नहीं थी। गाता था मज़े के गीत। सुनने वालों का मन मोह लेता था।

पर मोह न सका वह उस कन्या का मन, जिसे वह अपने सपनों की रानी कहता था अपने गीतों में !

अंधियारे में करें उजियारा, ऐसे थे उसके गीत।

जाल उठाकर कभी नहीं निकलता था वह मछली मारने। बस वह गाता था। संगीत बन सके मछली-जाल, यही थी उसकी अन्तिम साध! कन्याकुमारी की अन्तिम चट्टान पर बैठ बजाता जादूभरी बाँसुरी। वह मछुवा नहीं था। वह था बाँसुरी वाला—गीतों का रसिया।

देश-काल से ऊपर उठते गए उसके गीत।

बढ़ता गया आत्मविश्वास।

लगती गई प्रतिभा की छाप उसके गीतों पर! स्वर-खूँटी से बँधे गीत अनमोल थे। चाँदनी के खेत में, अनजानी पगडण्डी पर, गलबाँही प्रीति स्वयं देती थी अपना परिचय शंख-सीपियों को!

कहता था उसका गीत: सागर-जल ठण्डा है! झाग-सेज पर अलसाता था गीत, सपने के तकिये पर सिर रख! झाग-पटी लहरों पर थिरक-थिरक चलती शुभ्र चाँदनी! मुख से रूखी लटें हटाती। स्वर का काँटा चुभ-चुभ जाता। गीत का सरगम कुछ ऐसा ही होता था! हौले-हौले खिलती थीं छवियाँ।

बड़ा ही लापरवाह था, बड़ा ही बावला। आप-ही-आप बजाते रहना बाँसुरी, यही उसकी आदत थी।

कोई भी पूनम ऐसी न जाती थी, जब वह गाता न हो, कन्याकुमारी की अन्तिम चट्टान पर।

नन्हे-मुन्ने शंखों की माला पहने दूर से सुनती थी मछुवे की बेटी अपने प्रेमी के गीत। एक कान से सुनती थी, दूसरे कान से निकाल देती थी। गीत की हार। प्रेमिका नकचढ़ी थी। कान नहीं देती थी कभी पगले प्रेमी के गीत पर!

एक रात आई पूनम, चल पड़ा गीत का जादू! रात-भर बजती रही बाँसुरी।

सवेरे उठकर लोगों ने देखा, अन्तिम चट्टान पर पड़ी थी मछुवे गायक की मृत देह!

तब से टिकी चाँदनी में सुनाई दे जाती है बाँसुरी। लोग कहते हैं,

चाँद-तारों की रागिनी बज-बज उठती है। उस गायक प्रेमी की आत्मा आज भी ढूँढ़ रही है उस मछुवे की बेटी को, जिसे उसने दी थी अपने हाथों में, नन्हे-मुन्ने शंखों की सुन्दर अनमोल माला !

नीलू ने आगे पढ़ा :

कन्याकुमारी की अन्तिम चट्टान के गायक ने आखिर ढूँढ़ पाई बम्बई में अपनी गुम हुई प्रेयसी। इरा वही प्रेयसी है। शंख वही मछुवा गायक। शंख-इरा का व्याह। नव-दम्पती को सौ-सौ बधाइयाँ।

संगीतज्ञ ने अभिनेत्री का मन चुरा लिया।

दुश्मनों के सीनों पर इस विवाह से साँप लोट गए। उनकी दुआएँ खोटे सिक्के सिद्ध हुईं।

जब से इरा और शंख का विवाह हुआ है, बम्बई के मीना-बाज़ार में हुड़दंग मचा है। लोग बे-सिर-पैर की बातें उड़ा रहे हैं। डाइरेक्टर-प्रोड्यूसर जयन्त देसाई और उनकी हालीवुड-कट पत्नी उर्वशी पर छींटे कसने में लोगों को मज़ा आ रहा है, जिनके घर चोरी-छिपे इरा का जीवन अग्निदेव की आँखों में धूल डालकर शंख के साथ बाँध दिया गया। मनोज सान्याल की पूजा बेकार गई। इरा ने हमेशा के लिए डाइरेक्टर सान्याल के प्रेम को ठुकरा दिया।

इरा की माँ स्टूडियो में काम करते-करते इरा के ब्याह की खबर सुनकर बेहोश हो गई ! सात पुश्तों की तवायफ़ के हाथ से हीरों की खान छिन गई !

फ़िल्म-स्टार इरा का वक्तव्य :

"आखिर मुझे वह पुरुष मिल गया, जिसने नीले घोड़े पर सवार होकर मेरे दरवाज़े पर आना था। माँ की लोरी में जिसके आने की खबर मैंने पहले-पहल सुनी थी। वैसा ही डीलडौल, वैसा ही नाक-

नक्शा। प्रेम के छलकते कटोरे-सा मन। शंख नीले घोड़े पर नहीं, संगीत के घोड़े पर चढ़कर आया। मुझे लगा, वही आ गया जिसका मुझे सदा इन्तजार रहा; जिसका मैंने सदा अपनी गुड़िया से ब्याह किया था। शंख को पाकर मेरा सपना साकार हुआ।"

यह सब वर्णन पढ़कर नीलू बहुत प्रसन्न हुई। उसका जी चाहा कि उड़कर बम्बई चली जाय।

बाईस

'गुरुदेव' रिलीज़ हुए एक महीना हो गया था। अनेक पत्रों ने इसे इस वर्ष की सर्वोत्तम फ़िल्म घोषित किया, पर यह बॉक्स आफ़िस हिट न हो सकी। घाटे के कारण जयन्त दूसरों की फ़िल्मों में काम करने को विवश हो गया।

जयन्त देसाई ने सारा क्रोध उर्वशी पर निकाला—कास्ट ही घिसी-पिटी चुनी।

सवेरे की धूप में जयन्त को उर्वशी से उलझते देर न लगी, जब हर कोई अपने-अपने काम पर निकल रहा था। पहले तो जयन्त को लगा, उर्वशी की देह उस साड़ी की तरह है, जो रेलिंग पर सूखने को डाली हो। फिर वह उसकी बुद्धि के लिए सस्ती छींट की उपमा ढूँढ़कर मन-ही-मन उस पर खीझ उठा।

उर्वशी का मधुर स्वर आज जयन्त को काँटे की तरह चुभ रहा था। इस एप्रिल में जयन्त को हॉलीवुड से लौटे एक बरस पूरा हो जायगा। उसे लगा, उर्वशी ने 'गुरुदेव' बनाने का काम हाथ में लेकर मेरा अच्छा-खासा 'एप्रिल फूल' बनाया।

उर्वशी की मुस्कान भी जयन्त को आज अच्छी न लगी। उर्वशी हँसती है तो निरी किन्नरी प्रतीत होती है, कल तक वह यही कहा करता था। सद्भावना जगाने वाली थीं उसकी बातें कल तक, आज नहीं।

"तो तुम्हारा मतलब है, मेरी ही बे-अकली से तुमने 'गुरुदेव' में हाथ

डाला ?"

"और नहीं तो ? मैं क्या जानता था ? तुमने प्रशंसा के पुल बाँधे। मैं तुम्हारी बातों में आ गया।"

जयन्त को उर्वशी की माँग के सिन्दूर पर भी जैसे क्रोध आ गया। चाय का कप पड़ा-पड़ा ठण्डा हो गया। उसने छुआ तक नहीं। अब तो युद्ध समाप्त हो चुका था। युद्ध के दिनों में लोगों ने रद्दी-से-रद्दी फ़िल्में बनाईं और वे सफल हो गए। अब तो बहुत बुरा ज़माना है।

उर्वशी को जयन्त का क्रोध बे-मौके लगा। इस तरह तो 'गुरुदेव' बॉक्स ऑफिस हिट होने से रही ! कच्ची उम्र तो नहीं मेरी कि व्यर्थ धौंस सहूँ। व्यवसाय में क्या हमेशा नफ़ा ही होता है ? घाटा भी तो हो सकता है। यही स्वभाव बना रहा तो कैसे चलेगा जीवन ?

"तुम समझते हो, मेरा दिमाग़ खराब हो गया था कि 'गुरुदेव' का इतना अच्छा स्क्रीन-प्ले लिखा !"

"अब आगे ऐसी दरियादिली न दिखाना !"

"तो मुहूर्त निकलवाकर मुझसे बात किया करो।" उर्वशी की भौंहें चढ़ गईं।

जयन्त ने नरम होकर कहा, "जानती हो, हॉलीवुड की एक अभिनेत्री ने मुझसे क्या कहा था ?"

"कोई कसर रहती हो तो कह डालो वह भी !"

"जो पति-पत्नी सिर्फ़ एक-दूसरे की हाँ-में-हाँ मिलाते हैं और भूलकर भी लड़ते नहीं, वे एक-दूसरे के लिए जैसे हुए जैसे न हुए। मतलब यह कि जिनकी कभी आपस में खटपट नहीं होती—जिसे कहते हैं दो कौमों की लड़ाई, उसकी छोटी रिहर्सल जिनके घर में कभी नहीं होती—वे सचमुच व्याह का खेल तो खेल सकते हैं, पर जिस चिड़िया का नाम है मुहब्बत, उस चिड़िया की उड़ान तो वे बिलकुल नहीं भर सकते।"

"तो आज तुम लड़ नहीं रहे थे, मुहब्बत की रिहर्सल कर रहे थे ?"

जयन्त हँस पड़ा। लड़ाई की आँधी जैसे छू भी न गई हो। "प्रथम

कोटि के कलाकारों की माँग बढ़ने लगी है।"

"मैं तो यह पसन्द नहीं करती कि नायक-नायिका की भूमिका के लिए इने-गिने सितारों से ही काण्ट्रेक्ट किया जाय।"

"सितारों के बिना फ़िल्म बनाओ और घाटे में रहो, यह भी तो मूर्खता है।"

"मैंने सोचा, जयन्त भी शान्ताराम के रास्ते पर चले। शान्ताराम कैसे नामी सितारों के बिना ही अपनी गाड़ी ठेल ले जाता है?"

"सारी बात तो डिमांड और सप्लाई की है। हम क्या कर सकते हैं? हमारी सफलता की चाबी तो डिस्ट्रीब्यूटर के हाथ में रहती है। डिस्ट्रीब्यूटर आगे पब्लिक की आवाज़ पर चलता है।"

"हम पब्लिक टेस्ट को बदल भी सकते हैं।"

"तो तुम बैठी यह टेस्ट बदलने का ठेका लेती रहो। उसके दिल से पूछो जिसकी पहली ही फ़िल्म बॉक्स ऑफ़िस हिट नहीं हो सकी।"

पति-पत्नी जानते थे कि सितारों को अधिक रुपया देने की बात दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ रही है। इसके मारे फ़िल्म-निर्माण का खर्च बढ़ गया। यही हालत रही, तो बहुत से निर्माता दुम दबाकर भाग जायँगे।

"नये-नये कलाकारों को अवसर दिये बिना फ़िल्म-इण्डस्ट्री की गति नहीं, और 'गुरुदेव' बनाते समय मेरे सामने यही आदर्श रहा।"

"बात तो ठीक है। देश में प्रतिभा की कमी नहीं। नये-नये परिश्रमी और पढ़े-लिखे कलाकार मिल सकते हैं। पर मैं तो बाज़ आया। नई प्रतिभा ढूँढने का रास्ता तो मुझे ले डूबेगा। अब तो मैं हॉलीवुड के नुस्खे जोड़-जाड़कर ही चलूँगा। नुस्खे वाली कहानी, नामी सितारे, चुलबुलिया नाच-गाने। फिर देखो, गाड़ी कैसे दौड़ती है।"

"सामने कोई आदर्श नहीं रहेगा?"

"नहीं।"

"पैसा ही माई-बाप होगा?"

"बिलकुल।"

फिर वार्तालाप का रुख सुविख्यात और यशस्वी निर्देशक महवूब की तरफ घूम गया, जिसका बचपन घोड़ों के अस्तबल में बीता। नौकरी की तलाश उसे बम्बई में लाई। एक 'एक्स्ट्रा' के रूप में वह फ़िल्म के मीना-बाज़ार में घुसा। वेतन के नाम पर बिना फूटी कौड़ी पाये यहाँ वर्षों काम किया। फिर धीरे-धीरे निर्देशक के रूप में चमकने लगे, और एक फ़िल्म का एक गीत—'तुम्हीं ने मुझको प्रेम सिखाया!' अपने समय में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। "महबूब ने ही हमें 'औरत' और 'रोटी' जैसी फ़िल्में दीं!" उर्वशी की आँखें चमक उठीं, "'गुरुदेव' तो तुम दुबारा बनाने से रहे, कोई 'औरत' या 'रोटी' जैसी चीज़ ही दो। या फिर 'न्यू थियेटर्स' की 'मुक्ति' या 'मंजिल' की याद ताज़ा करो।"

"चाहता तो मैं भी यही हूँ। मेरे भी बड़े-बड़े सपने हैं। पर सारी बात तो ठनठनगोपाल की है।"

"पैसा, पैसा, पैसा! क्या बस यही तुम्हारी कला है?"

"पैसा कहाँ है? जो था 'गुरुदेव' में डूब गया। मुश्किल से खर्च पूरा किया। नफ़ा तो फूटी कौड़ी नहीं हुआ।"

"इस वर्ष की सर्वोत्तम फ़िल्म का श्रेय पा जाओगे, यह क्या कम है? इस श्रेय का क्या कुछ भी मोल नहीं?"

"मैं बाज़ आया। अब मैं अपना रास्ता अपनी ही अकल से चुनूँगा।"

'गुरुदेव' को बम्बई के सबसे बड़े सिनेमा-हाउस में रिलीज़ किया गया था और निर्देशक महबूब ने अपनी एक फ़िल्म के लिए इस समा-रोह को विशेष रूप से फ़िल्मबद्ध किया था। इस प्रसंग पर उर्वशी जितनी झूमती रही, उतना ही जयन्त 'गुरुदेव' की आर्थिक असफलता पर कुढ़ता रहा।

तेईस

शंख अब इरा को लेकर माँ के साथ रहने लगा था—पक्का घर-जमाई। पर इस स्थिति पर तो उसे आपत्ति न थी। कुछ मित्रों ने उसे भाग्यशाली कहा; मैना ने उसे दूसरा वेटा मान लिया; इरा उसे मन-प्राण से चाहती थी। शंकर को 'भाई साहब' मिल गए थे। बम्बई में और क्या चाहिए ? बना-बनाया घर। जिसका घर है बम्बई में, उसे काम की कमी नहीं। जो वे-घर हैं, फुटपाथों पर सोते हैं, उन्हें काम नहीं मिलता; मिलता भी है तो इतना नहीं कि रहने को घर मिल सके। वे बम्बई में काम करते थे और बम्बई को गालियाँ देते थे।

"जिसके पास घर है, उसे तो पूरी बोतल का नशा है !" "जिसकी बीवी एक्ट्रेस है, उसे काम करने की क्या ज़रूरत ?" "जिसका घर है, उसके तो दरवाज़े पर आता है काम। वह क्यों मारा-मारा फिरेगा काम के पीछे ?"—ये तीन टोटके शेखर आर्टिस्ट से हाथ लगे, तीन मुलाकातों में।

पहली मुलाकात बहुत मज़ेदार रही। शेखर उसे महालक्ष्मी में फ़ेमस बिल्डिंग में ले गया। उन्होंने देखा कि यह बिल्डिंग अपने भीतर फ़िल्म-कम्पनियों का पिटारा लिये खड़ी है। बम्बई की पचहत्तर प्रतिशत कम्पनियों के दफ्तर तो इसी बिल्डिंग में हैं। फेमस बिल्डिंग की सैर से थककर इसी बिल्डिंग के एक रेस्तराँ में वे चाय पीने बैठे, तो वहाँ एक विचित्र-से प्राणी ने बिना पूरी तरह परिचित हुए शंख के सामने से

चाय का कप अपनी तरफ़ सरका लिया था। पूछने पर उसने बताया था कि वह 'असिस्टेण्ट सौंगस्मिथ' है। फ़िल्म के कवि के लिए अंग्रेजी के 'गोल्डस्मिथ' [सुनार] और 'ब्लैकस्मिथ' [लोहार] की तर्ज़ पर 'सौंग-स्मिथ' शब्द बहुत विचित्र था। उस प्राणी ने बताया था कि वह तुकान्त शब्दों की लम्बी-चौड़ी सूची लिये घूमता है, और आवश्यकतानुसार गीतकार को काम देने लायक शब्दों पर उँगली रखने में मदद दे सकता है।

दूसरी मुलाकात में फेमस बिल्डिंग के उसी रेस्तराँ में शेखर ने शंख की भेंट राज राज अनुपम से कराई थी जिसने 'माँग का सिन्दूर' के गाने लिखकर ख्याति प्राप्त की थी। अब राज राज अनुपम एक साथ पाँच फ़िल्मों के लिए गाने लिख रहे थे। राज राज अनुपम ने बम्बई के मीना-बाज़ार में अपने प्रवेश का इतिहास बताया, "उस अपमान की चर्चा ज़रूरी है जो हमें घटिया दरजे की रिहायश के कारण सहना पड़ा। एक प्रसिद्ध प्राणी का नाम नहीं लूँगा। इस समय तो वह एक सफल निर्देशक हैं। हम दोनों, बनने वाले फ़िल्मी गीतकार और निर्देशक, किसी तरह एक पनवाड़ी के मित्र बन गए थे। दिन के समय तो हमारे बिस्तर पनवाड़ी की दूकान के भीतर रख दिये जाते। रात को हम वहाँ से बिस्तर उठाते और फ़ुटपाथ पर लगाकर खर्राटे भरते। कई महीने तक हमारे बूट घिस गए, फ़िल्म-कम्पनियों में चक्कर लगाते। फिर एक निर्माता-निर्देशक से हमारी जान-पहचान हो गई। हमें एक साथ काम मिला पहली बार और काण्ट्रैक्ट भी हो गया। रात को निर्माता-निर्देशक के साथ मिलकर हमें पीने-पिलाने की दावत मिली। जब हम पूरी तरह नशे में थे, तो निर्माता-निर्देशक ने ज़िद शुरू कर दी कि वह हमें हमारे स्थान पर छोड़कर आयेंगे। हम अपनी जगह की पोल कैसे बताते ? रास्ते में एक जगह हमने झगड़ा कर लिया। झगड़ा यही था कि निर्माता-निर्देशक पूछ रहे थे, किधर चलें और हम पता नहीं बता रहे थे। आखिरकार थाने जाने की नौबत आई। पुलिस

ने कार-मालिक को तो इज्जतदार समझकर छुट्टी दे दी, पर हमें हवालात में भेज दिया। हाँ साहब, हवालात से छुट्टी पाकर हमने कभी उस फ़िल्म-कम्पनी में जाने की तकलीफ़ न की। वह काण्ट्रेक्ट भी बिना काम किये ही टूट गया। फिर कैसे हमारा काम शुरू हुआ, क्या-पापड़ बेले, इसकी लम्बी कहानी है।" गीतकार के रूप में अपने अनुभव की तान कवि ने यों तोड़ी, "साहित्य को जितना ही फ़िल्मी गीत से दूर रखा जायगा, उतना ही फ़िल्मी गीत सफल होगा।"

तीसरी मुलाकात में शेखर ने शंख का परिचय एक लेखक से कराया। 'दामन' के नाम से यह सज्जन अनेक पत्रों के फ़िल्मी संवाददाता थे। पर दामन साहब का सपना था कि कला और संस्कृति पर एक महान् ग्रंथ लिखकर ख्याति प्राप्त करें।

तीनों मुलाकातों में जहाँ शंख को शेखर से तीन टोटके मिले, वहाँ तीनों मित्रों ने शंख को यही उपदेश दिया, "और नीचे उतरो! और नीचे! और नीचे!"

मैना की ऐक्टिंग 'गुरुदेव' में बहुत पसन्द की गई। उसे कई फ़िल्मों में 'माँ' की भूमिका मिल गई थी।

इरा कहती, "या तो तुम जयन्त की नई पिक्चर में जैसा घटिया दरजे का संगीत माँगता है, वैसा ही दे डालो, या फिर इस बात की चिन्ता ही छोड़ दो कि तुम्हें काम नहीं मिलता।"

यही तो शंख की कमज़ोरी थी। दूसरा महायुद्ध समाप्त हो चुका था। विजय के उल्लास में सरकार ने खूब रोशनी की थी। अपना-अपना टेस्ट है। सरकार ने 'वी' लिख-लिखकर 'विकटरी डे' की धूम मचाई और हमारे देश के मसकाबाज़ों की भी कुछ न पूछिए, जिन्होंने सरकार को यहाँ तक बताया कि 'वी' तो वेदों में भी आई है—'विजय' और 'विक्टरी' को उन्होंने खूब गले लगाया!

इरा पैसा कमा रही थी। पर शंख को यह बात काँटे की तरह चुभ रही थी कि स्त्री कमाये और पुरुष बैठकर खाये।

जब से नीलू वरकला से लौटकर आई थी, शंख को पंचानन का बार-बार ध्यान आने लगा था। पंचानन का फ़ोटो नीलू स्वयं उसकी अलबम में लगा गई थी। कई बार शंख अपने मन को समझाता, "शायद यह बात सत्य नहीं कि पंचानन के रूप में गुरुदेव का दोबारा जन्म हुआ है। पंचानन तो मछुवे का बेटा है। वह तो मछुवा बन सकता है। संगीत सीखकर उसे क्या मिलेगा? पर वह अतिथि, जो हमारे घर आ रहा है, उसे भी तो संगीत सिखाना होगा। यह ठीक है कि उसकी नानी भी उसे संगीत सिखा सकेगी। पर मेरा भी तो कुछ कर्तव्य है। मैं एक मूर्तिकार का बेटा होकर मूर्तिकला न सीख पाया। अब मैं अपने बेटे को वरकला ले जाऊँगा एक दिन। वह अपने दादा से मूर्तिकला सीखेगा, और अपने पिता से संगीत भी। उसके साथ दो परम्पराएँ चलेंगी।

चौबीस

मुक्तिबोध ने एक दिन शंख और गोविन्दन को रात के खाने पर बुलाया। दोनों मित्र जानते थे कि 'गुरुदेव' में सफल चरित्र-नायक का अभिनय करने से उसका सितारा चमक गया है। पर मुसीबत तो यह थी कि जब बड़े-बड़े निर्माता-निर्देशक स्वयं उसके डेरे पर आकर उसके साथ काण्ट्रेक्ट की बात चलाते तो वह कहता, "पहले मुझे कहानी तो पढ़वाइए।"

"ये नखरे तो ठीक नहीं, मुक्ति बाबू !" गोविन्दन मुस्कराया, "पैसे देने वाला जो नाच चाहे नचवाये।"

"न्यू थियेटर्स के बाद एक ही पिक्चर बनी 'गुरुदेव !' वह चली नहीं। अब हम क्या काम करेंगे ? अब हम अपने कबूतरों से दोस्ती करेंगे !"

शंख और गोविन्दन के हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गए।

एक अभिनेत्री की बात चली, तो मुक्तिबोध बोले, "उसकी बात छोड़ो। वह नायिका नहीं, मूर्ति-सी लगती है ! उच्चारण एकदम भाव-हीन, भगवान् बचाये !"

"विरह-मिलन और लुका-छिपी वाली कहानी भेस बदल-बदलकर परदे पर आती है।" शंख मुस्कराया, "क्या एक ही कहानी रह गई ?"

गोविन्दन ने प्रसंग बदलकर कला-निर्देशन, छवि-अंकन और ध्वनि-लेखन से सम्बन्धित कई चुटकुले सुना डाले। फिर उसने निर्माता-

निर्देशक सोहराब मोदी की आलोचना की, "सोहराब के अभिनय में से परम्परागत नाटकीयता निकाल दीजिए, फिर बताइए कितनी कला बच रहती है ?"

"सोहराब के बारे में यों सोचना उनके साथ अन्याय है।" मुक्तिबोध चुप न रह सके, "हमें यह न भूल जाना चाहिए कि सोहराब मोदी एकमात्र निर्माता-निर्देशक हैं, जिन्हें हमारे इतिहास के कुछ पात्र फ़िल्म के परदे पर बड़े ही सजीव और कलापूर्ण ढंग से लाने का श्रेय प्राप्त है।"

शंख को लौटने की जल्दी थी। गोबिन्दन रुक गया।

मुक्तिबोध बोले, "मेरा अपना खयाल यही है कि अब तक के चित्रों में इरा ने सर्वोत्तम भूमिका 'माँग का सिन्दूर' में ही की है। इरा और मनोज की जोड़ी बहुत लोकप्रिय है।"

"अब एक पिक्चर में जयन्त और इरा की जोड़ी देखने को मिलेगी।"

"पर जयन्त तो हालीवुड से अमरीकी टाइप की विदूषक शैली सीखकर आया है। इरा के साथ मनोज का ही मेल है, क्योंकि दोनों ही गम्भीर और उदास कलाकार हैं। 'हाट-बाज़ार' से मनोज और इरा की जोड़ी शुरू हुई और 'माँग का सिन्दूर' के साथ टूट गई।"

"अब देखें 'घर-बेघर' में जयन्त और इरा की जोड़ी कैसी रहे ?"

"मैं देखता आया हूँ, इरा सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री है। उसे देवी मानकर लोग उसकी पूजा करते हैं। मीना-बाज़ार के चुलबुलिया, जगमग-जगमग वातावरण में एक देवी का क्या काम ? पर ऐसी सरल और सीधी-सादी एक्ट्रेस दूसरी नहीं। बिना मेक-अप के ही घर से बाहर निकलने वाली दूसरी एक्ट्रेस नहीं मिलेगी।"

"एक तवायफ़ की लड़की होकर देवी की पदवी पाना मामूली बात तो नहीं।"

"मैना की बेटी है इरा। उसके पिता मदन बाबू बड़े दिल-गुर्दे वाले इन्सान थे। मेरे तो उनके साथ बहुत मरासिम थे। इरा ने मैना

से रूप पाया, बाकी सब विशेषताएँ उसे पिता से मिलीं।"

"शंख के साथ विवाह करने के बाद मुझे तो भय था कि इरा का मोल मीना-बाज़ार में बहुत गिर जायगा।"

"विवाह के बाद इरा ने जो वक्तव्य दिया, उसने तो लोगों के दिल में उसके प्रति लाख गुनी श्रद्धा जगा दी।"

"सो तो ठीक है। मीना-बाज़ार में तो आज व्याह होता है, तो कल यह सम्बन्ध टूट भी जाता है।"

"इरा ऐसी अभिनेत्री नहीं। उसने तो अपने वक्तव्य में साफ़-साफ़ कह दिया था कि वह कोई षोड़षी नहीं। देखा नहीं था, 'फ़िल्म-इण्डिया' में शंख-इरा के विवाह पर कितना सुन्दर लेख छपा था! उन लेख को पढ़कर इरा ने फिर दूसरा वक्तव्य दिया था, जिसमें उसने 'फ़िल्म इण्डिया' को बधाई दी थी कि इतनी सुन्दर शैली में 'अन्तिम चट्टान के मछुवे को इरा मिल गई!' जैसा शीर्षक दिया गया।"

"मुझे तो आशा नहीं थी कि 'फ़िल्म इण्डिया' में इरा पर तीखा कटाक्ष करने से वे लोग चूक जायँगे।"

"यह एक और प्रमाण है इरा के चरित्र-बल का।"

"दूसरे वक्तव्य में इरा को यह कहने की क्या ज़रूरत थी कि अब शंख ही उसकी चर्चा और प्रशंसा का केन्द्र है, या यह कि शंख ही उसके मन पर प्रथम और अन्तिम आटोग्राफ है! ऐसा तो होता ही है। फिर इसका खास तौर पर ढोल बजाने की क्या ज़रूरत थी?"

"और हाल ही में तीसरा वक्तव्य भी तो दिया है इरा ने, जिसमें उसने बताया है कि वह माँ बनने वाली है। स्पष्टवादिता तो इरा पर खत्म है!"

" 'घर-बेघर' तो उसके माँ बनने से पहले ही रिलीज़ हो जायगी।"

"मैंने सुना है कि इरा के तीसरे वक्तव्य के बाद उसके प्रशंसकों की ओर से बधाई के हज़ारों पत्र उसे प्राप्त हुए हैं।"

"मैंने सुना है कि नीलू और इरा ने मिलकर त्रिमूर्ति थियेटर को

जन्म दिया है ! एक नाटक में, जिसे नीलू ने ही लिखा है, नीलू साइड हीरोइन है और इरा हीरोइन। यह नाटक भी शायद इरा के माँ बनने से पहले ही खेला जाय। दामन साहब कह रहे थे कि त्रिमूर्ति थियेटर का अपना भवन भी शीघ्र ही तैयार होने वाला है !" कहते-कहते मुक्तिबोध ने गोबिन्दन की तरफ देखा। "तुम्हें शायद नींद आने लगी। एक बात है, हमारे देश में सिनेमा ने रंगभूमि को बहुत नुकसान पहुँचाया। त्रिमूर्ति के काम में हमें भी उन लोगों का हाथ बँटाना चाहिए।"

रात बहुत चली गई थी। गोबिन्दन ने विदा लेकर सुख की साँस ली।

पच्चीस

इरा बहुत उदास रहने लगी थी। कभी-कभी वह माँ से कहती, "किसी ने ठीक ही कहा है—'विधाता ने केवल नारी का हृदय बनाया है, उसका रूप-आकर्षण तो शैतान की कल्पना है!' "

"और वह नहीं सुनी ?" माँ उत्तर देती, "पुरुष के पास केवल इच्छाएँ हैं, स्त्री के पास उन्हें पूरा करने की तरकीबें भी !"

माँ जानती थी कि शंख उसकी बेटी को अपने घर ले जाना चाहता है—वरकला ! "वहाँ जाकर तुम क्या करोगी, बेटी ? शंख तो पागल है।"

ऐसे अवसर पर माँ पुराने किस्से छेड़ देती, "आज तेरे डैडी मदन बाबू होते, तो वे भी यही राय देते। मुझे तो यह नाम ही अच्छा नहीं लगता। वरकला किधर का नाम है ! तुम वहाँ जाओगी, तो मैं भी कुछ खा मरूँगी। शंकर को भी ले जाना अपने साथ।"

इरा की आँखों में आँसू आ जाते। माँ कुछ और कहना चाहती। वह माँ के मुँह पर हाथ रख देती।

माँ सँभलकर अपनी सहेली जद्दन बाई की कहानी ले बैठती, "१९२९ में जद्दन बाई के यह लड़की जन्मी, जिसे तुम नरगिस के नाम से जानती हो। इसका जन्म का नाम था फ़ातिमा कनीज़ !"

"उसे तो बेबी रानी कहते थे, माँ !"

"सुनो-सुनो ! बेटी के जन्म के बाद जद्दन बहुत दिन बीमार रही। उसके पति मोहन बाबू तेल-फुलेल बेचकर कितना कमा सकते थे ! जद्दन

के ज़ेवर बेचने तक की नौबत आ गई। किसीके बुरे दिन न आएँ। फिर बेचारी में कुछ दम आ गया तो दोबारा मुजरा जमा सकी। जद्दन के गाने पर जान देने वालों में के० एल० सहगल भी थे। दुनिया कुछ बदल गई थी। कोई चीज़ जद्दन के दिल में मर गई थी।"

"लाहौर भी तो गई थीं जद्दन बाई ?"

"१६३१ की बात है। लाहौर में हिन्दुस्तानी प्रोड्यूसर फ़िल्म बनाने की तरफ़ ध्यान दे रहे थे। फ़िल्म में प्ले-बैक अभी नहीं चला था। इस लिए तवायफ़ को ही फ़िल्मी हीरोइन बनाने की बात सोची जाती थी। हकीम रामप्रसाद लाहौर से कलकत्ता पहुँचे और जद्दन बाई को 'राजा गोपीचन्द' में हीरोइन बनाने के लिए राज़ी कर लिया। तवायफ़ों ने बहुत बावेला मचाया।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि वे थियेटर और सिनेमा को अपने पेशे से भी गिरा हुआ समझती थीं। तवायफ़ के मुँह पर यही बोल आता था—अरे हमारी तो राजा-महाराजा सरपरस्ती करते हैं और फ़िल्म भंगी-चमार भी देखते हैं। पर वाह री जद्दन ! वह अपने खानदानसहित लाहौर जा पहुँची। ऐक्टिंग के बाद जद्दन बाई ने मुजरा करना छोड़ दिया। एच० सी० बाली के साथ, जो अब म्यूज़िक डाइरेक्टर हैं, जद्दन बाई ने हीरोइन का रोल किया। फ़िल्म रिलीज़ होने पर ज़द्दन ने पब्लिक में अपना गाना सुनाया, तो सर सिकन्दर हयात ने उसे मल्का-ए-मौसीकी कहकर याद किया।"

"लाहौर से वे बम्बई आ गईं ?"

"सागर मोवीटोन की 'शाही रक्कासा' फ़िल्म का हीरो था याकूब। हीरोइन थी जद्दन बाई। उसी फ़िल्म में तो वह गाना था...."

"कौनसा ?"

"बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाय !"

"संगीत मोवीटोन बनाने का ख़याल कैसे आया था, जद्दनबाई को ?"

"वक्त-वक्त की बात है। अपनी कम्पनी से उसने तवायफ़ की ज़िन्दगी पर 'तलाशे हक' बनाई, जो कामयाब रही।"

" 'मैडम फ़ैशन' भी तो बनाई थी ?"

"उसी में तो नरगिस ने पहली बार एक बच्ची का रोल किया था। उन दिनों नरगिस क्वीन मेरी हाई स्कूल में पढ़ती थी। माँ की बेबी रानी नरगिस ने 'जीवन-सपना' और 'दिल की पुकार' में भी छोटी उम्र के रोल किये। बेबी रानी कोई छः बरस की रही होगी। तब वह तुम्हारी ही तरह चौपाटी पर घूमा करती थी। हाँ तो 'दिल की पुकार' किसी काम की फ़िल्म न बनी। 'जीवन-सपना' भी चौपट। लेकिन वाह री जद्दन ! क्या मजाल हार मान ले ! 'मोती का हार' शुरू कर दी।"

इरा एक बार इस कहानी में फँसकर बाहर नहीं निकल सकती थी। वही सुनी-सुनाई बातें। पर माँ हर बार नमक-मिर्च लगाकर पेश करती। कभी कहती, "नरगिस को गाने से दिलचस्पी न थी। अमानत खाँ को तालीम के लिए रखा गया, पर नरगिस का वही 'गला खराब है' का बहाना। या मुँह-हाथ धोने के बहाने चुपके से बैडमिण्टन खेलने निकल जाती। नाच की तालीम पर मास्टर लच्छू महाराज रखे गए। उन्होंने भी यही फैसला दिया—'नरगिस नाच-गाना कतई नहीं सीखेगी। बेकार रुपया और वक्त जाया करने से क्या फायदा ?" कभी कहती, "महबूब ने अपनी फ़िल्म-कम्पनी से पहली फ़िल्म 'तकदीर' में नरगिस को हीरोइन बनाया और 'तकदीर' ने नरगिस की तकदीर ही बदल डाली।" कभी कहती, "एक बार का किस्सा है। केसर बाई केसकर गा रही थीं, तो एक उस्ताद बोल उठे—केसर बाई का जवाब नहीं। जद्दन बाई जल-भुन गईं। सोचा, उस्ताद ने बहुत बड़ी बात कह दी। इसमें तो हिन्दुस्तान-भर के हर गाने वाले की हतक हुई। गाना बन्द, जद्दन बाई की बहस शुरू हो गई। उस्ताद जी से बोली—'छोटा मुँह, बड़ी बात। पहले चूने की डिबिया से बाहर तो निकल आते, तभी बढ़-बढ़कर बोलते। उस्ताद बनने से पहले दुनिया-भर के गवैयों के

गाने सुने होते, फिर फैसला देने बैठते। ज़ाहिल लट्टू बैठ गए फैसला सुनाने। अरे मियाँ, अगर मैं एक टुकड़ा गा दूँ, तो नाक मिट्टी में घिस-घिसकर मर जाओगे। न समझ में आयेगा, न कुछ पल्ले पड़ेगा।' यह कहकर भन्नाती हुई वह महफ़िल से चली गई।" कभी कहती, "एक बार दोस्तों की महफ़िल में उस्ताद फ़ैयाज़ खाँ के एक रिश्तेदार शागिर्द ने अपना कमाल दिखाया। और लोगों ने भी हिस्सा लिया। जद्दन बाई से भी फ़रमाइश की गई। पहले तो उसने इन्कार किया कि उस्ताद के शागिर्द के बाद तवायफ़ का गाना ठीक नहीं। लोगों के मजबूर करने पर उसने गा दिया। उस्ताद फ़ैयाज़ खाँ को मालूम हुआ, तो उन्होंने ताना दिया—'जद्दन बाई इतनी नीची हो गई कि हमारे शागिर्दों से मुकाबला करने पर तुल गईं!' जद्दन बाई के दिल में यह बात काँटे की तरह चुभ गई। फ़ैयाज़ खाँ साहब से मुलाकात हुई तो बोली—'ज़रा अपने अलफाज़ फिर से दोहराइए।' उन्होंने फिर वही ताना दिया। पहले तो जद्दन ने अपनी मजबूरी बताई, फिर बोली—'उस्ताद खुद क्लासिकल गाना छोड़कर ठुमरी, जो औरतों का ही फ़न है, अख्तियार करके शोह-रत की बुलन्दियों को छू सके। जब उन्होंने अपने मतलब के लिए उसूलों को बालाए-ताक रख दिया तो किसी पर हमला करने का हौसला कैसे हुआ।' "

इरा की अपनी शिकायत पीछे रह जाती। माँ का घड़ा-घड़ाया उत्तर था, "तुम वरकला कहाँ जाओगी, बेटी?"

"तो शंख को रोको, वह भी न जाय।"

"वह जाना चाहता है, तो उसे कौन रोक सकता है! मैं तो कह चुकी हूँ, पंचानन को यहीं बुलवा लेते हैं। वह अपनी ज़िद नहीं छोड़ सकता, तो हम अपनी परम्परा कैसे छोड़ सकते हैं?"

"किसी तरह उसे रोको, माँ!"

"जाता है तो जाय। फिर आ जायगा। तुम दिल को पक्का रखो, बेटी! नरगिस का जीवन अपने सामने रखो। उसकी माँ सयानी

गाने सुने होते, फिर फैसला देने बैठते। जाहिल लट्ठ बैठ गए फैसला सुनाने। अरे मियाँ, अगर मैं एक टुकड़ा गा दूँ, तो नाक मिट्टी में घिस-घिसकर मर जाओगे। न समझ में आयेगा, न कुछ पल्ले पड़ेगा।' यह कहकर भन्नाती हुई वह महफ़िल से चली गई।" कभी कहती, "एक बार दोस्तों की महफ़िल में उस्ताद फ़ैयाज़ खाँ के एक रिश्तेदार शागिर्द ने अपना कमाल दिखाया। और लोगों ने भी हिस्सा लिया। जद्दन बाई से भी फ़रमाइश की गई। पहले तो उसने इन्कार किया कि उस्ताद के शागिर्द के बाद तवायफ़ का गाना ठीक नहीं। लोगों के मजबूर करने पर उसने गा दिया। उस्ताद फ़ैयाज़ खाँ को मालूम हुआ, तो उन्होंने ताना दिया—'जद्दन बाई इतनी नीची हो गई कि हमारे शागिर्दों से मुकाबला करने पर तुल गई!' जद्दन बाई के दिल में यह बात काँटे की तरह चुभ गई। फ़ैयाज़ खाँ साहब से मुलाकात हुई तो बोली—'ज़रा अपने अलफाज़ फिर से दोहराइए।' उन्होंने फिर वही ताना दिया। पहले तो जद्दन ने अपनी मजबूरी बताई, फिर बोली—'उस्ताद खुद क्लासिकल गाना छोड़कर ठुमरी, जो औरतों का ही फ़न है, अख्तियार करके शोहरत की बुलन्दियों को छू सके। जब उन्होंने अपने मतलब के लिए उसूलों को बालाए-ताक रख दिया तो किसी पर हमला करने का हौसला कैसे हुआ।' "

इरा की अपनी शिकायत पीछे रह जाती। माँ का घड़ा-घड़ाया उत्तर था, "तुम वरकला कहाँ जाओगी, बेटी?"

"तो शंख को रोको, वह भी न जाय।"

"वह जाना चाहता है, तो उसे कौन रोक सकता है! मैं तो कह चुकी हूँ, पंचानन को यहीं बुलवा लेते हैं। वह अपनी ज़िद नहीं छोड़ सकता, तो हम अपनी परम्परा कैसे छोड़ सकते हैं?"

"किसी तरह उसे रोको, माँ!"

"जाता है तो जाय। फिर आ जायगा। तुम दिल को पक्का रखो, बेटी! नरगिस का जीवन अपने सामने रखो। उसकी माँ सयानी

निकली। बेटी का ब्याह ही नहीं होने दिया। तुमने एक गलती तो कर डाली, अब दूसरी गलती यह करोगी कि उठकर उस पागल के साथ वरकला चल दो ?"

माँ फिर नरगिस का किस्सा ले बैठती, " 'तकदीर' के बाद वह 'रोमियो जूलियट' और 'इस्मत' में सफल रही।" कभी कहती, "युद्ध के दिनों में फ़िल्मों का अजब हाल था। लोग कूड़ा-करकट देखते और तालियाँ बजा देते।"

माँ की आलोचना सचमुच बहुत मंजी हुई थी। युद्ध के दिनों में गम्भीर फ़िल्मों की कहाँ खपत थी! फ़िल्मों का स्तर गिरता गया। पहले जैसी 'न्यू थियेटर्स', 'प्रभात' और 'बम्बई टाकीज़' की 'मंज़िल', 'मुक्ति', 'अधिकार', 'सन्त तुकाराम', 'पड़ोसी', 'आदमी' और 'अछूत कन्या' पीछे छूट गईं। अब तो लोग 'ल-ला-ल-ला' वाली फ़िल्मों पर झूमने लगे थे। शान्ताराम जैसे गम्भीर और उच्च स्तर के डाइरेक्टर ने भी पैसा कमाने की खातिर अपनी कला को ताक पर रख दिया। कहीं-न-कहीं से फ़िल्म का लाइसेंस हथियाकर हर कंगाल-निर्धन प्रोड्यूसर बन बैठा। बहुतों ने लाइसेंस बेच-बेचकर ही लाखों कमा डाले। फ़िल्म पर नहीं, लोग लाइसेंस प्राप्त करने पर मेहनत करते। बजट की बड़ी रकम लाइसेंस लेने पर लग जाती। युद्ध की भाग-दौड़ थी। फ़िल्मी टेकनीक गई भाड़ में! युद्ध के दिनों में फ़िल्म का स्तर पाताल में उतर गया। ज्यों ही युद्ध के बाद लाइसेंस उठा, नई मुसीबत शुरू हुई। बड़ा ही कठिन दौर शुरू हुआ। लोग बड़े आर्टिस्ट की तरफ दौड़े, जैसे बॉक्स आफ़िस हिट का वही एक इलाज रह गया हो। जिस ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे को देखो, प्रोड्यूसर और डाइरेक्टर बनकर बैठ गया। आर्टिस्टों को ही फ़िल्म की कामयाबी का नुसखा मान लिया गया तो उन्होंने अपने दाम बढ़ाने शुरू कर दिए।

"लोग जोड़े-जोड़े लगाते हैं। अशोककुमार के साथ नलिनी जयवन्त; सुरैया के साथ देवानन्द; कामिनी के साथ दिलीप।" माँ बलपूर्वक

कहती।

"और इरा के साथ जयन्त!" इरा हँस पड़ती। पर शीघ्र ही उसे यह बात काँटे की तरह चुभने लगती कि शंख उसे छोड़कर चला जायगा।

स्टूडियो में काम करते-करते इरा को शंख का ध्यान रहता—क्या यह मन का मीत चला जायगा? यह छलिया भाग जायगा?

शंख ने साफ़ कह दिया था कि वह इरा को इस मीना-बाज़ार से निकाल ले जायगा। "कोई बात हुई भला! जहाँ भी कोई तुम्हारी फोटो खींचे, जयन्त को परे धकेलकर मनोज तुम्हारे साथ आ खड़ा हो। या फिर मनोज को परे धकेलकर जयन्त आकर तुम्हारे साथ चिपक जाय। घर पर पतिदेव मौजूद हैं। मीना-बाज़ार में दो-दो प्रेमी!" इस पर इरा रो देती। यह लांच्छन उसे असह्य हो उठता। शंख कहता चला जाता, "मनोज और जयन्त दोनों एक साथ तुम पर झपटते हैं।" इरा शंख के मुँह पर हाथ रख देती। इससे आगे वह एक भी शब्द नहीं सुनना चाहती थी।

"मैं तुम्हें इस मीना-बाज़ार से ले जाऊँगा।"

"कहाँ?"

"वरकला।"

"वहाँ मैं क्या करूँगी?"

"वरकला वालों की पत्नियाँ जो करती हैं, वही तुम भी करोगी। और क्या?"

"वहाँ अभिनय करने को मिलेगा?"

"अवश्य!" शंख हँस पड़ता, "एक बार चलो तो! हमारा वरकला देखो तो! बम्बई को न भूल जाओ तो कहना। फिर तुम इस मीना-बाज़ार पर थूकोगी भी नहीं, इरा!"

"अभी तुमने मीना-बाज़ार का देखा ही क्या है? तुम्हारी कला भी यहीं चमकेगी। धैर्य से काम लो।"

"मैं यहाँ नहीं रह सकता।"

"तो यहाँ आये ही क्यों थे ? खाली मुझे छलने आये थे ?"

"तुम नहीं चलना चाहतीं, तो मुझे तो न रोको।"

"मैं कब रोकती हूँ ! पर सोच लो। तुम झुकना नहीं चाहते, मुझे झुकाना चाहते हो ! मैं नहीं झुकूँगी। तुम्हें मुझ पर विश्वास है, तो ठीक है ! क्योंकि मैं तो तुम्हारी हूँ, या तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं, तो मैं मीना-बाज़ार को दोष नहीं दूँगी। तुम्हें भी कुछ नहीं कहूँगी।"

"हमारा व्याह हो चुका है, यह मत भूल जाओ।"

"पर मैंने अपना काम छोड़ने की कब कसम खाई थी ?" कहते-कहते इरा रोने लगी, जैसे आँसू ही उसके अन्तिम हथियार हों।

माँ ने आकर कहा, "शंख, पागल मत बनो। इरा के डैडी की फ़ोटो देखो, किस तरह मुस्करा रहे हैं ! वे आये और यहीं के हो रहे। तुम भी उनसे सीख लो। तुम्हारी कला के पारखी भी मिलेंगे। हीरे की कद्र तो खान से बाहर आने पर ही होती है। हीरा तो खान में लौटकर जाने की बात नहीं सोचता। फिर वरकला जाकर तुम क्या लोगे ?"

इरा बराबर रोती जा रही थी। उसकी सिसकियाँ ऊँची होती गईं। शंख की आँखों में भी आँसू आ गए।

छब्बीस

देश का बँटवारा हुआ। कुछ प्रोड्यूसर-डाइरेक्टर पाकिस्तान चले गए। कुछ अभिनेता और अभिनेत्रियाँ तथा मीना-बाज़ार की इण्डस्ट्री के और बहुत से लोग चले गए। कुछ उधर के मीना-बाज़ार से इधर चले आये।

पन्द्रह अगस्त। तिरंगे लहराये जा रहे थे। आत्म-विश्वास जाग रहा था। एक दौर ख़त्म हुआ, दूसरा शुरू हुआ। शंख और इरा आज़ादी के जुलूस में शामिल हुए। गोबिन्दन भी साथ-साथ चल रहा था।

गोबिन्दन को कुछ-कुछ विश्वास हो चला था कि शंख हमेशा के लिए रुक गया। उसका ख़याल था, इरा ने जंगली हाथी को सिधा लिया। "गुरुदेव का पुत्र होकर मैंने उनकी परम्परा छोड़ दी, तो तुम्हें भी इसकी गुलामी करने की क्या पड़ी है? मीना-बाज़ार में तो मीना-बाज़ार की ही परम्परा चलेगी।"

इतिहास को मथकर निकला स्वाधीनता का अमृत !
धन्य है बम्बई ! धन्य है बम्बई की सजधज !
हज़ारों-लाखों तिरंगे लहरा रहे हैं।
द्वार सजे हैं।
तोरण झूल रहे हैं !
फूल मुस्कानें बिखेर रहे हैं।
धूप हँस रही है।

लोग खुश हैं।

दूर-दूर तक फैला आज़ादी का जुलूस। लोगों की संख्या का कौन अनुमान लगाये!

एक सागर उमड़ आया। चेहरे-ही-चेहरे। हर चेहरे पर आज़ादी का 'आटोग्राफ़'! आज़ादी आ गई। अंग्रेज़ चला गया। आज़ादी को तो एक दिन आना ही था, साहब! शोर का बे-पनाह आरकेस्ट्रा। आज़ादी आती है तो शोर किसीके रोके कब रुका है? बैंड बज रहा है। भारत माता की जय! वन्दे मातरम्! जन-गन-मन अधिनायक जय हे! भारत भाग्य-विधाता! जय हे, जय हे! जय-जय-जय हे!

आप लोग आराम से खड़े रहिये। आज़ादी आ गई। आज़ादी की देवी मुस्करा रही है।

सजा-धजा हाथी सूँड उठा-उठाकर आज़ादी की देवी को प्रणाम कर रहा है!

धन्य है शहनाई! आज़ादी की देवी के स्वागत में शहनाई बज रही है!

आज़ादी की देवी को मान-पत्र दिया जायगा क्या?

अरे अब तो यह देवीजी नहीं रहेंगी।

अल्पना सजा है। खूब शानदार! कुमकुम, तिलक, फूलमाला। आज़ादी की देवी के लिए और क्या चाहिए?

वह रहा साँची-स्तूप के स्टाइल का सिंह-द्वार! बड़ा गेट! हाँ-हाँ अंग्रेज़ी शब्द भी इतनी जल्दी तो नहीं छोड़ सकते। सारनाथ के नमूने की आर्टिस्टिक स्टेज! हलो, हलो! आज़ादी की देवी!

नमस्कार! प्रणाम! चीरियो! हीयर-हीयर! हैप्पी डे! गुड डे! फ़िफ्टीन्थ ऑगस्ट! हाँ-हाँ पन्द्रह अगस्त। हमारी आज़ादी का दिन!

ओ भाई छैला, सलमे-सितारे की टोपी वाले! आज़ादी मुबारक!

ओ भाई राजपूत, राजस्थानी साफे वाले, अब तुम्हें 'जय अन्नदाता' नहीं कहना होगा। जय भारत! कहो, जय भारत! राष्ट्रपिता

ज़िन्दाबाद !

हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख-ईसाई ! भाई-भाई !

मुलायम रेशमी वस्त्र मुस्करा रहे हैं। महिलाओं के जूड़ों में फूल महक रहे हैं। खुले बालों को झटकती रूपसी, तू भी जूड़ा कर ले। खोल खिड़की के परदे। जूड़े में नीलोफर खोंस। नीला फूल सुन्दर होता है। हवा नशीली धुन में गाती है। नई आज़ादी की धुन आरती का हृदय गुदगुदाती है। मन का पंछी खुश है। सरगम-सारस उड़े आ रहे, उड़े आ रहे; उतर रहे आज़ादी की इस बन्दरगाह पर ! आज़ादी का यह जुलूस लम्बा-चौड़ा है। यह खुला मार्ग इसके अनुरूप है।

ओ री ओ एक्ट्रेस, ओ फ़िल्म स्टार, ओ राजनर्तकी, आज तो आज़ादी का दिन है ! वाह रे वाह, मैं संकट-मोचन ! मैं परमार्थ-चिन्तन ! प्यारे लगते हाव-भाव ! प्यारे लगते नाच-गाने। धन्य मीना-बाज़ार ! धन्य यहाँ की ठसक-मसक ! कुछ तो लोकाचार भी ज़रूरी है। फ़िल्म के परदे पर यह चाँदनी सुन्दर लगती है। हलो रेनबो ! इन्द्र-धनुष !

इरा की आँखों में कुतूहल-भरी दृष्टि है। बार-बार शंख की ओर देख लेती है। आनन्द काफ़ी जम गया, पक्के गाने के आलाप के समान। इसी ताल पर झूम रहा है गोबिन्दन।

"भाभी, शंख यहीं रहेगा !"

"तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर, गोबिन्दन !"

"आज़ादी की देवी जैसे अब यहीं रहेगी, भाभी, शंखधरन भी यहीं रहेगा !"

"मैं वारी ! मैं सदके !"

तीनों खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। हँसी की आवाज़ उनके अन्तर्मन को चौंकाती है। इरा के जूड़े से मीठी खुशबू उड़ती है, पसीने की बू दूर भागती है। पतली, नरम कलाइयों में सोने की चूड़ियाँ बज-बज उठती हैं। मुँहफट नहीं है इरा। लजाती है, शरमाती है। गरदन घुमाकर देखती है शंख को। गोबिन्दन से कुछ कहना चाहती है, कह नहीं पाती।

"तुम्हारा मतलब है, मैं यहीं रहूँ, बरकला न जाऊँ?" शंख मुस्कराया।

मुग्ध दृष्टि। इरा कुछ न बोली। उसे शंख का प्रश्न बहुत अच्छा लगा। गोविन्दन कह उठा, "तुम कहीं नहीं जाओगे। हमारी भाभी के नयनों के बन्दी बने रहो, श्रीमान् शंखधरन! मैं हूँ गोविन्दन अवतार! मेरी बात तुम्हें माननी ही होगी।"

इरा हँस पड़ी। उसे बम्बई की एक-एक सड़क याद है। उसे बम्बई के आकाश की भी पूरी-पूरी खोज-खबर है। सारसों की लम्बी कतार उड़ी जा रही है। "मेरे बचपन में भी ऐसे ही उड़ते थे सारस!"

"अब कौनसी तुम बूढ़ी हो गईं, भाभी?" गोविन्दन हँस पड़ता है "तुम्हारा बचपन तो गया नहीं। और भाभी, आने वाला मेहमान आ ही रहा है!"

इरा लजा गई।

शंख भी हँस पड़ा. "आने वाला तो आ रहा है। फिर जाने वाला कैसे जा सकता है?"

इरा शंख की आँखों में झाँकती है। उसे विश्वास हो गया, अब शंख नहीं जायगा। "तुम नहीं जाओगे न?"

"बाँस की बाँसुरी जैसा स्वर है तुम्हारा, इरा!" शंख ने गम्भीर होकर कहा, "इसमें मीना-बाज़ार की चार सौ बीसी की मिलावट तो नहीं हुई!"

"मस्का लगाया जा रहा है, भाभी!"

पन्द्रह अगस्त ये सब खुशियाँ लाया था।

पन्द्रह अगस्त ही इरा की सब खुशियाँ ले गया।

पन्द्रह अगस्त की रात की गाड़ी से ही शंख चला गया, बिना बताये, जैसे वीणा का तार टूट जाने से वीणा एक तरफ को लुढ़क जाती है।

सत्ताईस

अन्तिम चट्टान का मछुवा इरा को छोड़ गया !

"...प्रसिद्ध अभिनेत्री इरा का पति शंखधरन उसे छोड़कर चला गया। हमारे विशेष सम्वाददाता का कथन है कि कुछ दिनों से शंख के दिल में यह बात बैठ गई थी कि बम्बई के फ़िल्मी मीना-बाज़ार में उसकी कला का दूध-गाछ पनप नहीं रहा था। ऐसा मालूम होता है कि अब शंख कभी लौटकर बम्बई नहीं आयेगा।

"इरा ने हमारे सम्वाददाता को बताया कि शंखधरन कुछ दिनों से किसी हद तक दिमागी फ़तूर का शिकार हो रहा था, और हर वक्त यही रट लगाता रहता था कि उसके गुरु रुद्रपदम् की आत्मा उसका पीछा कर रही है, और हर घड़ी उसके दिमाग़ पर हथौड़ी-सी चलती रहती है।

"इरा का ख़याल है कि शंख के दिमाग ने बगावत की। यह भी हो सकता है कि वह फ़िल्मी संगीत के मैदान में पहले से काम करने वाले कलावन्तों के साथ मुकाबले की ताब न लाकर भाग गया।

"पक्के और फ़िल्मी गाने में धरती और आकाश का अन्तर पड़ गया है, यह बात हमारे देश की फ़िल्में देखने वालों से भूली हुई नहीं है। पक्के गाने के कलावन्त अक्सर नई चीज़ देने के विरुद्ध देखे गए हैं। शंखधरन का यों फ़िल्मी संगीत का मैदान छोड़कर भाग जाना

यही सिद्ध करता है।

"गुरुदेव रुद्रपदम् की आत्म-कथा की फ़िल्म भी बन चुकी है। गुरु-देव का सुपुत्र गोबिन्दन, जो अपने पिता के जीवन-काल में ही उनसे संगीत सीखना छोड़कर बम्बई भाग आया था, आज भी बम्बई में है, और नये फ़िल्मी संगीत के निर्माण में उसने कुछ कम हाथ नहीं बँटाया।

"अब जबकि गुरुदेव का शिष्य शंखधरन मैदान छोड़कर भाग गया, गोबिन्दन की सफलता की सम्भावना बढ़ गई है।

"हमारी सहानुभूति इरा के साथ है, जिसने पिछले वर्ष अपनी माँ से चोरी-छिपे निर्माता-निर्देशक जयन्त के घर शंखधरन से विवाह कर लिया था।

"हमारे सम्वाददाता का कथन है कि इरा बहुत रोई। लेकिन उसकी माँ ने उसको धीर बँधाते हुए कहा—'शंखधरन न कभी तेरा हुआ, न कभी हो सकता था। यह तुम्हारी भूल थी कि तुमने मेरी राय लिये बिना उसे अपना जीवन-साथी चुना। कहाँ नाली की ईंट, कहाँ राज-महल की दीवार! अब रो मत, बेटी! फ़िल्मों वाले सुनेंगे तो हँसेंगे। छी-छी! तुम इतना रो रही हो बच्चों की तरह!'..."

पढ़ते-पढ़ते पूनम की आँखें भर आईं और उसके हाथ से अख़बार गिर गया।

बुक-स्टाल वाला उसकी तरफ़ बड़ी उत्सुकता से देख रहा था।

पूनम ने अख़बार उठाकर रख लिया और पर्स से पैसे निकालकर बुक-स्टाल वाले की ओर बढ़ाये।

कुली को अपने पीछे आने का संकेत करके वह गेट की तरफ चल पड़ी।

टैक्सी भागी जा रही थी। पूनम की विचारधारा टैक्सी से भी तेज़ भाग रही थी।

उसे ध्यान आया कि यह सब दो महीने में ही हो गया। यहाँ से जाते हुए मैं इरा से मिली थी। उसने मुझे संकेत अवश्य किया था कि

शंख का जी नहीं लग रहा। पर वह उसे छोड़कर कैसे चला गया ?

पूनम रावलपिण्डी की रहने वाली थी। पहले वह एक्स्ट्रा में भरती हुई। पर इधर दो साल से उसे कई फ़िल्म-कम्पनियों में साइड रोल मिलने लगे थे। यह सब इरा की बदौलत ही तो था। वह सोच रही थी—इरा ने ही तो मनोज सान्याल और जयन्त से कहकर मेरा मोल बढ़ाया।

इस समय वह मद्रास से लौट रही थी, जहाँ की एक फ़िल्म-कम्पनी में उसे खल-नायिका का रोल मिल गया था।

वह घर पहुँची तो उसकी माँ चकित-सी उसकी ओर देखती रह गई, "मद्रास से कब चली थी, पूनम ? हमें चिट्ठी ही लिख दी होती कि तुम आ रही हो।"

पूनम की छोटी बहन थी नीलम। वह आकर उसके साथ चिपट गई।

"दीदी, मुझे इरा के घर कब ले चलोगी ?"

पूनम चुप रही।

उसकी माँ बोली, "कल अनुपम आया था, पूनम! मेरा तो विचार है कि कुछ तय हो जाय तो अच्छा है।"

पूनम पहले तो चुप रही, फिर भर्राई हुई-सी आवाज़ में बोली, "यह बात फिर कभी मत कहना, माँ! ये अन्तिम चट्टान के मछुए आख़िर में छोड़ ही जाते हैं।" और वह क्रोध में तनी-सी उठकर भीतर चली गई।

उसकी माँ सोच में डूब गई। कल तक तो हमारी पूनम राज राज-अनुपम का नाम सुनकर चहक उठती थी, आज उसे क्या हो गया ?

अट्ठाईस

तीनों सहेलियाँ उदास थीं। पूनम कह रही थी, "मैंने यह खबर कल अखबार में पढ़ी विक्टोरिया टर्मिनस पर !" नीलू बोली, "मुझे यह खबर गोबिन्दन ने बताई।"

तीनों का यही विचार था कि पुरुष ठग होते हैं, पर मैना बलपूर्वक कहे जा रही थी, "सारे पुरुष तो ठग नहीं होते।"

पूनम की भावमयी आँखें आकर्षण-सा बिखेर रही थीं। नीलू बोली, "मैं तो ऐसा कभी न सह सकूँ।"

इरा मानो आँखों-ही-आँखों में कह रही थी—"पुरुष का यह व्यवहार देखकर नारी का विश्वास हिल उठे तो आश्चर्य भी क्या है ?"

पूनम बोली, "नारी को सोने की चिड़िया कहने वाला अनुपम अब मुझे नहीं ठग सकता। फिर नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता पर नाक सिकोड़ने का क्या मतलब ?"

नीलू ने आँखें मटकाकर कहा, "ऐसे आदमियों की कमी नहीं, जो कहते हैं—नारी उच्च शिक्षा की अधिकारिणी नहीं, क्योंकि उन्हें भय है कि आज नारी अपना मोल खामखाह अधिक आँकने लगी है।"

इरा चुप थी—गतिहीन चेतना की मूर्ति-सी।

पूनम बोली, "आज ज़रूरत इस बात की है कि नारी पुरुष की स्वामिनी बनकर रहे।"

"पुरुष को यह बात तो स्वीकार न होगी।" नीलू ने बढ़ावा

दिया, "सवाल तो यह है, अब क्या होगा ? क्या शंख लौटकर नहीं आयेगा ?"

मैना का स्वर दुःख के भार से बोझिल-सा हो गया, "शंख आयेगा तो हम रोकेंगे नहीं। जहाँ भूख है, वहाँ बेचुपड़ी मोटी रोटी ही अमृत है। जिन आँखिन में नींद घनेरी, तकिया और बिछौना क्या रे !"

पूनम बोली, "मेरी तो अभी तक यही बात समझ में नहीं आई कि शंख भाग क्यों गया। किसी ने कहा है—ठाकुर साहब, भागने में आप कैसे हैं ? बोले—पीछा करने वाले की मार जैसी हो।"

मैना भी चुप न रह सकी, "मर्द मूँछों वाला ही भला, गोरी नैन-बाँकी, गाय सींगों वाली, घोड़ी अच्छे पैरों वाली।"

पूनम बोली, "और यह भी तो कहते हैं—मरद तो जब्बान बंको, कूख बंकी गोरिया; सुरहल तो दुधार बंको, तेज बंकी घोडिया।"

मैना ने हामी भरी, "यह तो मैं भूल ही रही थी। ठीक तो है, मर्द वह जो जबान का धनी हो, गोरी वह जो कोख की बाँकी हो, गाय वह जो दूध देती हो, घोड़ी वह जो तेज चले।"

इरा को जैसे काठ मार गया था।

नीलू बोली, "गोबिन्दन की बातें मुझे सदा ऊटपटाँग लगती हैं—बे-सिर-पैर। बातें, बातें, बातें ! और तो उसे कुछ आता ही नहीं। अपने को श्री एक सौ आठ गोबिन्दन अवतार कहता है। कोई बात हुई भला !"

इरा के मुख पर हलकी मुस्कान दिखाई दी।

"अनुपम के गीत मुझे फीके लगते हैं। नीम पढ़ा-लिखा आदमी है। असिस्टेण्ट पोइट की मदद लेता है, जिसने काफियों की लिस्टें बना रखी हैं, और साथ ही हर विषय के गीतों को अलग-अलग कापियों में नोट कर रखा है। नकल चलती है, खाली नकल। सात गीत, अलग-अलग फ़िल्मों के, एक ही विषय के, टटोले। थोड़ा इधर किया, थोड़ा उधर, और नया गीत बन गया। इस पर अनुपम फ़िल्मी शायर

कहलाता है।"

नीलू बोली, "पाँच-छः नाच होने चाहिएँ, छः-सात गाने होने चाहिएँ। तभी फ़िल्म की गाड़ी ठेली जा सकती है। क्या तमाशा है!"

पूनम ने आँखें मटकाकर कहा, "और दीदी, कितने भद्दे मज़ाक रहते हैं हमारी फ़िल्मों में! मनोरञ्जन का साधन समझकर मज़ाक के खोटे सिक्के भी चला दिए जाते हैं।"

दूर से सागर-संगीत सुनाई दे रहा था। मैना बोली, "बड़े दुःख और लज्जा की बात है कि शंख भाग गया। बम्बई क्या उसे काटती थी?"

इरा क्रोध से तिलमिलाने लगी।

"मेरा दिल कहता है, शंख लौट आयेगा।" मैना के मुख पर हलकी मुस्कराहट नाच उठी।

"वैसे तो वह भलामानस है, माँ!" पूनम ने सहमति प्रकट की।

नीलू भी चुप न रह सकी, "झूठ से शंख को घृणा है। अपने प्रति सच्चा रहना चाहता है। तर्क-वितर्क से कतराता है। कुरुचि और भद्दे पन से उसे वैर है। कमीनेपन की हँसी उड़ाना वह अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझता है। काश, वह यह सब डटकर करता! यहीं रहता, यहीं बम्बई में, क्योंकि सारी-की-सारी बम्बई तो मीना-बाज़ार नहीं है। एक बम्बई के अन्दर दर्जनों बम्बइयाँ हैं। मीना-बाज़ार भी है उनमें से एक। वह बम्बई में रहकर ही मीना-बाज़ार को चुनौती देता, यहीं मीना-बाज़ार के बाहर गुरुदेव की कला की पताका फहराकर दिखाता, तो मैं उसे वीर मानती।"

पूनम ने बाँहें फैलाकर आँखें मटकाईं, "पर शंख इतना दूर तो नहीं चला गया कि लौटकर न आ सके। उसे तो हमारे मीना-बाज़ार में ही जूझना चाहिए। जहाँ गोबिन्दन जैसे बहुरूपिये ठग विद्या चला सकते हैं, वहाँ एक सच्चे, खरे कलावन्त का ढोल क्यों नहीं बज सकता?"

"बुरी बात तो यह हुई कि शंख ने सरल रास्ता अपनाया।" नीलू ने विश्वासपूर्वक कहा, "मुझे पता चल जाता, तो मैं उसे कभी जाने न देती।"

मैना ने आकर कहा, "बाहर बालकनी में बैठो, बेटी ! वहाँ कुर्सियाँ लगवा दी हैं। सुहावने मौसम का मज़ा लो।"

तीनों सहेलियाँ उठकर बालकनी में जा बैठीं।

पूनम बोली, "मीना-बाज़ार को बुरा कहने का रिवाज-सा चल पड़ा है। मैं कहती हूँ, आदमी कहीं भी काम करे, वहाँ अपने चरित्र का दीया जला सकता है, अपनी छाप लगा सकता है। और सारी बात तो छाप लगाने की है, जैसे हमारी इरा ने लगाई। एक ऐक्स्ट्रा और एक फ़िल्म-स्टार में इतना-सा ही तो अन्तर है। शायद शंख इस बात से जल गया कि उससे कहीं अधिक हमारी इरा का मोल है मीना-बाज़ार में ! क्यों इरा, मैं ठीक कह रही हूँ न ?"

इरा चुप रही।

नीलू बोली, "मैं यह नहीं मान सकती कि दर्जनों बम्बइयों की माँ हमारी इस विशाल नगरी में कहीं भी शंख अपनी कला का दूध-गाछ नहीं उगा सकता था।"

पूनम को हँसी आ गई, "देखो इरा, एक पागल है शंख, और एक पगली है हमारी नीलू। हर वक्त दूध-गाछ की रट भी भला कहाँ तक दुरुस्त है ? कला का दूध-गाछ ! छीः ! मैं तो इस शायरी के चक्कर में कभी नहीं पड़ूँगी। पेट का धन्धा है। सच-सच बताना, नीलू ! तुम्हें 'त्रिवेणी' वाले महीने-के-महीने वेतन न दें, तो क्या तुम वहाँ काम कर सकोगी ? फिर कला का दूध-गाछ कहाँ जायगा ?"

"पेट का धन्धा तो सच बात है, पूनम !" नीलू ने गम्भीर मुद्रा बनाकर कहा, "पर सब-का-सब पेट का धन्धा है, यह मानकर चलूँगी जिस दिन, उस दिन मैं भी मीना-बाज़ार में आ जाऊँगी। फिर 'त्रिवेणी' वाले मुझे किसी भी मोल पर नहीं पा सकेंगे।"

"बात तो तुम भी मोल की ही कर रही हो, नीलू ! मैं इस बात से इन्कार नहीं करती कि तुमने हमारी नृत्य-कला को आगे बढ़ाया है। बम्बई में तुम्हारी नृत्य-नाटिका 'मछुआ और जलपरी' की सभी ने तारीफ की। तुम उससे भी अच्छी नृत्य-नाटिकाएँ पेश करोगी। तुम्हारे नृत्य-अभिनय की धाक तो तभी जम गई थी, जब तुमने इरा के जन्म-दिन पर एक बार अपना प्रदर्शन किया था। उसकी प्रशंसा तो बड़े-बड़े फ़िल्म-डाइरेक्टरों ने की थी। और तुम चाहतीं, तो आज फ़िल्मी दुनिया में तुमने बहुत नाम कमाया होता और पैसा भी। नाम और पैसा—आदमी ये दो चीज़ें चाहता है न !"

"तीसरी चीज है कलाकार के मन का सन्तोष !" नीलू ने बाँहें लहराकर गम्भीर स्वर में कहा, "मन का सन्तोष न हो तो काँटा-सा चुभता रहता है।"

"तो क्या उसी काँटे की चुभन ने शंख को बम्बई से भगाया ?" पूनम हँस पड़ी, "कलाकार के मन का सन्तोष क्या होता है ?"

गर्वीली-गहरी साँस खींचकर नीलू बोली, "कलाकार की बात तो कलाकार की समझ में ही आ सकती है, पूनम ! यह बात बताने की नहीं, अनुभव करने की है।"

"माफ करना, दीदी !" पूनम धीमे स्वर में बोली, "शायद मैंने यह कहकर अपनी मूर्खता जताई। आत्मश्लाघा से तो मुझे नफ़रत है, इरा दीदी जानती हैं। हमें एक-दूसरे से हमदर्दी होनी चाहिए। मैंने तो देखा है, दो टैकनीशियन मिलकर बैठ जायँगे, पर दो कलाकार हमेशा एक-दूसरे की गर्दन पर छुरी चलाने की सोचेंगे। बुराई करने में जाने उन्हें क्यों मज़ा आता है ! मैं मानती हूँ, शंखजी अलग हैं।"

"इसीलिए तो उसे जाना पड़ा। नाम और धन कमाने से ही उसे मतलब होता, तो वह दूसरों की बुराई करने से संकोच न करता और सफलता उसके द्वार पर दस्तक देती।" कहते-कहते नीलू ने इरा की आँखों में झाँकने की कोशिश की, "क्यों दीदी, क्या मैं कुछ झूठ कह

रही हूँ ?"

इरा टस-से-मस न हुई।

"तुम्हारी बात विचारपूर्ण है, दीदी !" पूनम मुस्कराई, "छल, कपट और धोखे से दूर हैं शंखजी। इसीलिए तो इरा दीदी ने उन्हें जीवन-साथी चुना। पर क्या वरकला में वह चीज़ मिल जायगी, जो बम्बई में न मिल सकी ? फ़िल्मी दुनिया में सनसनी फैल गई। लोग इरा की वदनामी कर रहे हैं, जैसे इरा ने शंख को स्वयं भगाया हो।"

"मैं जानती हूँ, इस समय इरा दीदी शंख को देखने को कितनी लालायित हैं। कोई शंख को लाकर यहाँ खड़ा कर दे, इसके लिए वह बड़ी-से-बड़ी कीमत दे सकती हैं।"

इरा को अब भी बोलने के लिए विवश न किया जा सका, जैसे वह उस क्षण को भूल जाना चाहती हो जब उसकी और शंख की नज़रें मिलीं।

मैना पास आकर बोली, "इरा, कुछ तो बोलो। दिल का बोझ उतरे। तुम चुप क्यों बैठी हो ?"

इरा अपलक देख रही थी।

चाय आई तो इरा ने कोई चीज़ मुँह से न लगाई।

साँझ बीती जा रही थी।

सड़क पर कारें आ-जा रही थीं। सजीव नेत्रों से एक-दूसरे को देखते हुए लोग सागर के साथ-साथ चहलकदमी को निकल पड़े थे।

दोनों सहेलियों के कहने से इरा ने बड़ी मुश्किल से चाय का कप उठाकर मुँह से लगाया।

इरा के अन्तर की गहराई से एक भी स्वर न निकला।

"बातें, बातें, बातें !" नीलू चुप न रह सकी, "बातों से कुछ सिद्ध नहीं होता। बहुत-कुछ तो शब्दातीत है !"

"पर इरा की व्यथा को कौन सुनेगा, दीदी ?" पूनम ने खीझकर कहा, "इरा स्वयं तो बोलती नहीं। हमारी इरा को कितनी परेशानी में

डाल गया शंख ! उसे क्या मिला ? यह तो बेहूदगी की हद है कि कोई इस तरह घर से भाग जाय। और फिर शंख कोई बच्चा तो नहीं है।"

"उसने भी कुछ सोचा होगा।"

"तुम इसे सोचना कहती हो, दीदी ! उसने कोई इनाम लेने लायक काम नहीं किया। इतनी जग-हँसाई के बाद अब वह लौट भी क्यों न आये। जग-हँसाई तो हो ली।"

"हम यह बात यहीं छोड़ दें।"

"यहीं कैसे छोड़ दें, दीदी ? वरकला में क्या दूसरी दुनिया है ? वहाँ क्या पेट खाने को नहीं माँगेगा ? वहाँ कौनसा नया सवेरा नई आशाएँ लेकर आया करेगा नित-नित ? और सच तो यह है दीदी, उसके संगीत के बिना क्या हमारी फ़िल्मी दुनिया का काम रुक जायगा ? हाँ, हमारी इरा जरूर उदास रहा करेगी। फिर इरा भी उसे भूल जायगी। शंख घाटे में रहेगा। मैं कहे देती हूँ, शंख पछतायेगा। न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम ! ठनठनगोपाल। मजा करेगा वरकला में बैठकर ! वरकला वालों को असलियत का पता चल गया, तो वे भी हँसेंगे उस पर। उसे उल्लू कहेंगे।"

नीलू ने हाथ और आँखों के इशारे से कई बार पूनम को बोलने से रोका। "छोड़ो, यह किस्सा तो बहुत हो लिया, पूनम ! हम चलें। इरा दीदी से छुट्टी लें।"

इरा की आँखों में दुनिया-भर की करुणा साकार हो उठी थी। विवशता की मूर्ति-सी वह चुप बैठी थी।

को जागरी ?

दस वर्ष हो गए। शंख गया और लौटा नहीं। कदाचित् वह उस मार्ग पर चल पड़ा—'का तव कान्ता कस्ते पुत्रः'—न तेरी कोई पत्नी है, न कोई पुत्र है। कोई बन्धन बम्बई की ओर न खींच पाया। इधर का मोह छोड़ दिया।

इरा एक बालिका की माँ बनी।

बालिका का नाम रखा गया जयजयवन्ती। इरा उसे जया कहकर पुकारती है। दस वर्ष की है जया। किसी से डरती नहीं। समय-चक्र रुका नहीं···ऋतु-चक्र भी चलता रहा। जया को देखकर लगता है, शंख गया नहीं, यहीं है। माँ से रूप मिला, पिता से स्वभाव। जया को देखकर इरा को नशा चढ़ जाता है। जया की मुस्कान मानो शंख की खबर दे जाती है। शंख इसका मज़ा क्या जाने! रहता तो जया से खेलता। देखता कि जया को गाने का भी शौक है; उस जैसा स्वर तो हज़ार में एक लड़की का होता है।

जया हँसती है, तो घुँघरू-सा बज उठता है, मैना नानी का तन-मन सिहर उठता है। जया की हँसी के साथ शंकर के उल्लास की भी तो मानो छन्दोगत एकता है। बी० ए० पास कर चुका है शंकर। अब इंजीनियरिंग कालेज में पढ़ने जाता है। कालेज के कमरे में पढ़ते-पढ़ते शंकर को जया की बातें याद आती हैं जैसे गुलमोहर के फूल दूर से ध्यान खींचते हैं। शंकर को ध्यान रहता है, शंख जीजाजी

को पत्र ज़रूर लिखा जाय। पत्र में जया की बात ही ज़्यादा लिखता है। जया के होठों पर जो अस्पष्ट-सी धुन नाचती रहती है, उसी की बात लिखता है। कभी-कभी अबोध दृष्टि से देखने लगती है जया। उसके मुख पर मुस्कान खेलती है, जैसे जंगल में सघन वृक्षों की चोटियों पर पूनम का चाँद समीप खिसक आता है। आँखों में विस्मय और कौतूहल जग-जग उठते हैं। अकारण चंचल हो उठती है। उसे देखे बिना, थोड़ी देर उसके साथ खेले बिना वह कालेज नहीं जा सकता। उसके साथ दो बातें करके दिल खिल जाता है।""ऐसी-ऐसी बातें शंकर अपने पत्र में शंख को भी लिखता रहता है।

एक तरफ़ माँ-वेटे की मूर्ति पड़ी है—पीतल की मूर्ति, माँज-माँजकर चमकाई हुई मूर्ति।

एक तरफ़ मदन बाबू का फोटो है।

दूसरी तरफ़ पड़ा है शंख का फोटो।

इरा बता रही है :

"वह रहे मेरे डैडी, यह रहे तुम्हारे डैडी !"

पीतल की चमाचम मूर्ति की तरफ हाथ उठाकर जया पूछती है :

"यह किसके डैडी हैं ?"

इरा कुछ क्षण तक चुप रहने के वाद कहती है :

"यह तुम्हारे डैडी के डैडी हैं।"

इरा काम पर चली जाती है। जाते-जाते समझा जाती है कि मूर्ति को गिराये नहीं। जया हाँ में सिर हिलाती है। वैसे ही करेगी, जैसे माँ चाहती है। मूर्ति को गिरायेगी नहीं। फोटो का शीशा भी नहीं टूटेगा। आराम से खेलेगी।

अपरिचय का परदा-सा उठ गया। जया अकेली है। आज वह बहुत खुश है। मूर्ति और फोटो नये सिरे से जोड़कर रखती है। बोलती जाती है :

"यह रहे डैडी के डैडी ! यह रहे मेरे डैडी ! यह रहे ममी के

डैडी !"

स्पष्ट है कि जया को अपने ही डैडी पसन्द हैं। पर उसके डैडी कहाँ चले गये ? घर क्यों नहीं आते ? वह पूछना चाहती है, किससे पूछे ?

मैना अपने कमरे में बैठी है। बार-बार उसके पास आकर जया पूछती है :

"मेरे डैडी कब आयेंगे ?"

मैना प्यार से जया की ठोड़ी उठाकर प्यार करती है। सोचती है: हमारी परम्परा चलेगी। जया भी एक्ट्रेस बनेगी।

आज स्कूल में छुट्टी है। जया पढ़ने जाती है। स्कूल की पुस्तक पढ़ते-पढ़ते वह मैना के पास आकर पूछती है :

"मेरे डैडी मुझे मारेंगे तो नहीं ?"

मैना मुस्कराकर कहती है :

"पहले सबक याद करो। फिर खेलो, तब तुम्हारे डैडी आकर अपनी जया को प्यार करेंगे।"

पुस्तक को बीच में छोड़कर जया फिर मूर्ति और फोटो सजाकर रखती है :

"यह रहे ममी के डैडी ! यह रहे मेरे डैडी ! यह रहे डैडी के डैडी !"

जया अभी बच्ची है। गुड़िया का ब्याह रचाती है। गुड़िया के बिना नहीं चलेगा खेल।

जया सब सीख रही है। वह सब सीखकर रहेगी। साल-तारीख का हिसाब भी सीख जायगी। कल्पना-लोक में ऊँची उड़ान भरा करेगी वह भी। आशा-आशंका, उद्वेग-उत्कण्ठा के बीज बोये जायँगे उसके मन में। फिर वह भी सोच सकेगी सुदूर भविष्य की बात।

फटाफट बातें करती है जया।

"यह रहे डैडी के डैडी ! यह रहे मेरे डैडी ! यह रहे ममी के डैडी !" मन यही बोलता है। ऐसे तो बात मुँह से नहीं निकलती। स्कूल की पुस्तक में और-और बातें लिखी हैं। मन की पुस्तक पर दूसरी ही बातें

लिखी हैं—यह रहे डैडी के डैडी ! यह रहे मेरे डैडी !···

वड़ी होकर जया घर की सुविधा-असुविधा देखना सीख जायगी ।

अभी तो जया बच्ची है ।

जया वेचारी क्या करे ? उसे नींद आ रही है । नानी के पास जाकर कहती है :

"मुझे नींद आ रही है ।"

नानी प्यार से जया का मुँह चूमकर वही लोरी देने लगती है जिसमें कहा गया है कि नीले घोड़े पर चढ़कर आएगा हमारी जया का दूल्हा ।

जया को नींद आ रही है । नींद को कौन रोक सकता है !

क्या यह सब अभिनय है ? नानी सोचती है, जया बड़ी होकर अवश्य एक्ट्रेस बनेगी ।

दर्पण में देख रही है नानी ! सोचती है, मुँह की गठन काफ़ी वदल गई । शरीर का रंग भी वह नहीं रहा । बाल सफेद हो चले । समय-चक्र चल रहा है, ऋतु-चक्र भी रुकता नहीं । पेड़ के तने पर लिखी रहती है पेड़ की आयु । मनुष्य की आयु भी छिपाये नहीं छिपती । तीस से ऊपर की हो गई मेरी इरा, फिर भी उम्र बीच-पच्चीस के बीच ही बतानी पड़ती है । इतना झूठ तो चलता है फ़िल्म लाइन में ! एक्ट्रेस को तो जवान ही रहना होता है, अपने को जवान मानकर ही चलना होता है।···जया अभी बच्ची है । वह सो गई, खेल-खेलकर सो गई । खूब खेली । डैडी-डैडी कहते थकती नहीं···यह रहे डैडी के डैडी ! यह रहे मेरे डैडी ! यह रहे ममी के डैडी !···

नानी के होठों पर मुस्कान खेल गई । उसने मदन बाबू का फोटो उठा लिया । फिर सोती जया की ओर संकेत करके बोली :

"क्यों मदन बाबू, तुम्हें यह अपनी पौत्री जया पसन्द है न ? वह तुम्हें ममी के डैडी कहती थकती नहीं । एक्ट्रेस बनेगी हमारी जया । अरे क्या बात है, मदन बाबू ! दे डालो आशीर्वाद ! इस वेचारी का डैडी तो

ऐसा गया कि फिर लौटा ही नहीं !"

इतने में इरा प्रवेश करती है :

"किससे बातें कर रही हो माँ ?"

"तुम्हारे डैडी से !"

"डैडी क्या सुन सकते हैं ? जया सो गई ?"

सोती जया का मुँह चूमकर इरा कहती है :

"मेरी जया एक्ट्रेस बनेगी !"

दर्पण में अपना मुख देखकर इरा सोचती है, अभी तो मैं बीस और पच्चीस के बीच की ही लगती हूँ ! मेरी आयु तक पहुँचते तो जया को बीस साल लगेंगे ! दस साल की हो गई जया। देखने में पाँच की ही लगती है।...

दो

बम्बई का जीवन-दर्शन मीना-बाज़ार तक ही सीमित है, यह कहना तो अन्याय होगा। बम्बई आश्चर्यजनक है। कभी वह एक कवि की शिष्ट भाषा में बोलती है, कभी एक व्यंगकार की मुख-मुद्रा के साथ महत्त्वाकांक्षियों को आड़े लेती है। कभी प्रश्नसूचक दृष्टि से देखती है बम्बई। संकट में भी मुस्कराती है; हर समय दौड़ लगाती है। काहिल और सुस्त प्राणी को यहाँ ठौर नहीं। समुद्र दूर नहीं। समुद्र की गहराई में पैठती है बम्बई की कल्पना, बम्बई की साधना।

गोबिन्दन की शिकायत है कि अहल्या की माँ उपदेशों का ढेर बन गई! एक्स्ट्रा में भरती हुई अहल्या। अब उसे 'साइड रोल' मिल जाता है। माँ गोबिन्दन की ऋणी है। सात हज़ार खर्च करके माँ ने अहल्या को ब्याह दिया था; अब तो वह दो बच्चों की माँ है। माँ कहती है, "गोबिन्दन, तुम ब्याह नहीं करोगे? तुम्हारी इतनी उम्र हो गई?" गोबिन्दन चुप रहता है।

गोबिन्दन टिप-टॉप बाहर निकलता है—'टेलर मेड ब्वाय!' जब तक शंख यहाँ रहा, गोविन्दन उसे अंग्रेज़ी सूट पहनने को कहता रहा। उस भले आदमी ने केरल की वेष-भूषा न छोड़ी। गोबिन्दन तो बम्बइया छाप म्यूज़िक-डायरेक्टर है। प्रोड्यूसर-डाइरेक्टर जिस वेष में रहते हैं; वही गोबिन्दन को प्रिय है।

"धन्य है हमारा टेप रिकार्डर, माँ! उधर रेडियो पर दुनिया के

किसी भी स्टेशन से गाना आ रहा है। जो गाना हमें थोड़ा काम का लगा, टेप पर भर लिया। नया गाना बनाना कौन मुश्किल! एक की टाँग, एक का सिर। गाने की धुन निकाल दी!…कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा! ऐसे ही चलता है, माँ! बीस-पीढ़िया संगीतकार गोविन्दन! गुरुदेव रुद्रपदम् का सुपुत्र! बम्बई के मीना-बाज़ार का म्यूज़िक-डाइरेक्टर! चलेगा, ऐसे ही चलेगा! हमारी धुनें बिकती हैं। उन्हीं धुनों पर राज राज अनुपम गीत लिख डालता है। इधर हमारा नाम, उधर राज राज अनुपम का नाम। दुनिया वाह-वाह कर रही है। कहती है, गोविन्दन के संगीत का जवाब नहीं। राज राज अनुपम एक गीत का एक हज़ार से कम नहीं लेता। कह देता है, वह 'बिज़ी' है। बम्बई का मीना-बाज़ार उसी के आगे झुकता है जो 'बिज़ी' है। मैं भी बहुत 'बिज़ी' हूँ। एक साथ चार-चार, पाँच-पाँच फ़िल्मों में संगीत देना मज़ाक तो नहीं।"

इस लम्बे भाषण के उत्तर में माँ इतना ही पूछती है, "शंख कब आयेगा, बेटा?"

माँ जानती है, सच्चा संगीतकार तो शंख है। सच्चे आदमी को बम्बई से भागना पड़ता है। सच्चे आदमी का सच्चा संगीत यहाँ नहीं चलता। माँ गाने लगती है:

'रेलिया होइ गई मोर सबतिया पिया के लादि लेई गई ना!'

उसकी आँखें चमक उठती हैं, जैसे कह रही हों—संगीत तो यह था! तुम क्या धुन बनाओगे, बेटा नक्काल!

उर्वशी उदास है।

जयन्त की नोटबुक में दौदेत का उद्धरण पढ़ती है:

एक चिड़िया से किसी ने पूछा—"तुम्हारे गीत इतने छोटे क्यों हैं? तुम्हारी साँस थोड़ी है इसलिए?"

"नहीं, इसका कारण यह है कि मेरे पास बहुत से गीत हैं और मैं उन सभी को गाना चाहती हूँ।"

और उर्वशी के मन-प्राण सिहर उठते हैं : 'गुरुदेव' की सिगनेचर-ट्यून लगाती है, सुनते-सुनते विभोर हो जाती है।

"जो नई फ़िल्म तुम बना रहे हो जयन्त, उसका संगीत तो एकदम रद्दी है।"

"कोई 'गुरुदेव' तो अब मैं बनाने से रहा। यह और बात है कि 'गुरुदेव' की आठ-दस साल बाद पब्लिक में कुछ पूछ हो रही है, पर बाज़ार-भाव तो दूसरा ही है।"

" 'गुरुदेव' ने एक स्टेण्डर्ड कायम किया, यह तो दुनिया ने माना। बाज़ार में कैसी हवा चल रही है, यह बिलकुल अलग बात है।"

उर्वशी जानती है कि जयन्त अब हॉलीवुड के नुसखों को जोड़-तोड़कर जो फ़िल्में बनाता है, सब बॉक्स ऑफ़िस हिट हो जाती हैं। पर घटिया संगीत से कभी-कभी उसका मन ऊब जाता है। 'गुरुदेव' की सिगनेचर-ट्यून लगाकर कभी-कभी वह कहता है, "वैसे इस बात पर मैं गर्व कर सकता हूँ उर्वशी, कि कभी मैंने इतना बढ़िया संगीत दिया था। ज़माने की मार है ! ज़माने के साथ चलना पड़ता है।"

"इन्सान वह है जो ज़माने को अपने साथ चलाये।"

"ये बातें भी हम इसलिए कर रहे हैं कि रुपया आ रहा है। दीवाला पिट जाय तो सब आदर्श धरे रह जायँ।"

उर्वशी उदास है, यह बात जयन्त से छिपी नहीं।

"मेरी हालत उस चिड़िया की-सी है जिसके पास बहुत से गीत थे और वह उन सबको गाना चाहती थी।"

"तुम्हारे पास घटिया गीत ही ज़्यादा हैं, जो बॉक्स ऑफ़िस हिट हो जायँ !"

"ज़िन्दाबाद गोबिन्दन ! मेरी चिड़िया तो वही है। ज़िन्दाबाद राज राज अनुपम, जो मेरे लिए गीत लिखता है। ज़िन्दाबाद प्ले बैक सिंगर,

जिनकी आवाज़ का जादू बोलता है सिर चढ़कर ! प्ले बैक का इन्तज़ाम न रहता तो हमारे बहुत से हीरो बेकार हो जाते, तुम्हारी इरा जैसी हीरोइन भी चार कदम न चल सकती ! अब तो इरा भी बुलबुल की तरह गाती है !"

"तुम इरा को भूल जाओ। उसे मनोज के लिए रहने दो।"

"तो तुम्हें भी मुझ पर सन्देह है ! किसी ने ठीक ही कहा है : वोमेन दाई नेम इज़ जैलेसी [नारी, तेरा नाम है ईर्ष्या !]"

उर्वशी उदास है। बहुत दिनों से उसने इरा की शक्ल तक नहीं देखी।

मनोज इरा को भूल नहीं सकता।

वह इरा को घायल चिड़िया समझता है। शंख उसकी आँखों में कैसी वेदना घोल गया, यह वह आज तक नहीं समझ सका। उसे लगता, शंख से ब्याह करने के बाद भी इरा कुमारी है। वह जया की माँ है—दस साल की जया की माँ, वह बात भी उसके सामने नहीं टिकती। फ़िल्म में हज़ार बार दुलहिन बनती है इरा। हर बार वह कुमारी ही होती है, यह बात मनोज के दिल में लगती है।

इरा के प्रेमियों की कमी नहीं। कई बार मीना-बाज़ार में यह ढिंढोरा पिट चुका है कि इरा फिर से ब्याह रचाने जा रही है और शंख को वह मक्खी की तरह दूध से निकाल चुकी है।

मनोज यह बात भूल सकता है कि इरा आख़िर एक तवायफ़ की बेटी है। वह यह बात मानता है, नारी से प्रेम करने के लिए परम आवश्यक है कि हम उसके अतीत को भूल जायँ।

जयन्त ने अपनी दूसरी फ़िल्म में इरा को हीरोइन बना लिया। स्वयं हीरो बना। कम्बख्त को शरम भी नहीं आती। घर में उर्वशी जैसी अप्सरा पत्नी है, फिर भी इरा के पीछे भागता है। एक-दो और प्रोड्यूसरों

ने भी इरा और जयन्त की जोड़ी पेश की। जयन्त ने अपनी तीसरी फिल्म में इरा को ऐसा हाथ पर चढ़ाया, प्यार-मुहब्बत के ऐसे-ऐसे दृश्य पेश किये जिनमें अभिनय करते-करते इरा उनमें डूब गई।

मनोज अपने मित्रों में कई बार यह चर्चा ले बैठता है, "जयन्त और इरा ने मज़े लेने के लिए कुछ ऐसे दृश्य भी फिल्माये जो 'सैक्स अपील' और 'न्यूडिटी' [नग्नता] के गरमागरम 'मास्टरपीस' थे। ये सब फ़िल्म के रसियों को तो न दिखाये जा सकते थे। फ़िल्म में तो वही 'सीन' रहे, जिनकी 'सेन्सर' ने आज्ञा दी।"

महफ़िल में बैठे मित्र मनोज की ओर सहानुभूति से देखते हैं, तो शह पाकर मनोज कहता है, "इरा की कितनी ही नग्न मूर्तियाँ और फ़ोटो जयन्त ने बनवाये।"

"इसे आर्ट से दिलचस्पी भी कह सकते हैं!" कोई चुटकी लेता है।

"पर माई डीयर, यह बात भी दुनिया से भूली नहीं कि घण्टों बन्द कमरों में जयन्त और इरा वह इण्टरेस्टिंग खेल खेलते थे जिसे रिहर्सल का नाम दिया जाता है!"

इस बीच एक फ़िल्म में, जिसका प्रोड्यूसर मनोज ही था, मनोज ने इरा को हीरोइन बनाकर जयन्त के दाँत खट्टे करने की पूरी कोशिश की थी। पर न तो वह जयन्त वाले दृश्यों के स्तर तक उभर सका, और न इरा ने ही उतनी दिलचस्पी दिखाई। उधर जयन्त ने शोर मचाया कि इरा पर तो एकमात्र उसी का अधिकार है। इरा को विश्वास हो गया कि फ़िल्म में उसका भविष्य जयन्त के साथ बँधा है। इरा ने जयन्त के साहस को सराहा। उर्वशी जैसी सुन्दरी का पति होकर भी वह पीछे नहीं हटता। बदनामी का भय जैसे जयन्त को छू तक न गया हो!

मनोज सारी वस्तुस्थिति की खिल्ली उड़ाता है मन-ही-मन। कोई बात हुई भला! अब तो यही भेड़-चाल चल पड़ी है। सभी प्रोड्यूसर जयन्त और इरा की जोड़ी ले रहे हैं। रही-सही कसर जयन्त अपनी 'कला

मोवीटोन' में निकाल लेता है। इरा की शर्त ही जयन्त के साथ काम करने की रहती है। प्रोड्यूसर मजबूर होकर जयन्त को लेता है। जयन्त भी अकड़कर इरा के बराबर कीमत माँगता है। धन्य हो गुरु! पूरे चार सौ बीस ही तो हो, जयन्त भाई! जा-बेजा अपनी कीमत बढ़ा रहे हो।

यह जमाना भी खूब है! अशोक कुमार हीरो तो नलिनी जयवन्त हीरोइन। मतलब यह कि अशोक के साथ नलिनी की कीमत बढ़ती गई। सुरैया ने देवानन्द को बढ़ावा दिया। दिलीप और कामिनी। उन्हीं के अनुसार कहानी की कास्टिंग करनी पड़ती है।

मनोज सोचता है, जयन्त के पास कोई जादू की अँगूठी तो नहीं, जिसके जोर से उसने इरा को मुझसे हथिया लिया! कोई महफ़िल हो, कहीं भी फ़ोटो लिया जा रहा हो, भाँड और जोकर का-सा चेहरा लिये जयन्त आकर इरा के पहलू में खड़ा हो जाता है।

मनोज को जयन्त से यह भी शिकायत है कि वह अपनी पिक्चर में इरा को हमेशा अपने से कम रोल देता है; सारी कहानी अपने गिर्द नचाता है।

मनोज सोचता है, धरती गोल है; एक दिन इरा पलटकर मेरी तरफ़ देखेगी, और जयन्त के चक्कर से निकल आयेगी। इरा का ध्यान आते ही उसकी रग-रग में घुँघरू बज उठते हैं। वह मन-ही-मन कहता है, "इरा करोड़ों दिलों पर राज करती है, मेरे दिल पर भी!"

इरा का ध्यान आते ही मनोज को चेखव के एक पत्र के ये शब्द स्मरण हो आते हैं: "···स्त्री का वर्णन इतना सजीव और जानदार हो कि उसे पढ़ते ही आप ऐसा अनुभव करने लगें, जैसे आपके जूतों पर पालिश नहीं है, जैसे आपकी टाई की गाँठ ठीक नहीं बँधी है, बिलकुल ऐसे ही जैसे आप वास्तव में किसी स्त्री को देखकर अनुभव करते हैं।"

इरा का आदर करता है मनोज। दिन में एक-आध बार उससे मिले बिना तो उसका काम नहीं चलता। अवसर पा जाय, तो घण्टों उसके साथ बिता देता है। जयन्त वहाँ उपस्थित भी क्यों न हो, वह

सिर्फ इरा को देखता है।

"सच बात तो यह है इराजी, हम एक डाल के पंछी हैं। मज़े से एक पिक्चर में काम करने के दो-ढाई लाख मिल जाते हैं।"

"कभी यह पिक्चर, कभी वह पिक्चर। शूटिंग में ही हमारे प्राण छूट जायेंगे। रुपया तो साथ जाने से रहा।"

"प्रेम को शूटिंग से ही मत नापो। रुपये से ही मत तोलो।"

"प्रेम ? वह यहाँ कहाँ ? और रुपया किसके हाथ में टिका है ?"

"शंख का पत्र तो आता होगा ?"

"क्यों नहीं ?"

"जया को देखने नहीं आया शंख ?"

"इसमें मैं क्या बोल सकती हूँ ?"

"कम्बख्त को कला की पूरी समझ है। पर इस मीना-बाज़ार का तो बाबा आदम ही निराला है। हमारी इरा को खादी के सफ़ेद वस्त्र पहनने सिखा गया और फिर लौटकर न आया।"

"आ जायगा, जब उसका मन चाहेगा।"

"उसके संगीत की सबसे बड़ी विशेषता है संयम। सन्तुलन में भी उसका जवाब नहीं। पर लोग तो चुलबुलिया चमाचम गाने ही पसन्द करते हैं। जहाँ झूठ निभ सके, वहाँ सच कैसे टिके ? गोबिन्दन का संगीत चलता सिक्का है।"

इरा को प्रभावित करने का कोई भी अवसर मनोज हाथ से नहीं जाने देता। भाषणबाज़ी से भी नहीं चूकता। "प्रेम की रंगभूमि पर भी क्या प्रॉम्पटर चाहिए ? प्रेमी को घोड़े की तरह हिनहिनाना तो नहीं चाहिए। बम्बई ड्राई हो गई। एक्टरों की आवाज़ भारी होने का डर नहीं रहा। मन के भीतर के शैतान को छुट्टी दिये बिना प्रेम पनप नहीं सकता। सादगी चाहिए, सचाई चाहिए। छल नहीं, कपट नहीं। तब जलता है प्रेम का दीया !..."

"बाती के बिना ही ?" इरा हँस पड़ती है।

"प्रेम कोई बनावट नहीं, फ़ैशन नहीं। प्रेम तो इन्सानियत की अमर कहानी है! प्रेम तो पूजा है।"

"तो मन्दिर में जाकर मूर्ति पर फूल चढ़ाइए।" इरा फिर हँस पड़ती है।

इस प्रकार की अनेक मुलाकातें होती ही रहती हैं। अभिनय, मात्र अभिनय! मनोज को इसका दुःख है। इरा को वह अभिनय से कहीं मूल्यवान समझता है। एक दिन इरा मेरी होकर रहेगी। वह सोचता है, फिर मुझ पर, मेरी बातों पर हँसेगी नहीं। अपलक आँखों से इरा की ओर देखता है, इरा से बात किये बिना ही नशा-सा चढ़ने लगता है। दूसरी कोई सुन्दरी मनोज का मन नहीं मोह सकती; ब्याह के चक्कर में पड़ने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अपनी कम्पनी फेल हो गई। दूसरों की कम्पनियों में काम करना पड़ता है—हीरो का काम। पहले हीरोइन होती थी इरा। अब तो नई-नई हीरोइनें आ गई। किसी के साथ मन का मेल नहीं बैठता। मन की कंचन-कुमरी है इरा! युग-युग जीओ, इरा! शायद एक दिन तुम मेरी बनना स्वीकार करो। मेरे मन-मन्दिर की देवी, युग-युग मुस्कराओ! शंख अब नहीं आयेगा। उसका ख़याल छोड़ दो। जयन्त अपनी उर्वशी का है, उसे भी छोड़ो। अपनी गाड़ी चल सकती है मज़े से!···

तीन

मुक्तिबोध से मिलिए, तो वह अपने अनुभव की पिटारी खोलकर बैठ जाता है। वह बलपूर्वक कहता है :

"एक दौर में म्यूज़िक-डाइरेक्टर को सबसे अधिक पारिश्रमिक दिया जाता था। दूसरे दौर में हीरोइन ही इस तराज़ू में सबसे भारी तुलने लगी। अब हीरो ढाई-तीन लाख में तुलता है। एक फ़िल्मी पत्रिका के सम्पादक ने ठीक ही लिखा है—'दुनिया की कौनसी ऐसी इण्डस्ट्री है जिसमें मुँह रंगकर पैंतीस-चालीस रोज काम करने का मुआवज़ा ढाई या तीन लाख रुपया है ?····छः, आठ या दस लाख की लागत की फ़िल्म का चौथा हिस्सा सिर्फ हीरो को ही दे दिया जाय तो मुनाफा खाक आएगा ?···फिल्म-निर्माता भी जानता है कि आज अमुक हीरो लोक-प्रिय है !···बड़ी रकम देने के बाद भी हीरो, जो एक साथ छः-छः, सात-सात फ़िल्मों में काम करता है, एक फ़िल्म की शूटिंग के लिए ज्यादा-से-ज्यादा चार या पाँच रोज ही दे सकता है !···जिन फ़िल्मों में कास्ट पर पूरी रकम खर्च कर दी जाती है, उन फ़िल्मों में काम करने वाले दूसरे लोगों को मुआवजा बहुत ही कम मिलता है।···फ़िल्म कौन तैयार करता है—आर्टिस्ट या टैकनीशियन ? फिल्म के विभिन्न विभागों में काम करने वाले लोगों के मुआवजे में इस समय जो लम्बा फासला पाया जाता है, यह फिल्म इण्डस्ट्री के भविष्य के लिए बहुत भयानक है !"

राज राज अनुपम और शेखर एक साथ चाय पी रहे हैं।

"हिसाब लगाकर देखता हूँ, शेखर भाई ! मैंने हजारों गीत लिख डाले, पर मुझे उनका मोल क्या मिला ?"

"आज ये बहकी-बहकी बातें क्यों कर रहे हो ?" शेखर हँस पड़ता है, "अगले जन्म में लड़की का जन्म लेना। फिर तुम्हें भी इरा जितने पैसे मिल सकते हैं। लाखों में खेल सकोगे।"

"इस जन्म में क्यों नहीं ? जयन्त और मनोज को क्या सुरखाब के पर लगे हैं ?"

"खैर छोड़ो। आजकल तो जयन्त और इरा का जोड़ा खूब चल रहा है।"

"मनोज पीछे रह गया।"

"मनोज ने अब तक शादी नहीं की।"

"इरा को हथियाने का सपना देखता है कम्बख्त !"

"शायद उसका सपना सच हो जाय। शंख तो लौटकर आने से रहा।"

"जयन्त को मिले इरा, चाहे मनोज को। हमें तो पूरी मजदूरी मिलनी चाहिए।"

शेखर पहले डटकर गोविन्दन की चटपटी धुनों की प्रशंसा करता है। फिर कहता है, " तुम तो इतने पैसे मार लेते हो, कभी हमारे लिए सोचा है !"

"क्यों, तुम्हारा गुजारा ठीक नहीं चल रहा ?"

मजा आ जायगा, जब लाखों में तुलने वाले सफेद हाथी हमारे संग तुलेंगे। खैर छोड़ो। आजकल फ़िल्मी हलकों में इस बात पर गरमा-गरम बहस हो रही है कि किसी फ़िल्म के लिए 'एवार्ड' किसे मिलना चाहिए।"

"सत्यजीत राय ने अच्छा किया कि फ़िल्म फेडरेशन ऑफ़ इण्डिया के जलसे में शामिल न हुआ।"

"मज़ा आ गया, गोबिन्दन जी! राजकपूर के 'जागते रहो' को चैकोस्लोवाकिया के फ़िल्मी मेले में बेहतरीन फ़िल्म करार दिया गया, और सत्यजीत राय की 'अपराजिता' को वीनस के फ़िल्मी मेले में दुनिया की सर्वोत्तम फ़िल्म कहकर इज्जत बख्शी गई। इस पर हमारी फ़िल्म-फ़ेडरेशन ऑफ़ इण्डिया की नींद टूटी, और उन्होंने जलसा किया। हमारे देश की नींद हमेशा पीछे टूटती है। टैगोर की 'गीतांजली' पर नोबल प्राइज़ दिये जाने के बाद ही तो हमने टैगोर को पहचाना था।"

"बात तो सत्यजीत राय की चल रही थी। राजकपूर ने तो मज़े से जाकर अपना सम्मान करा लिया। पर सत्यजीत राय ने लिखा—मैं फ़ेडरेशन का यह सम्मान सिर्फ़ डाइरेक्टर की हैसियत से ही प्राप्त कर सकता हूँ, प्रोड्यूसर की हैसियत से नहीं, क्योंकि वीनस के फ़िल्मी मेलों में मेरी कलात्मक प्रतिभा को सराहा गया, न कि मेरी जेब को!"

"जानते हो इसके पीछे क्या बात काम कर रही थी?"

"वही न! दो साल पहले सत्यजीत राय की 'पथेर पांचाली' को भारत सरकार ने सर्वोत्तम फ़िल्म करार दिया था। नैशनल लेबोरेटरी, दिल्ली में 'पथेर पांचाली' का एवार्ड सत्यजीत राय ने नहीं, बंगाल सरकार के डाइरेक्टर ऑफ़ पब्लिसिटी ने प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू के हाथों से प्राप्त किया, हालाँकि सभी मानते थे कि इस फ़िल्म की सफलता सत्यजीत राय की डाइरेक्शन के कारण हुई, न कि बंगाल सरकार की जेब के कारण।"

"अरे भाई, यह दुनिया है। सब चलता है।"

अहल्या के मुख पर मेक-अप का नहीं, खुशी का रंग खिल रहा है।

"माँ, एक खुशखबरी सुनोगी?"

"क्या ?"

"हमारे पैसे बढ़ जायेंगे।"

"कैसे ?"

"बड़े-बड़े आर्टिस्टों के पैसे घटेंगे, तो हमारे पैसे बढ़ेंगे, यह तो पक्की बात है।"

"लड्डू भले ही फूट जाय, उसमें से तुम्हें तो हिस्सा मिलने से रहा।"

"यह गलत बात है, माँ ! यह मजदूर का जमाना है। हम मज-दूर हैं। यह नहीं चलेगा कि बड़े-बड़े आर्टिस्ट तो ब्लैक में सत्तर-सत्तर, अस्सी-अस्सी हजार माँगें, और हमें सफेद में भी पाँच सौ पूरे न मिलें।"

"ये बातें बनाओगी तो इतने से भी जाओगी, जो तुम्हें मिल रहा है। यह तो गोविन्दन के कारण तुम्हें साइड रोल मिल जाता है, नहीं तो एक्स्ट्रा में भी कोई न पूछे। भगवान् का नाम लो। जो मिलता है, ठीक है।"

मैना की समझ में यह बात नहीं आती कि बड़े आर्टिस्टों की बड़ी रकमों के विरुद्ध दामन साहब क्यों इतने चिल्ला रहे हैं। बड़े आर्टिस्टों को ज़्यादा-से-ज़्यादा मुआवज़ा मिले, तो दामन साहब की जेब से कुछ जाता नहीं, और अगर बड़े आर्टिस्टों का मुआवज़ा कम हो जाता है, तो इससे दामन साहब की जेब में कुछ आता नहीं।

"मैं कहती हूँ बेटी, एक दिन 'फ़िल्म फेयर' के एडीटर की पार्टी कर दो। साथ ही दामन साहब को भी ज़रूर बुलाना।"

"वे लोग तुम्हारा गाना सुनने की ज़िद करेंगे, माँ !"

"मैं सुना दूँगी, भले ही मैंने गाना बन्द कर रखा है। तुम्हारी पब्लिसिटी तो इन्हीं लोगों के हाथ में है न, बेटी ! इन्हें खुश रखा करो।"

इरा माँ के पास बैठकर फ़िल्मी पत्रिका में प्रकाशित नरगिस का एक लेख पढ़ रही है, 'बड़े आर्टिस्ट, बड़ी रकमें'।

"…रूस में मैं दो बार गई हूँ। रूस जैसे कुछ एक देशों में आर्टिस्ट, लेखक या सांस्कृतिक सरगर्मियों में हिस्सा लेने वालों को सबसे ज़्यादा मुआवज़ा दिया जाता है। ये लोग स्टेज और सिनेमा में काम करते हुए लाखों रूबल्स कमाते हैं और उन्हें लाखों रूबल्स देते वक्त कभी किसी को मानसिक कष्ट नहीं होता।…

"…हमारी फ़िल्म इण्डस्ट्री का ढाँचा कुछ अजीब-सा है और हमारे फ़िल्म-आर्टिस्ट की ज़िन्दगी में तरक्की का दौर सिर्फ़ चन्द साल तक रहता है।… जिस इण्डस्ट्री में बड़ी उम्र के आर्टिस्टों को नज़र-अन्दाज़ किया जाता है और बाज़ औकात जिन्हें अपनी फ़िल्मी ज़िन्दगी के आखिरी दौर में एक एक्स्ट्रा के तौर पर काम करना पड़ता है, उस इण्डस्ट्री में कोई एक्टर या एक्ट्रेस बुरे दिनों के ख़िलाफ़ अपनी हिफ़ाज़त करे तो किस तरह ?…

"…मेक-अप रूम, केण्टीन, स्टूडियो की स्टेज, गुसलखाना—ग़र्ज़ कि स्टूडियो से सम्बन्धित किसी भी हिस्से को देखा जाय, हर हिस्से में घण्टों बैठना तो दरकिनार, घड़ी-भर के लिए रुकना भी स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। जहाँ काम करने में बेकायदगी हो, जहाँ काम करने के तरीके ग़ैर-यकीनी हों, वहाँ एक आर्टिस्ट की ज़िन्दगी कैसे ख़तरे से ख़ाली रह सकती है ? और अपने-आपको इस ख़तरे से बचाने के लिए सिर्फ़ ज़्यादा-से-ज़्यादा रुपया कमाने की बजाय और कोई तरीका भी तो नहीं।

"…बुढ़ापे के लिए कोई पेंशन नहीं। फ़िल्म के अलावा दूसरे कामों में बड़ी उम्र के आर्टिस्टों की कलात्मक योग्यता से लाभ उठाने का कोई प्रबन्ध नहीं।…

"…मेरी राय यह है कि फ़िल्म में बड़े आर्टिस्ट हों या छोट, फ़िल्म को उसकी ख़ूबियों से परखना चाहिए। 'पथेर पांचाली', 'झनक झनक

पायल बाजे' और 'प्याला' आदि फ़िल्मों की सफलता ने यह बात सिद्ध कर दी है कि बड़ी कास्ट की फ़िल्म बनाना ज्यादा बेहतर है।

"...हाल ही में, शायद आपको याद होगा, 'मदर इण्डिया' में आग के एक दृश्य में मुझे एक हादिसे का शिकार होना पड़ा और मैं बाल-बाल बच गई। मुझे यकीन है कि अगर कहीं यह हादिसा मेरी शक्ल-सूरत या जिस्म के किसी हिस्से पर भी असर-अन्दाज़ होता तो फ़िल्मों में काम देना तो दरकिनार, कोई फ़िल्म-निर्माता यह जानने के लिए भी मेरे पास न आता कि मेरा क्या हाल है ?

"....फ़िल्मों में काम करते हुए नुकसान की तलाफ़ी या बीमा का कोई बन्दोबस्त नहीं।

"....मैंने हर फ़िल्म में जी लगाकर काम किया है। मुझे अपने पेशे पर फ़ख्र है।... फ़िल्म के सरमाये पर बोझ बने बग़ैर हम फ़िल्मी गाड़ी को निहायत खुश-अस्लूबी से चला सकते हैं।"

माँ कहती है, "कैसी-कैसी दलीलें दी हैं जद्दन बाई की बेबी रानी ने ! अच्छा हो कि इस समस्या पर तू भी एक लेख लिखे, इरा ! हमारे पेट पर लात मारते हैं तुम्हारे दामन साहब ! बेटी, कभी-कभी उन्हें खाने पर बुला लिया करो। इन लोगों का मुँह बन्द रखने का सबसे अच्छा उपाय तो यही है। किसी ने कहा है न—दिमाग़ को जाने वाला रास्ता पेट से होकर जाता है।"

इरा मुस्कराती है, "मेरी राय तो तुम जानती हो। मेरी तो शुरू से ही यह राय रही है कि फ़िल्म में आर्टिस्टों के साथ-साथ टैकनीशियनों के साथ ज़्यादा-से-ज़्यादा न्याय किया जाय।"

चार

दामन साहब एक फ़िल्मी पत्रिका के सम्पादक हैं। नरगिस का लेख 'बड़े आर्टिस्ट, बड़ी रकमें' छापकर उन्होंने अपनी पत्रिका का ढोल बजा दिया।

सम्पादकीय लेखों में दामन साहब आजकल बड़े आर्टिस्टों को दी जाने वाली बड़ी-बड़ी रकमों के विरुद्ध लिख रहे हैं। अपनी विचारधारा के पक्ष में उन्होंने हाल ही में इस का एक लेख प्रकाशित किया है।

दामन साहब की दलील है—"इतनी बड़ी-बड़ी रकमों का मुतालबा करने वाले फ़िल्म-आर्टिस्ट अपने साथ फ़िल्म-इण्डस्ट्री को भी ले डूबेंगे।" सम्पादकीय का शीर्षक है—'नये चेहरों की तलाश'।

इस सिलसिले में दामन साहब ने निर्देशक शान्ताराम, सोहराव मोदी और दिलीप कुमार के साथ इण्टरव्यू लिया और उनके विचार पाठकों के सामने पेश कर दिए।

शान्ताराम ने अपने उत्तर में कहा :

"कोई मुझसे पूछे कि फ़िल्मी सितारों को ज्यादा मुआवज़ा दिया जाता है, तो मेरा जवाब है कि नहीं—क्योंकि कम-से-कम मुझ पर ज्यादा मुआवज़ा देने का इलज़ाम नहीं लगाया जा सकता। इसके बर-अक्स मुझ पर तो यह इलज़ाम लगाया जाता है कि मैं बहुत कम मुआवज़ा देता हूँ। दरअसल मैं सितारों के नाम पर अपनी फ़िल्में बेचने की कोशिश नहीं करता। 'झनक झनक पायल बाजे' की फिल्मबन्दी से

पहले मुझसे कहा गया था कि मैं सन्ध्या की बजाय वैजयन्तीमाला आदि किसी मंजी हुई नर्तकी को लूँ। इसी तरह 'तूफ़ान और दीया' के समय भी अनुभवी आर्टिस्टों को लेने का उपदेश दिया गया। पर इन दोनों फ़िल्मों में नये लोगों से काम लिया गया, और सब जानते हैं कि प्रयोग सफल रहा। इसका मतलब यह है कि हमारे देश में कलात्मक प्रतिभा की कमी नहीं। अगर फ़िल्म-निर्माता मुनासिब तरीके से नये चेहरों को ढूँढ़ निकालें, तो बड़े सितारों के पीछे दौड़ने की ज़रूरत ही नहीं।"

सोहराब मोदी ने ये विचार प्रकट किये :

"सितारों को हरगिज़ ज्यादा मुआवज़ा नहीं दिया जाता। फ़िल्म-इण्डस्ट्री में हर प्रतिभावान् व्यक्ति की खुशहाली का दौर काफी लम्बा होता है। मगर फ़िल्मी सितारे ज्यादा-से-ज्यादा दस साल तक चमकते हैं। अपनी खुशहाली के दौर में उनकी आमदनी का बहुत सा हिस्सा टैक्सों की सूरत में निकल जाता है और जब वे रिटायर होते हैं तो उनके सामने अपने लम्बे-चौड़े परिवार को पालने का सवाल पैदा होता है। गैर-यकीनी भविष्य का यही भय उन्हें बड़ी-बड़ी रकमें माँगने पर मजबूर कर देता है। असल में अभिनय का पेशा दूसरे पेशों से मुख़्तलिफ़ है। दूसरे तमाम पेशों में परिपक्वता इन्सान की ज़िन्दगी में ज्यादा आमदनी लाती है। मगर अभिनय के पेशे में ज्योंही अभिनेता के अभिनय में परिपक्वता पैदा होती है, वह महसूस करता है कि अब यह पेशा छोड़ने का वक्त आ गया है। इसलिए सितारे अपनी जवानी में ज्यादा-से-ज्यादा आखिर क्यों न कमायें?"

दिलीप कुमार ने यह वक्तव्य दिया :

"जब फ़िल्म-निर्माता बड़ी रकमें पेश करें, तो आखिर फिल्म-आर्टिस्ट उन्हें लेने से क्यों इन्कार करें? यही कारण है कि इस समस्या को किसी और पहलू से देखना चाहिए। फ़िल्म-निर्माता सितारों को बड़ी रकमें इसलिए पेश करते हैं, क्योंकि सरमायेदार से सरमाया लेने

और फ़िल्म की फ़रोख्त का दारोमदार इस बात पर है कि आखिर उनकी फ़िल्म में कौनसे आर्टिस्ट काम कर रहे हैं। इसलिए यह कहने की बजाय कि सितारों को ज्यादा मुआवज़ा दिया जाता है, यह बात ज्यादा कहूँगा कि फ़िल्म-निर्माताओं को कम अदायगी की जाती है। इस प्रश्न का एक और पहलू भी है कि जब फ़िल्मी बजट का सबसे बड़ा हिस्सा फ़िल्म-आर्टिस्ट ले जायगा तो ज़ाहिर है, प्रोडक्शन के दूसरे विभागों पर खर्च करने के लिए फ़िल्म-निर्माता के पास बहुत ही कम रुपया रह जायगा। और चूँकि फ़िल्म की सफलता में सिर्फ फ़िल्म-आर्टिस्ट का ही नहीं, दूसरे विभागों का भी बहुत हाथ होता है, इस-लिए जो आर्टिस्ट ज्यादा मुआवज़ा लेता है, दूसरे मानों में वह खुद अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारता है। इसके बावजूद कहा जा सकता है—क्योंकि फ़िल्म-आर्टिस्टों का भविष्य ग़ैर-यकीनी है, इसलिए वे बड़ी रकमों का मुतालबा करने में हक-बजानब हैं।"

अपनी टिप्पणी में दामन साहब ने यह सुझाव दिया कि नये चेहरों की तलाश में कोई कसर उठा न रखी जाय। साथ ही दामन साहब ने यह चेतावनी दी—"नये चेहरे पेश करने वालों में आत्मविश्वास तो होना ही चाहिए। पर नये चेहरों को लेना जहाँ अक्लमन्दी है, वहाँ यह कदम फ़िल्म-निर्माता की नाव को डुबो भी सकता है, क्योंकि यह जरूरी नहीं कि नये चेहरे फ़िल्म को सफल बना दें। यह सौभाग्य की बात है कि शायद ही कोई फ़िल्म होती होगी जिसमें एक-न-एक नया चेहरा पेश न किया जाता हो। 'मदर इण्डिया' में निर्देशक महबूब ने अज़रा के नाम से एक सुन्दर चेहरा पेश किया है। इस फ़िल्म में नन्हा अभिनेता साजिद भी नये अभिनेताओं की पंक्ति में विशेष स्थान रखता है। हीरो की भूमिका के लिए राजकुमार को भी किसी भी फ़िल्म में स्थान दिया जा सकता है। विमलराय 'अपराधी कौन' में लीलीन के नाम से एक नया चेहरा पेश कर रहे हैं। जी० पी० सिप्पी की फ़िल्म 'नीलोफ़र' में फ़ीरोज़ के नाम से एक नया चेहरा हीरो की

भूमिका में पेश हो रहा है। फ़िल्म-निर्माता गुरुदत्त अपनी फ़िल्म 'गौरी' में अपनी पत्नी और प्रसिद्ध प्ले-बैक गायिका गीता दत्त को हीरोइन की भूमिका में ला रहे हैं।'''अन्त में दामन साहब ने यह सुझाव दिया कि फ़िल्म-निर्माताओं के लिए अधिक-से-अधिक सरमाया उपलब्ध करने हेतु किसी कारपोरेशन का निर्माण बहुत ज़रूरी है और यह कारपोरेशन सरकारी सहायता के साथ खड़ी की जा सकती है।

प्रसिद्ध कहानी-लेखिका और फ़िल्म-निर्माता इस्मत चुग़ताई ने भी 'बड़े आर्टिस्ट, बड़ी रकमें' के सिलसिले में मजेदार बातें लिखीं :

"''''''नरगिस एक महान् अभिनेत्री है और बहुत प्यारी लड़की है, पर देश की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं पर यों उचटती हुई राय न दे, तो और भी प्यारी लगेगी। '''फ़िल्म-आर्टिस्ट लाखों लेते हैं, क्योंकि प्रोड्यूसर देता है, जिसे डिस्ट्रीब्यूटर देते हैं, जो सिनेमावालों से पैसा बटोरते हैं, जिनके हाथ में जनता के बटुए की डोरी है।

"और बेचारा प्रोड्यूसर तो टूटा-फूटा दलाल है। बाज़ार में जिस चीज़ की माँग होती है, वही थाल में सजाकर बैठ जाता है। '''वह तो व्यापारी भी नहीं, सड़क पर चिल्ला-चिल्लाकर बेचने वाला फेरी वाला है।

"यह रूस और चीन की मिसाल अगर नरगिस ने न दी होती तो अच्छा था। ऐसी भोंडी मिसालों से बहुत से खरिण्ड छिल जाते हैं। '''नरगिस तो वहाँ के बड़े कलाकारों से मिली होगी। काश वह उनसे पूछती कि वे कितना रुपया ब्लैक की सूरत में लेते हैं। ब्लैक में रुपया लेने का यह मकसद होता है कि सरकार को इन्कम-टैक्स न देना पड़े, क्योंकि उस रुपये की कलाकार कोई रसीद नहीं देते। यह प्रोड्यूसर की ज़ात पर नहीं, जनता की जेब पर डाका है।

"'''आपको शायद मालूम नहीं कि वह रुपया, जो ये महान् कलाकार ब्लैक की सूरत में लेते हैं, प्रोड्यूसर बेचारा उसका हिसाब कैसे मर-खप कर करता है। झूठी रसीदें बनाई जाती हैं। जिस छोटे

ग्रार्टिस्ट को सौ दिये जाते हैं, उससे पाँच सौ की रसीद ली जाती है। कुछ ऐसे भी बेकार और मजबूर हैं, जो एक वक्त की रोटी खाकर रसीदें दे जाते हैं। यह चक्कर इतना पेचीदा है कि इन्कम-टैक्स वाले किसी को पकड़ ही नहीं सकते। ग्रार्टिस्ट ब्लैक का रुपया सफ़ेद रुपये से पहले वसूल करते हैं। और यह रुपया बड़ी होशियारी से वसूल किया जाता है। हज़ार के नोट को तो ये हाथ नहीं लगाते, न चैक ही कबूल करते हैं कि शायद कुछ पकड़-धकड़ हो जाय। दो-चार हाथों में से गुज़रकर रुपया कलाकार तक पहुँचता है। कोई रिश्तेदार या सेक्रेटरी वसूल करता है और फ़ौरन यह रुपया किसी गोल-मोल तरीके से या तो बैंक के लाकर में पहुँच जाता है, या ज़ेवर, ज़मीन, मोटरों और बँगलों की सूरत अख्तियार कर लेता है। यहाँ भी खरीद-फरोख्त कला कार के नाम से नहीं, काल्पनिक या किसी रिश्तेदार के नाम से होती है।

"कुछ ग्रार्टिस्ट और भी-होशियारी करते हैं। अगर एक लाख पर मामला तय हुआ, तो तीस हजार सफेद, बाकी सत्तर हज़ार काले। अब इस तीस हज़ार में भी तीन काण्ट्रेक्ट होते हैं—एक किसी बहन या भाई का, एक किसी और काल्पनिक कलाकार का, एक असल कलाकार का। इन्कम-टैक्स वाले पकड़ न सकें, इसलिए ये दूसरे लोग, जिनके नाम से काण्ट्रेक्ट होते हैं, एक झलक परदे पर दिखा जाते हैं।...एक लाख पर मामला तय हो तो दो कागज लिखे जाते हैं। एक होता है पूरी रकम का यानी एक लाख का और एक होता है सफेद रकम का। इन पर एकतरफ़ा दस्तख़त होते हैं, सिर्फ प्रोड्यूसर के। जब ब्लैक का रुपया पूरा अदा हो जाता है तो वह एक लाख वाला कागज़ फाड़ डाला जाता है। बाकी सफेद रुपये वाला कागज दिखाने को रह जाता है।

"...कुछ प्रोड्यूसर भी पत्तेबाज़ हैं। झूठ-सच जोड़-तोड़कर ग्रार्टिस्ट का रुपया गोल कर जाते हैं। पचास हज़ार का काण्ट्रेक्ट

किया। दस हज़ार देकर दस दिन की शूटिंग में सारा काम चालाकी से ख़त्म कर डाला। बहुत से क्लोज़-अप ले डाले और किसी दूसरे आदमी की पीठ दिखाकर पिक्चर ख़त्म कर डाली। बाकी चालीस हज़ार हज़म। अब करते फिरें उन पर दावे। और गड़बड़ की तो दीवाला निकाल दिया।···

"दुनिया बदल रही है, और जिसे ज़िन्दा रहना है उसे बदलना ही पड़ेगा। छोटे-मोटे काम करने वालों में अब यह अहसास पैदा होता जा रहा है कि सिर्फ़ बड़े आर्टिस्ट ही नहीं, हम भी फिल्म को बनाने और बिगाड़ने को ताकत रखते हैं। मुआवज़े में कोई तो तवाज़ुन हो। पूरे स्टाफ़ को एक फिल्म में बीस हज़ार मिलता है, जब कि एक बड़ा आर्टिस्ट ही दो-तीन लाख ले जाता है।···वह दिन भी दूर नहीं कि ख़ुद अपना मुआवज़ा तय करते वक्त यह भी देखना होगा कि दूसरों को कितना मिल रहा है। उस अन्तर को, जो एक अभिनेता और लाइटमैन की आमदनी में है, ख़ुद दूर करना होगा, नहीं तो वह लाइटमैन यह काम अपने हाथ में ले लेगा।

"हम हिन्दुस्तानी अन्धे पुजारी हैं। पत्थर के देवता को सोने के मन्दिर में सुलाकर खुद सड़क पर करवटें बदलते हैं। दिलीपकुमार और नरगिस के दर्शनों के लिए अपने बच्चों का पेट काटते हैं। धूप और वर्षा में क्यू लगाकर खड़े होते हैं। क्या हमारे ये फिल्मी ख़ुदा कठ-पुतलियाँ हैं? क्या यह निरा अभिनय है? भावना का बिल्कुल दख़ल नहीं? क्या 'नया दौर' में ताँगे वाले का रोल अदा करते वक्त दिलीपकुमार ने देश के हजारों ताँगेवालों के लिए कुछ महसूस नहीं किया? क्या 'मदर इण्डिया' में हिन्दुस्तान की मां की भूमिका में काम करते समय नरगिस ने ममता की कोई लहर न महसूस की? क्या ब्लैक मार्केटिंग और गुण्डागर्दी के विरुद्ध लड़ने वाले इन्सान की भूमिका में देवानन्द ने फिल्मी काले बाज़ार के बारे में कुछ नहीं सोचा? क्या ये महान् कला-कार छोटे मजदूरों की हालत से बेख़बर हैं? क्या वे एक क्षण के लिए

भी सोचते हैं कि कितने स्टूडियो वक्ती तौर पर जब बन्द कर दिये जाते हैं, तो इन लाइट संभालने वालों पर क्या गुजरती है, जो इन अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के सुन्दर चेहरों को चमकाया करते हैं, जिनकी मेहनतों से उन्हें यह स्वर्गीय सौन्दर्य प्राप्त है ? ये असिस्टेण्ट, जो सिर गाड़ी पैर पहिया किये सैट से मेक-अप रूम की ज़मीन नापा करते हैं; ये केमरा मैन, जो धूप और गरमी में घण्टों मौसम के ज़ुल्म सहते हैं—उन्हें वेतन कितना मिलता है ? मिलता भी है या माँगने पर पत्ता ही कट जाता है ?

"आखिर अभिनेताओं और दूसरे मज़दूरों में इतना अन्तर कब तक कायम रहेगा ?··· पब्लिक फ़िल्म में छम-छम करती अभिनेत्रियों को देखना चाहती है। इस परदे के पीछे कौन ख़ाक और ख़ून में रुलता है, किसीको दिलचस्पी नहीं, किसीको परवाह नहीं।

"मगर यह फ़िल्मी दुनिया स्क्रीन पर ही नहीं, असलियत में भी बनावट के सिवा कुछ नहीं। प्रोड्यूसर अभिनेता की छींक पर भी तड़प उठते हैं, तो सिर्फ़ मसका लगाने के लिए। यही अभिनेता जब उनकी दूकान सजाने के काबिल नहीं रहेगा, तो उसकी अरथी को कन्धा भी नहीं देंगे।

"·····अभिनेता को धन, ख्याति, पब्लिसिटी चाहने वालों की श्रद्धा और पूजा मिलती है। इतना कुछ तो आजकल किसी को भी नहीं मिलता। और बाकी के कलाकारों को वक्त पर वेतन भी नहीं मिलता। उनकी मेहनत की दाद नहीं मिलती, पब्लिसिटी नहीं मिलती और कोई नहीं सोचता कि क्यों ?

"एक दिन जमींदार भी यही सोचता था कि वह ज़मीन का खुदा है। आज उसका क्या हशर हुआ ? यही हशर उस मुनाफाख़ोर सरमायेदार का होगा, जो मज़दूरों को भूखा मारकर तिजोरियाँ भरता है। और वह अभिनेता हो या कलाकार, जो कोई भी हो, इस मनोवृत्ति के साथ इन्सानियत का अलम-बरदार नहीं हो सकता।

"फिल्मी दुनिया में भी दिन-प्रतिदिन जागृति पैदा होती जा रही है। नवयुवक शिक्षित वर्ग इस लाइन की ओर बढ़ता आ रहा है। उनमें यह अहसास शिद्दत से पैदा हो रहा है कि उनके साथ इन्साफ नहीं हो रहा है। मेहनत उन्हें ज्यादा करनी पड़ती है और हिस्सा सिर्फ़ कलाकारों को ज्यादा मिलता है।

"और जब यही चेतना रूस और चीन के मज़दूरों के दिलों में पैदा हो गई थी, तो इनक्लाब आ गया। बेहतरी इसीमें है कि देवतागण जायें, क्योंकि अन्धा पुजारी आँखें खोल रहा है।"

पाँच

"प्रिय शंख,

'रेलिया होइ गई मोर सवतिया, पिया को लादि लेइ गई हो !'—यह गीत गाकर क्या मैं अपने निर्मोही को वापस नहीं बुला सकती ?

तुम हैरान तो होगे। दस बरस बाद तुम्हें यह पत्र लिख रही हूँ। शंकर को तो तुम पत्र लिख सकते हो, मुझे नहीं। अपनी जया को प्यार लिख सकते हो, मुझे नहीं। अपनी इरा को कभी भूलकर ही याद कर लेते।

क्या अब तक पंचानन को संगीत नहीं सिखा पाए ? जया कहती है, नानी से नहीं, मैं तो डैडी से गाना सीखूँगी। जिसे जया ने केवल फोटो में ही देखा है, उसे वह कितना प्यार करती है ! हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती है तुम्हारी ही तरह। मुझसे सुनी हुई तुम्हारी बातें करती है। आकर सुन लो। स्त्री की निगाह दूर तक नहीं जाती, क्या तुम अब भी यही कहते हो ? सपने में भी, तुम्हारे सिवा मैंने किसी पुरुष को विश्वास का अर्घ्य नहीं चढ़ाया। तुम कहोगे, एक एक्ट्रेस के मुँह से इतनी बड़ी बात ! अब तो तुम्हारे बिना बम्बई की रंगभूमि नीरस लगती है, मानो यह सब छलना-मात्र हो। पर अपनी जया तो छलना नहीं। जया में हमारा संगम मुस्कराता है। हमारे प्रेम का वरदान है जया। दो बिछुड़े दिलों को फिर से मिला सकती है जया। मेरा रूप पाया, तुम्हारा स्वभाव, ऐसी है अपनी जया। विश्वास न हो, तो आकर देख लो। शायद इसी तरह

मेरा उद्धार हो सके !

सिरहाने पर सिर रखे चौंक-चौंक उठती हूँ, जब सपना टूट जाता है। आँखों से आँसू झर रहे हैं। एक विचित्र प्रकार की आस-निरास लेखनी से तुम्हें पत्र लिख रही हूँ, मेरे देवता ! क्या अब तक मुझ पर क्रोध उतर रहा है ?

मैंने फ़ैसला किया है कि जयन्त के साथ कभी हीरोइन की भूमिका में काम नहीं करूँगी ।

मैंने फ़ैसला किया है कि काण्ट्रेक्ट करते समय ध्यान रखूँगी कि मेरे कारण कम्पनी के बाकी स्टाफ़ की जेबें तो नहीं कट जातीं। ब्लैक में एक पाई नहीं लूँगी। मेरा रास्ता अब डेढ़ लाख से तीन लाख की ओर नहीं, मैंने घोषणा कर दी। एक काण्ट्रेक्ट का पचास हज़ार से ज्यादा नहीं लूँगी। सरकार को पूरा इन्कमटैक्स दूँगी। वह कदम उठा रही हूँ कि दूसरे आर्टिस्ट शिक्षा लें। वाकई हमारे हीरो-हीरोइनों और दूसरे टैकनीशियनों की आय के बीच अन्धी खाई नहीं होनी चाहिए। यह अन्याय हमें अपने-आप ही तो मिटाना होगा।

मेरे लेख का सबसे पहले मनोज ने ही समर्थन किया। अब वह भी एक काण्ट्रेक्ट के पचास हज़ार से ज्यादा नहीं लेगा।

कल मनोज आया था। उसके साथ काम करने का मैंने वचन दे दिया। हम एक साथ तीन पिक्चरों में आ रहे हैं। तुम आ जाओ, तो तीनों पिक्चरों में तुम्हारा संगीत रहे। तीनों कम्पनियाँ पूरी तरह हमारे हाथ में हैं। मनोज का संकेत ही काफ़ी है।

दस साल बाद 'गुरुदेव' ने बम्बई के सबसे बड़े सिनेमा हाउस में चलकर तीस सप्ताह का रिकार्ड कायम किया। इससे तुम समझ सकते हो, दुनिया कितनी तेज़ी से बदल रही है। कैसे नहीं बदलेगी दुनिया ? अच्छी चीज़ को कब तक नापसन्द किया जाता रहेगा ? तुम आ जाओ। तुम्हें अपने संगीत की कसम, तुम आ जाओ। जाना ही हो, तो अपनी जया से पूछकर चले जाना।

मेरे प्यार की कसम, फ़ौरन चले आओ।"

तुम्हारी
इरा

इरा को अपने डैडी का सिद्धान्त भुलाये नहीं भूलता। एशिया, यूरोप और अमरीका-यात्रा में वह जहाँ भी गई, वहीं उसने डैडी की सूक्ति सुनाकर लोगों पर जादू-सा कर दिया—

जब मेह तब घास !
जब घास तब प्रजा सुखी !
जब प्रजा सुखी तब ऐश !
जब ऐश तब ज़ुल्म !
जब ज़ुल्म तब कहर !
जब कहर तब तोबा !
जब तोबा तब मेह !

इस सूक्ति की प्रथम और अन्तिम पंक्ति में तो जैसे गूढ़ जीवन-दर्शन छिपा है : जब मेह तब घास !....जब तोबा तब मेह !...."सात का चक्कर चलता है !" मदन बाबू कहा करते थे, "यह सदा से चलता आया है, चलता रहेगा।"

न्यूयार्क में जब वह नीग्रो गायिका नोरा फिशर से मिली, तो डैडी की सात चक्करों वाली बात इरा ने नोरा को भी बताई। उसने पूरी सूक्ति झट अपनी नोट-बुक पर लिख ली। अगले दिन जब नोरा ने इरा को खाने पर बुलाया, तो इस सूक्ति पर आधारित एक गीत गाकर सुनाया। नीग्रो जीवन और संस्कृति की भूमिका में भी यह सूक्ति कितनी ज़ोरदार प्रतीत हुई थी। जया तब बच्ची थी। वह तो नोरा के संगीत का रस नहीं ले पाई थी। पाँच साल की बच्ची को मैं कैसे समझाती कि नोरा का गीत तुम्हारे नाना की सूक्ति पर आधारित है।

बुक शैल्फ से गेटे के प्रवचनों पर आधारित आक़ेमान की मूल्यवान पुस्तक खोलकर बैठ जाती है इरा। गेटे उसका प्रिय लेखक है। गेटे की चुटकियाँ, उसके तीखे व्यंग्य, जीवन की गहराई को छूता उसका जीवन-दर्शन उसे पसन्द है। जब भी गेटे की प्रतिभा की कल्पना करती है, उसे लगता है कि किसी विशालकाय चट्टान को छील-छीलकर घड़ी गई थी गेटे की मूर्ति! जैसे वह एक मूर्ति नहीं, कोई त्रिमूर्ति थी। गेटे की रचना में इरा को ब्रह्मा, विष्णु और शिव का अभूतपूर्व सन्तुलन प्रतीत होता था।

आक़ेमान की गेटे-सम्बन्धी पुस्तक पढ़ते-पढ़ते इरा जर्मन-यात्रा के संस्मरणों में खो जाती है। कल्पना के कला-भवन में जैसे वह गेटे से मिल लेती है। गेटे मरा नहीं, वह कभी नहीं मरेगा।···उसे याद आता है, जब जर्मनी में वह गेटे की समाधि पर श्रद्धा के फूल चढ़ाने गई थी। जया के हाथ से भी तो उसने दो फूल समाधि पर रखवाये थे। वहाँ खड़े-खड़े उसे लगा था कि गेटे की आवाज़ आ रही है, "तुम आ गई; शकुन्तले!" उसने जैसे पुकारकर कहा था, "मैं किसी कालिदास की शकुन्तला नहीं, मैं तो इरा हूँ। पाँच वर्ष की एक बच्ची की माँ!"···जैसे गेटे की आवाज़ आई, "माँ बनने से पहले तुम ज़रूर किसी ऋषि के आश्रम में रही हो। तुम्हारा दुष्यन्त तुम्हें छोड़ गया! दुष्यन्त की अनुपस्थिति में ही तुम माँ बनीं। क्यों, मैं कुछ झूठ कह रहा हूँ?"···इसके उत्तर में जैसे इरा रो दी थी, सिसक-सिसककर वह चीख पड़ी थी, "तुमने कैसे यह सब जान लिया?" और उस समय वह अपने दुष्यन्त, अपने शंख की याद में खो गई थी।···शकुन्तला के लिए गेटे की वह सूक्ति इरा को याद थी, जिसमें गेटे ने कहा था कि एक बार शकुन्तला का नाम लेकर मानो उसने पृथिवी और स्वर्ग की समस्त सौन्दर्य-श्री अंकित कर दी।····और अब यहाँ बम्बई में आक़ेमान की गेटे के प्रवचनों वाली पुस्तक पढ़ते हुए उसे लगा कि गेटे पूछ रहा है, "तुम्हारा वह दुष्यन्त तुम्हें मिलने नहीं आया, शकुन्तले!" और इरा ने जैसे चीखकर कहा, "मैं

शकुन्तला नहीं, मैं शकुन्तला नहीं बनना चाहती। मैं तो इरा हूँ! बम्बई की एक एक्ट्रेस!"...गेटे ने जैसे पुकारकर कहा, "तुम माँ हो, एक लड़की की माँ! जानती हो, बच्चे के मुँह से देश-देश में जो पहला शब्द निकलता है, वह कौनसा शब्द है!"...और फिर जैसे किसी ने डुग्गी-तरंग पर बैक ग्राउण्ड म्यूज़िक देने के लिए बड़ी-सी चोट की—एक ही आवाज़ गूँज उठी, माँ!...और इरा ने सँभलकर जया की तरफ़ देखा, जो सो रही थी। इरा ने उठकर जया का मुँह चूम लिया।... और जैसे फिर डुग्गी-तरंग से बैक ग्राउण्ड म्यूज़िक का स्वर गूँज उठा, "माँ!"...

सौ कैण्डल के बल्ब के प्रकाश में बैठी इरा आर्क्मान की पुस्तक पढ़ती रहती है।...उसे लगता है, शंख आ गया! जैसे शंख कह रहा हो, "तुम्हारी चिट्ठी मिली, और मैं चला आया!"...यह सब जैसे किसी स्वप्न की पूर्वपीठिका हो। शंख यहाँ कहाँ?...

आज इरा ने शंख को दूसरा पत्र लिखा। स्टूडियो में बैठकर उसने एक अच्छा-सा पैड निकाला और पहले तीन कागज़ खराब किये। नीले रंग का पैड था—सागर के रंग का पैड, 'सिल्क सरफ़ेस' वाला पैड। अच्छा पत्र अच्छे पैड पर ही तो लिखा जा सकता है। खैर तीन कागज़ खराब करने के बाद चौथे कागज़ पर वह जमकर लिख सकी। पत्र लिख चुकने पर वह कार में बैठकर इसे लैटर बॉक्स में डालने गई। उसे क्रोध भी आया था। स्टूडियो से काफ़ी दूर था लैटर बॉक्स।

पत्र लैटर बॉक्स में डाल चुकने के बाद पहले उसे ग्लानि-सी हुई। कल एक पत्र लिखा था; आज दूसरा पत्र लिखकर डाल दिया। शंख क्या सोचेगा? दस साल तक चुप रही; अब जैसे धैर्य का बाँध टूट गया!

पहले जयन्त उससे गपशप करता रहा। जयन्त गया तो मनोज आ गया। इरा को तो बारी-बारी दोनों के लिए मुस्कराना पड़ा।

उसके हाथ में चैखव के पत्रों की एक सुन्दर-सी पुस्तक थी। पढ़ते-पढ़ते उसके मन-प्राण सिहर उठे। उसे ख़याल आया, रूस की यात्रा में उसने चैखव के बारे में वहाँ के लेखकों से कितनी ही बातें पूछी थीं। उसे बताया गया था कि चैखव ने लंका-यात्रा तो की थी, पर हिन्दुस्तान की यात्रा न कर सकने का उन्हें बहुत खेद था। लंका की चैखव ने स्वर्ग से उपमा दी थी। एक मित्र को उन्होंने अपने पत्र में लिखा था, "कोलम्बो से उतरकर रेल से मैंने वहाँ की नौ मील धरती देखी थी। सुन्दर दृश्यों के लिए मैं शायद अपने-आपको राक्षसों को भी बेच देता।...जब मेरे बच्चे हो जायँगे, तो मैं गर्व से उनसे कहूँगा—अबे गधो, अपने ज़माने में मैंने काली आँखों वाली एक हिन्दू लड़की से भी प्रेम किया है—कहाँ ? एक चाँदनी रात में, और उस जगह, जहाँ नारियल के पेड़ आपस में गुँथकर कुञ्ज-सा बना लेते हैं।...समझे ? क्या बेवकूफी थी ?" चैखव का पत्र पढ़ते-पढ़ते इरा नतमस्तक हो गई, जैसे वही वह काली आँखों वाली लड़की हो, जिससे नारियल-कुञ्ज में किसी पुरुष ने प्रेम किया था। उस पुरुष का नाम चैखव भी हो सकता है, शंख भी !...नाम में क्या रखा है ! मैं शकुन्तला कहलाऊँ चाहे इरा; शंख भी दुष्यन्त कहलाए चाहे चैखव; क्या अन्तर पड़ता है ?....सँभलकर वह पत्र पढ़ने लगी। इतने में किसी ने आकर कहा, "आपका फोन है, इरा जी !"

यह मनोज का फोन था। उसने उसे डिनर पर बुलाया था। वापस आकर वह फिर पुस्तक खोलकर बैठ गई। डैडी की सूक्ति जैसे उसकी कल्पना को छू गई—जब तोवा तब मेह !...

६ :

वरकला में शंख की अपनी दुनिया है। वरकला कहाँ तक शंख को समझ पाया है, यह तो कौन कहे ?

नम्पूतिरिप्पाड का कहना है, "शंख को समझने की कोशिश आत्म-प्रवंचना है।" बड़ी कोशिश करके उन्होंने 'गुरुदेव' फ़िल्म वरकला में दस साल बाद फिर से चलाने का प्रबन्ध किया। यहाँ वह दो सप्ताह के लिए आई। बम्बई में 'गुरुदेव', दस साल बाद ही सही, तीस सप्ताह तक चली। बम्बई के सबसे बड़े सिनेमा-हाउस में इसका प्रदर्शन हुआ, जैसा कि नम्पूतिरिप्पाड ने अख़बारों में पढ़ा। पर क्या मजाल, एक दिन भी शंख को यह फ़िल्म देखने के लिए राज़ी कर सके हों। उन्होंने लाख समझाया, "इतनी भी क्या नाराज़गी है ? गुरुदेव तो अपने ही थे। इसमें संगीत भी तुम्हारा है, किसी और का नहीं। फिर क्यों देखने नहीं चलते ? टिकट भी नहीं लेना होगा। सिनेमा-हाउस का मालिक तो फूला नहीं समायेगा यह देखकर कि फ़िल्म का म्यूज़िक-डाइरेक्टर फ़िल्म देखने आया है।"

शंख तो चिलाक्कोर की संगीतशाला से ही चिपका रहता है। पंचानन ने भी कहा, "गुरुदेव, चले जाओ न, जब सब कोई कह रहे हैं। मैं तो देख आया। मुझे तो बहुत अच्छी लगी।"

मुत्तु बाबा भी झूम-झूमकर कहते रहे, "दस साल पहले भी आई थी यह फ़िल्म यहाँ। तब तो तीन ही दिन चल पाई थी। तब हमें भी

यह उतनी अच्छी नहीं लगी थी, जितनी अब। क्या कहते हो, शंख ?"

शंख अन्त तक इन्कार करता रहा। उसने किसीको बताया नहीं। इरा का पत्र उसे झकझोर गया—'मेरा रूप, तुम्हारा स्वभाव, ऐसी है हमारी जया ! विश्वास न हो तो आकर देख लो ! शायद इसी तरह मेरा उद्धार हो सके।...तुम्हें पत्र लिख रही हूँ, मेरे देवता। क्या अब तक मुझ पर क्रोध उतर रहा है ?' इरा के पत्र की ये पंक्तियाँ उसे जाने क्या कुछ कह गईं।

उसने मन-ही-मन कहा—मैं झुकूँगा नहीं। मैं अपनी जगह दृढ़ रहूँगा, चट्टान के समान ! मैं इरा को पत्र नहीं लिखूँगा। मैं सब समझता हूँ ! दस साल तक इरा चुप रही। अब पत्र लिखने बैठ गई। इतने दिन तो ले-देकर शंकर का पत्र ही आ जाता था महीने में एक बार।

दूसरे ही दिन इरा का दूसरा पत्र आया। लिखा था, "....मेरा ध्यान जया पर रहता है, या फिर जयजयवन्ती रागिनी पर, जिसे मेरे डैडी सुना करते थे ममी से—'मोरे मंदिर अब लौं नहीं आये !'...अब मैं ज़िद करती हूँ तो ममी गाने बैठ जाती है। गाते-गाते ममी की आँखों में आँसू आ जाते हैं, जब वह गाती है—'कौनसी भूल भई हमसे, को सौतिन बिलमाये ?' और मुझे 'गुरुदेव' में दिया गया वह गीत याद आ जाता है :

पुरुबु से आई रेलिया, पछिउँ से आई जहजिया
पिया के लादि लेइ गई हो।
रेलिया होइ गई मोर सवतिया,
पिया के लादि लेइ गई हो।
रेलिया न बैरी, जहजिया न बैरी
उहै पइसवै बैरी हो।
देसवाँ देसवाँ भरमावै,
उहै पइसवै बैरी हो।
भुखिया न लागै, पिउसिया न लागै

हमको मोहियै लागै हो।
तोहरी देखि के सुरतिया,
हमको मोहियै लागै हो।
सेर भर गेहुँआ बरिस दिन खइबै
पिया का जाइ न देबै हो।
रखबै अँखिया के हजूरवाँ
पिया का जाइ न देबै हो।

तुम नहीं मानोगे। तुम्हारी बातें समझने में दस साल लग गए। जैसे जमाने ने तरक्की की। दस साल बाद बम्बई में 'गुरुदेव' तीस सप्ताह चली। मुझे भी तुम्हारी बातें अब याद आती हैं। उनकी समझ भी आने लगी है। तुम कहा करते थे न—कलाकार भी दूध-गाछ है। उसका ध्यान भी अपनी रचना पर वैसे ही रहता है जैसे माँ का शिशु पर !··· इतनी-सी बात समझने में दस साल लगे······

पंचानन के आने पर शंख ने यह पत्र एक पुस्तक में रख दिया।

"मैं तो आज फिर 'गुरुदेव' फ़िल्म देख आया। आप नहीं जायेंगे ?"

"मैंने तो बहुत बार देख रखी है यह फ़िल्म।"

'गुरुदेव' फ़िल्म का प्रसंग आते ही उसकी कल्पना में बम्बई घूम गई—उर्वशी, जयन्त, मुक्तिबोध, मनोज, अहल्या की माँ, गोबिन्दन, और इरा—सबके चेहरे बारी-बारी घूम गए। साथ ही उसने मन-ही-मन कहा—कैसा होगा मेरी जया का चेहरा !

गुरुदेव को उदास देखकर पंचानन अपनी वीणा उठाकर एक तरफ बैठ गया।

शंख फिर इरा का पत्र खोलकर पढ़ने लगा, "···बीस सैकण्ड में तीस फुट फ़िल्म घूम जाती है, मेरे देवता ! यानी एक मिनट में नब्बे फुट। साठ मिनट का एक घण्टा। चौबीस घण्टे का एक दिन। तीस दिन का एक महीना। दस साल में कितनी लम्बी फ़िल्म घूम गई, सोचो तो !···एक फ़िल्म बनाने के लिए बीस-तीस सेट चाहिए। सोचो

तो, मैंने दस साल में कितने सपने बुने, कितनी फ़िल्में बना डालीं, बिना एक भी सेट के !

"'पिछले दिनों मैंने जया को भी 'गुरुदेव' फ़िल्म दिखाई, वह बहुत खुश हुई।'"

रूस में बच्चों के लिए अलग फ़िल्म बनाने पर सबसे अधिक जोर दिया गया है। इसके लिए वहाँ अलग स्टूडियो हैं, अलग सिनेमाघर। इस दौड़ में ब्रिटेन का दूसरा नम्बर है। मनोज का खयाल है कि हम बच्चों के लिए एक अच्छी फ़िल्म बनायें, जिसकी हीरोइन होगी हमारी जया।'''अभी अगले ही दिन मैं जया को चैकोस्लोवाकिया में तैयार की गई एक पुतली-फ़िल्म दिखाने ले गई थी। फ़िल्म का नाम है 'लोरी'। कमाल का 'आइडिया' है, मेरे देवता ! एक खिलौना इन्सान का रूप धारण कर लेता है, और वह एक बच्चे को कुछ इस तरह खिलाता-पिलाता है, कुछ इतने प्यार से सुलाता है, जैसे वह उसीका बच्चा हो। हमारी जया उसे देखती जा रही थी, और बार-बार मेरी गोद में आ बैठती थी।'''बोलो, तुम अपनी जया को देखने कब आओगे ? जल्दी आओ। तुम्हें संगीत की कसम, दूध-गाछ की कसम !'''"

"किसकी चिट्ठी है, गुरुदेव ?"

"यह मत पूछो, पंचानन ! पर एक बात याद रखो, बम्बई या मद्रास जाने की मत सोचना। फ़िल्म में नहीं चलेगा तुम्हारा संगीत।"

"पर आपने क्यों दिया था इतना अच्छा संगीत 'गुरुदेव' में ?"

"तुम्हें वह अच्छा लगा ? पर उसे भूल जाओ। यहीं रहना। अगली पीढ़ी के संगीताचार्य को तैयार करना। मैं यहीं मरूंगा, अपने शिष्य-का-शिष्य बनने के लिए।"

पंचानन उदास मुँह बनाकर वीणा लिये बैठा रहा। मरकर शिष्य-का-शिष्य बनने की बात सुनते-सुनते उसके कान पक गए। वह भूलकर भी इस बात पर विश्वास नहीं करता था। झुँझलाकर बोला, "मैं तो आपका गुरुदेव नहीं हूँ, गुरुदेव ! मैं तो पंचानन हूँ !"

सात

पंचानन ने ज़िद न छोड़ी। जिस दिन वरकला के 'शशी थियेटर' में 'गुरुदेव' का अन्तिम दिन था, शंख अन्तिम शो में पंचानन के साथ यह फ़िल्म देखने गया।

फ़िल्म देखते-देखते शंख दस साल पीछे चला गया।

"बुद्धिजीवी लोगों ने तो 'गुरुदेव' को तब भी बहुत पसन्द किया था।"

"अच्छा, गुरुदेव!"

"यूरोप में हुए एक अन्तर्राष्ट्रीय फ़िल्म-मेले में 'गुरुदेव' को पुरस्कार भी दिया गया था।"

"फिर यह बॉक्स आफिस पर कैसे फेल हो गई?"

"यही तो दुर्भाग्य था। जयन्त भाई की लागत भी पूरी न हो पाई। सस्ती रुचि वालों ने हमें सिर-फिरे, दम्भी, अयोग्य और न जाने किस-किस नाम से पुकारा, जाने क्या-क्या फ़तवा दे डाला।"

दस साल पहले का ज़माना भी कितना विचित्र था! फ़िल्म के परदे पर 'गुरुदेव' चल रही थी। फ़िल्म की सबसे बड़ी विशेषता थी इसका बैक ग्राउण्ड म्यूज़िक। जयन्त देसाई की हिम्मत थी कि उसने बैक ग्राउण्ड म्यूज़िक को बराबर का महत्त्व देने की बात स्वीकार की, और म्यूज़िक डाइरेक्टर को प्रतिभा से काम लेने की पूरी छूट दी। यह पहला अवसर था कि हमें बैकग्राउंड म्यूज़िक को बराबरी का आसन देने की बात सूझ

गई और इसे कार्यान्वित करने में हमने कसर न उठा रखी। बैक ग्राउंड म्यूज़िक भी घिसा-पिटा नहीं। इसमें हम नई-नई बातें लाये। अनेक स्थलों पर कंठ-संगीत का जोरदार प्रयोग किया। और तो और, डुग्गी-तरंग जैसे वाद्यों से काम लेने से भी न चूके। तब तक फ़िल्मी दुनिया में संगीत की हदबन्दी थी गाने। गोबिन्दन ने म्यूज़िक दिया होता, तो गानों में ही सारा जोर दिखाता। पर जयन्त देसाई मेरे साथ सहमत थे। मेरे साथ वे भी यह बात मानकर ही मंजिल की तरफ कदम उठाते रहे कि फ़िल्म में जहाँ-जहाँ नाटकीय स्थल आते हैं, अथवा कारुणिक और भावुक रेखाएँ आकर जुड़ती हैं, वहाँ सबसे बड़ी मदद हम बैक ग्राउंड म्यूज़िक से ही ले सकते हैं। और शंख ने पंचानन का कन्धा झकझोर-कर कहा, "हमारी फ़िल्म इण्डस्ट्री में बैक ग्राउंड म्यूज़िक का रिकार्डिंग आखिरी नम्बर पर रहता है। इसे मैं मूर्खता नम्बर एक कहूँगा। बस यह समझो, जब सेंसर बोर्ड को फ़िल्म दिखाये जाने का दिन भूत की तरह सिर पर आता दिखाई देता है, या यह समझो कि फ़िल्म रिलीज़ होने का दिन घुड़दौड़ के घोड़े की तरह तेज दौड़ता हुआ पास आ जाता है, तो बेचारे बैक ग्राउंड म्यूजिक की सुध ली जाती है....." कहते-कहते शंख चुप हो गया। उसे ध्यान आ गया, यह बात तो उसने पंचानन को खोलकर बताई थी।

पंचानन की दृष्टि फ़िल्म के परदे पर जमी थी। "बैक ग्राउंड म्यूज़िक का सारा जादू है, गुरुदेव!" उसने मानो मृदंग पर थाप लगाई।

शंख सोचने लगा, अब भी ऐसा ही होता होगा। बैक ग्राउंड म्यूज़िक के रिकार्डिंग की बारी अब भी सबसे आखिर में ही आती होगी। कमाल है। मूर्खता की हद है। सारा रिकार्डिंग रात को एक ही पारी में खत्म कर डालने की धुन! म्यूज़िक-डाइरेक्टर ने फ़िल्म का एक दृश्य देखा, स्टाप घड़ी पर उसका समय नोट किया, और जो भी उलटी-सीधी बात खोपड़ी में जाग उठी, उसीके बल पर बैक ग्राउंड म्यूज़िक दे डाला। इसे तो कला नहीं कहेंगे। किसी तरह बेगार काटने वाली बात हुई।

म्यूज़िक-डाइरेक्टर को नींद आ रही है। समय आधी रात से ऊपर चला गया। दिमाग पूरी तरह काम नहीं कर रहा। सोचने का किसके पास समय है ? किस विशेष वाद्य को लिया जाय, और उसके सही प्रयोग में कैसे सोता जादू जगाया जाय, इसकी चिन्ता तो म्यूज़िक-डाइरेक्टर के फ़रिश्तों को भी नहीं रहती !··· फ़िल्म-डाइरेक्टर को एक ही चिन्ता रहती है और उसी के संकेत पर म्यूज़िक-डाइरेक्टर जैसे-तैसे सस्ती रुचि वालों को मसका लगाने की सोचता है, चुलबुलिया चमाचम नाच-गाने दे-देकर। बैंक ग्राउंड म्यूज़िक की महिमा को न पहचाना जाता है और न फ़िल्म के मन्दिर में इस मूर्ति की प्रतिष्ठा ही की जाती है।···

फ़िल्म देखते-देखते शंख को शंकर के पत्रों की याद हो आई। सन् १९५२ में इरा सारे संसार की यात्रा पर गई—आज से पाँच वर्ष पूर्व, जब जया पाँच ही वर्ष की थी। यात्रा में जया को भी उसने साथ रखा। तब वह अमरीका तथा जापान आदि देशों में अनेक फ़िल्म-आर्टिस्टों से मिली। पिछले एक पत्र में शंकर ने लिखा था—"हाल ही में दीदी फ़िल्म-प्रतिनिधि-मण्डल की सदस्या बनकर रूस भी हो आईं। रूस-यात्रा में जया भी गई थी। आप यहाँ होते जीजाजी, तो आप भी चलते और हम भी गये होते आपके साथ। दीदी का क्या है ! उन्हें तो अपनी जया ही प्रिय है। उसे देखे बिना एक दिन भी कहीं नहीं रह सकतीं। कभी-कभी जया को गोद में लेकर कहने लगती हैं दीदी—'मैं दूध-गाछ हूँ' !··· मैं जानता हूँ, जया इसका मतलब नहीं समझती। सच पूछो तो जीजा-जी, इसका मतलब तो मैं भी नहीं समझता। एक दिन मैं दीदी से पूछ ही बैठा। बोलीं—अपने जीजाजी को लिखकर पूछ लो। यह उन्हीं के शब्द-कोष में लिखा है। तो वापसी डाक से लिखिए जीजाजी, दूध-गाछ का क्या मतलब है ?"

फ़िल्म के परदे पर पूरी कहानी चल रही थी। अब वह दृश्य दिखाया जा रहा था, जब गुरुदेव की साठवीं वर्षगाँठ पर उस्ताद फ़ैयाज़ खाँ अपने संगीत से श्रोताओं को मुग्ध कर रहे थे। गुरुदेव की बग़ल में बैठा था

शंख।··· देखते-देखते पंचानन मुग्ध हो गया।

"आप तब वैसे ही थे गुरुदेव, जैसे फ़िल्म में दिखाये गए? आपने अपना पार्ट किसी और को क्यों करने दिया?"

शंख की कल्पना जाने क्यों बम्बई की ओर खिंच गई। इरा की चिट्ठियाँ क्या आईं, फिर बम्बई का रास्ता खुल गया। 'काशी थियेटर' से निकलकर वे मन्दिर-बाज़ार में दुकान पर आ निकले।

" 'गुरुदेव' फ़िल्म बनाते समय मुझे क्यों नहीं बुला लिया था बम्बई? मेरा पार्ट किसी और को क्यों करने दिया?" दामोदर हँस पड़ा, "गुरुदेव तो भला आ नहीं सकते थे अपना पार्ट करने! हम तो जीवित थे तब भी, और अब भी सामने बैठे हैं।"

शंख अब इसका क्या उत्तर देता?

दामोदरन माँ-बेटे की मूर्ति की घिसाई करता रहा।

शंख की कल्पना पर आज का अख़बार फैल गया। केरल में साक्षरता अन्य राज्यों की अपेक्षा कहीं अधिक है। जनसंख्या की सघनता में भी यह छोटा-सा प्रदेश प्रसिद्ध है। इसीलिए यहाँ के निवासी बाहर जाकर काम करने पर मजबूर हैं। पेट का मामला है। भारत सरकार के बड़े-बड़े विभागों में, सभी मन्त्रालयों में केरल के निवासी काम करते नज़र आयेंगे। आज केरल की सरकार जनता के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने की दिशा में दृढ़-संकल्प है। शिक्षा-बिल भी सामने है, भले ही कुछ लोग इसका विरोध कर रहे हैं।

" 'गुरुदेव' फ़िल्म में तो तुम्हारा ही संगीत है, शंख!" दामोदरन ने झुर्रियों वाले चेहरे पर आँखें चढ़ाकर कहा, "यह फ़िल्म देखना तो ऐसे ही है जैसे कोई दर्पण में अपना मुँह देख ले।"

आठ

इरा के दूसरे पत्र ने शंख के मन-प्राण में एक रागिनी के स्वर घोल दिए। जयजयवन्ती—यही तो जया का पूरा नाम था। हाथ में आज का अख़बार था। केरल में साम्यवादी मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तुत कुछ योजनाओं की विस्तृत चर्चा की गई थी। तीन कालम की सुर्ख़ी। शंख की दृष्टि एक छोटी-सी ख़बर पर जा टिकी—'त्रिवेन्द्रम् में संगीत परिषद् द्वारा अखिल केरलीय संगीत उत्सव की योजना।'

बूढ़ा दामोदरन माँ-बेटे की मूर्ति की घिसाई कर रहा था। "अख़बार में ताज़ा समाचार क्या आया है, शंख ?" उसने हँसकर पूछा।

"नये शिक्षा बिल की चर्चा से पूरा पृष्ठ भरा पड़ा है।"

"और कोई समाचार ?"

"माँ-बेटे की मूर्ति के नये ख़रीदारों की ख़बर तो इसमें छपने से रही।"

"तो मैं इसे बनाना छोड़ दूँ ? जो तुम्हारी माँ कहती है, वही तुम भी कहते हो !"

"मैं तो वैसे ही हँस रहा था।"

"और मैं तुम्हारे संगीत पर हँसने लगूँ, तो बताओ !"

देखने को शंख अख़बार पढ़ रहा था, पर उसकी कल्पना बम्बई पहुँच गई थी। बहुत चाहता था, वरकला से बाहर न जाय उसका मन। वरकला के साथ मन का मेल बैठे। नम्पूतिरिप्पाड ठीक कहते हैं, ज्यों-

ज्यों आदमी अधेड़ उम्र को पार करने लगता है, वही जलवायु उसे रास आ सकता है, जिसमें उसका जन्म हुआ होता है। इसीलिए तो वे समय से पहले ही कॉलिज से रिटायर होकर यहाँ आ गए थे।

देशमुख ने पास से गुज़रते हुए कहा, "तैयार रहना शंखअरन! त्रिवेन्द्रम् के अखिल केरलीय-संगीत उत्सव में तुम्हें ही प्रधान बनाया जायगा।"

"मुझे यह सम्मान नहीं चाहिए!" शंख चुप न रह सका।

देशमुख को डाकघर पहुँचने की जल्दी थी। वे रुके नहीं।

दामोदरन ने कहा, "वे तुम्हें प्रधान चुनेंगे, तो तुम इन्कार तो नहीं कर दोगे?"

"अब कहीं बाहर जाने को बिलकुल मन नहीं होता।"

"त्रिवेन्द्रम् कौन दूर है?"

"अपना वरकला ही अच्छा है।"

आज के रविवारीय संस्करण में एक लेख आया था—'फ़िल्मों में मेक-अप की महिमा।'

पंचानन भी दूकान पर आ निकला। अख़बार उठाकर पढ़ने लगा। दामोदरन बोला, "त्रिवेन्द्रम् के संगीत-उत्सव के लिए कोई अच्छी-सी रागिनी तैयार कर लो, पंचानन! आनन्द रहे, यदि तुम सर्वोत्तम संगीतज्ञ की पदवी पाओ।"

"ऐसा सौभाग्य मेरा कहाँ? पर गुरुजनों का आशीर्वाद मिले तो यह कुछ कठिन भी नहीं।"

"गुरुदेव रुद्रपदम् की आत्मा ने दोबारा जन्म लिया तुम्हारे रूप में। तुम्हें तो जितना सम्मान मिले, थोड़ा है।"

"मैं यह नहीं मानता। मैं तो पंचानन हूँ। अपनी ही साधना से आगे बढ़ सकता हूँ। कोई अन्धविश्वास मुझे आगे नहीं ले जा सकता।"

"तो तुम परम्परा को नहीं मानते, दूध-गाछ को नहीं मानते?"

"दूध-गाछ अपने स्थान पर है।"

"हर पीढ़ी में यह नया होता रहता है। बीज तो पीछे से आ रहा है न!"

शंख की कल्पना ने वम्बई पहुँचकर दम लिया। किसी स्टूडियो का मेक-अप रूम। मेक-अप मैन ज्ञान बघार रहा है—"अजी अब वह ज़माना नहीं कि मूँछों वाली भूमिका के लिए मूँछों वाला एक्टर ढूँढा जाय। जी हाँ, मेक-अप के बिना तो चन्द्रवदनी कोमलांगी षोडशी कन्या भी अधेड़ दिखाई देने लगे। माई डियर, यह जो केमरा है न हमारा, इस शैतान के लैन्स कितने तेज़ हैं—अजी हमारी आँखों से भी तेज़। लैन्स जो ठहरे, ज़रा-ज़रा-सी बारीकियाँ उभारकर न रख दें, तो इन्हें लैन्स कौन कहे? क्या आप गोल चेहरे को कुछ लम्बा दिखाना चाहते हैं? इसका आसान तरीका है। चेहरे के ज्यादा फैले हुए हिस्सों पर गहरा रंग पोत दें, और उन्हें कुछ-कुछ काला-सा कर डालें। काम चल जायगा। युवक के चेहरे पर गुलाबी, हलका पीला या हलका नीला रंग पोतना होगा। बालक हो तो और भी हलका रंग लगाइए। और देखिए, तन्दुरुस्त आदमी और बीमार के लिए भी रंगों में अन्तर करना होगा। उम्र में बीस-तीस बरस का अन्तर दिखा सकना मेक-अप मैन के बायें हाथ का खेल है। युवती को और भी छोटी दिखा सकते हैं, चाहें तो उसे अधेड़ या बुढ़िया दिखा दें। पर मेक-अप से ही यह सब अन्तर पड़ने से रहा। एक्टिंग करते वक्त मेक-अप के अनुसार अंगों की चुस्ती या सुस्ती दिखानी होगी। दाढ़ी-मूँछ गोंद से चिपकाते हैं। चेहरा अकड़ जाता है। एक्टर बैठा किस्मत को कोसता है। किसीके दाँत टूटे हुए दिखाने हों, तो कुछ भी मुश्किल नहीं—उन्हें काला कर देते हैं। दाँतों में छेद हों तो मोम भरकर ठीक कर लेते हैं। मज़ा यह है कि लड़कियों का मेक-अप उतना मुश्किल नहीं जितना लड़कों का। और देखिये माई डियर, समझदार और तजुर्बेकार आर्टिस्ट वह है जो अपने चेहरे की बनावट को पूरी तरह समझकर अपना मेक-अप अपने-आप कर सके।···

फिर सँभलकर शंख ने अपने मूर्तिकार पिता की ओर देखा। माथे की

झुर्रियाँ अनुभव दरशा रही हैं। यह बम्बई का मेक-अप नहीं, वरकला की परम्परा है। यह यथार्थ है, सत्य है। यहाँ के नारियल-गाछ मेक-अप नहीं करते। सागर की लहरें अपनी आयु कम या अधिक दिखाने की चेष्टा में किसी मीना-बाज़ार के मेक-अप रूम में नहीं जातीं। वरकला की लाल माटी ने भी कोई मेक-अप नहीं किया। पदचाप सुनती है लाल माटी। हाथी के कानों की तरह झूलते हैं नारियल-गाछ।

शंख की कल्पना में माँ का झुर्रियों वाला मुख-मण्डल उभरता है। कोई मेक-अप नहीं। माँ का प्यार—मीठा, जैसे कच्चे नारियल का दूध होता है।

शंख की कल्पना में वरकला के मछुवे उभरते हैं। नाव में सागर के बीच तक चले जाना, यही उनका धन्धा है; यही उनकी परम्परा है। यह किसी मीना-बाजार का अभिनय तो नहीं। सागर समीप है : वरकला का वरदान! सागर-संगीत : हमारी विरासत, हमारी परम्परा। दो परछाइयाँ नजर आने का झमेला गया। अब हमारे सामने एक ही मार्ग है—सत्य का मार्ग, जिसमें मेक-अप की आवश्यकता नहीं।...यह हमारा केरल कथकलि का देश है। लाल माटी और पसीने को कथकलि के लिए तैयार है केरल की रंगभूमि। पुराने सब मेक-अप झड़ जायँगे सूखे पत्तों के समान। नई कोपलें फूट रही हैं।...

"और क्या कहता है अख़बार, बेटा शंख?"

शंख कुछ उत्तर नहीं देता।

दामोदरन मूर्ति की घिसाई करते-करते पंचानन की तरफ़ देखकर बोला, "मान भी लें कि गुरुदेव रुद्रपदम् की नहीं, तुममें अपनी ही आत्मा बोल रही है। फिर भी यह तो मानो कि तुम्हारे पीछे हैं शंख, और शंख के पीछे थे गुरुदेव रुद्रपदम्। परम्परा ही दूध-गाछ है!"

"और हमारी अपनी भी तो कोई देन होनी चाहिए अपने युग को!" पंचानन गम्भीर स्वर में बोला, "खाली परम्परा से तो नहीं चलेगा।"

नौ

"पूज्य पिताजी,

जन-नाट्य-संघ का आठवाँ राष्ट्रीय सम्मेलन इस बार दिल्ली में होने जा रहा है। आप जरूर आइए और शंख को भी अवश्य साथ लाइए।

डॉक्टर आनन्द कुमारस्वामी बहुत पहले कह गए :

'मैं भारतीय जनता के किसी ऐसे कायाकल्प में विश्वास नहीं करता जिसकी अभिव्यक्ति कला में न हो सके; किसी भी प्रकार का पुनर्जागरण, यदि वह पुनर्जागरण है तो, कला में अभिव्यक्त होना आवश्यक है।'

कला के विकास में आज हम पीछे नहीं रहना चाहते।

कुमारस्वामी की विचारधारा से आप भी सहमत होंगे—'जब कोई जीवित भारतीय संस्कृति अतीत के ध्वंस और वर्तमान के उत्थान के बीच उठ खड़ी होती है तो एक नई परम्परा का जन्म होता है—साहित्य, संगीत और कला, सबमें एक नया स्वप्न मूर्त होने लगता है। जिन भारतीयों को अपना दाय मिल रहा है, उनकी भारतीयता कहीं गई नहीं है। जैसे ही उनके जीवन में बल आयेगा, वैसे ही उनकी कला वीर्यवती होगी। उनकी राष्ट्रीयता अधिक गहरी, संस्कृति अधिक व्यापक और प्रेम अधिक पूर्ण हो सकता है। फलस्वरूप उनकी कला अतीत की अपेक्षा अधिक ओजस्विनी होगी। किन्तु यह क्रमिक विकास

और विस्तार से ही हो सकता है, अतीत से अपना सम्बन्ध तोड़ लेने से नहीं। हम अतीत और भविष्य, दोनों से सम्बद्ध हैं। अतीत में हमने वर्तमान का निर्माण किया और भविष्य का निर्माण इसी वर्तमान में कर रहे हैं। यह हमारा कर्तव्य है कि हम अपने उस परम्परागत दाय को, जो केवल भारत का नहीं, समस्त मानवता का है, समृद्ध करें, और उसे नष्ट न होने दें।'

नन्दलाल वसु का कथन भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं :

'परम्परा का कला में वही स्थान है जो व्यापार में पूँजी का....

'हिन्दू होने के नाते मैं हिन्दू आदर्शों और परम्पराओं के बीच पला हूँ। मैं किसी समय केवल हिन्दू देवी-देवताओं के चित्र बनाया करता था...अब मैं उन पुराने स्वरूपों को कोई महत्त्व नहीं देता, वरन् प्रत्येक वस्तु में उसी शाश्वत के संगीत-स्वरों को देखने की चेष्टा करता हूँ। पहले मैं देवी-देवताओं में ही देवत्व ढूँढता था, अब उसे आकाश, जल और पर्वतों में ढूँढता हूँ।'

भूलिए नहीं। दिल्ली आइए। मैं भी जा रही हूँ। इरा भी चले, ऐसा मेरा मन है। शंख भी आ जाय तो कमाल हो जाय। जन-नाट्य-संघ की ओर से आप दोनों के लिए निमन्त्रण भिजवा रही हूँ।

कला ही सच्चा मार्ग-दर्शन कर सकती है। कुमारस्वामी का यह कथन सोलह आने सत्य है कि राष्ट्र का निर्माण वस्तुतः कवि और कलाकार करते हैं, राजनीतिज्ञ और व्यवसायी नहीं।

बुद्धि और विवेक की भाषा एक बात है, कला की भाषा दूसरी बात। कला की आत्मा को समझे बिना हम कला की भाषा नहीं समझ सकते। अव्यक्त से व्यक्त को जोड़ती है कला। मात्र राजनीतिक स्वतन्त्रता से भी क्या होता है? चहुँमुखी विकास की वरदायिनी है कला। इसी सेवा-घाट पर आ लगी है मेरी चेतना की नाव। मैं दिल्ली जा रही हूँ। आप भी जरूर आइए।

रवीन्द्रनाथ की कवि-वाणी आज हमें सबसे अधिक टेर रही है :

पतन-अभ्युदय बान्धुर पन्था युग-युग धावित यात्री।
हे चिर-सारथि, तव रथ-चक्रे मुखरित पथ दिन-रात्री॥

हमारा कला-पथ तो चिर-काल से मुखरित रहा है। आज वह कैसे मूक रह सकता है? 'ऐतरेयब्राह्मण' का यह संकल्प-मन्त्र आज भी हमारे कानों में गूँज रहा है—'जो सोता है वह कलियुग है, जो अँगड़ाई लेता है वह द्वापर है, जो उठ खड़ा होता है वह त्रेता है और जो चल पड़ता है वह सतयुग है।'

कला ही सच्ची यशोगाथा है। कला के बल पर टिकी हुई है हमारी मानवता। उसकी टेक हमारी बहुमुखी चेतना पर है। कला और जीवन के सच्चे मेल के बिना राष्ट्र एक कदम भी नहीं उठा सकता। कला का देवात्मा-रूप खोजना होगा। तभी हमारे बन्धन टूटेंगे। जन-नाट्य-संघ का आगामी अधिवेशन इसी खोज को रंग-मंच पर लाने जा रहा है।

कला आदमी को ऊपर उठाती है, उसे सन्तुलन देती है, उसे परिपूर्ण करती है, युग-युग से हमारी परम्परा यही कहती आई है। हम इस आस्था को बनाये रखना चाहते हैं।

क्या करने जा रहे हैं हम? हमारे निष्ठावान् कलाकार, हमारे विचारवान् शिल्पी एक नये क्षितिज को छू लेना चाहते हैं।

तेजोमयी कला आगे बढ़ रही है—संकल्प-लिपि को निहारती-सी, मृदंग पर थाप लगाती-सी।

जन-नाट्य-संघ का अधिवेशन नये पुष्प खिलाएगा। यह हमारे संकल्प को नई चेतना से संजोयेगा। भविष्य के निर्माण में कला क्या योग-दान कर सकती है, इस बात का उत्तर देगा यह अधिवेशन। आप अवश्य आइए। भूलिए नहीं। शंख को न लाए अपने साथ, तो मुझे दुःख होगा। उसे देखे जैसे एक युग बीत गया। बम्बई में इरा और शंख का मेल नहीं हो सकता तो दिल्ली में ही सही। यह श्रेय शायद जन-नाट्य-संघ के इस अधिवेशन को ही मिलने जा रहा है।

भुवनमोहिनी कला धन्य है। युग-युग की वरदायिनी ! राजदण्ड की मूठ नहीं है कला। 'सात भाई चम्पा जागो रे !' 'कैनो बोन पारुल डाको रे ?' पारुल अपने सातों भाइयों को जगाती रहेगी और सातों भाई क्या इसी तरह पूछते रहेंगे—बहन पारुल, हमें क्यों बुला रही हो ? बंगला लोक-कथा अमर है जिसमें सातों भाई, चम्पा और पारुल की मर्म-व्यथा मुड़-मुड़कर जाग उठती है। सौतेली माँ ने पारुल को गड्ढे में फिंकवा दिया था, और सातों भाइयों को भी मरवा डाला था। हिम-पुष्पी-सी खिल उठी थी महाश्वेता पारुल, और सातों भाई चम्पा बनकर खिल गए थे। मेरा विश्वास है, हमारा युग सौतेली माँ की तरह कला को पारुल और उसके भाइयों की तरह मरवा नहीं डालेगा। जन-नाट्य-संघ का अधिवेशन इस दिशा में आवश्यक युग-चेतना से काम लेने जा रहा है। बहुत करने को रहता है। कला की नूतन सम्भावनाएँ हमारी बाट जोहती हैं। बाधाएँ दूर होंगी। हम ठहरे कला के उत्तराधिकारी। कला गतिमान है, स्रोतस्विनी-सी।

नई चेतना अँगड़ाई ले रही है। कौन था वह युग-पुरुष जिसने पुल के नीचे बहते जल को देखकर कहा था कि सब-कुछ बदल सकता है !

हमारे ये अन्तर्विरोध मिटकर रहेंगे। विचारों का कार्य-कारण सम्बन्ध हमारी नियतियों की समस्या अवश्य सुलझायेगा एक दिन !

हमारे रुद्ध द्वार खोलो, ओ री वरदायिनी कला ! पत्थर बोलेंगे। तैरेगा आनन्द। हमारा इतिहास कला का इतिहास है। भाषा पाकर भी हम अवाक् रहें, यह तो अच्छा नहीं लगता।

आप दिल्ली आएँ, मैं गद्‌गद हो जाऊँगी। मेरे नृत्य के फूल खिलते भी देखिए।

दिल्ली देश की राजधानी है। हमारी कला की वैजयन्तीमाला। हमारे जन-मन की महायान-भाषा। बुद्ध-वचन ढाई सहस्र वर्ष बाद भी गूँज रहे हैं। अशोक की भावना मरी नहीं। अजन्ता के चित्र बोल रहे

हैं। एलोरा की मूर्तियाँ नाच रही हैं। भोग और योग के बीच का मध्य-मार्ग ही हमें प्रिय है। हमारा देश, एक परिवार। हमारी कला, धरती की आशा। सुनो, सुनो, जन-नाट्य-संघ का आह्वान सुनो। शंख को साथ लेकर दिल्ली चलने की तैयारी करो।

—कला की नई खोज के पीछे पागल आपकी पुत्री

नीलू"

दस

नीलू का पत्र नम्पूतिरिप्पाड को झकझोर गया। उसने यह पत्र नीलू की माँ को भी पढ़कर सुनाया।

'भोग और योग के बीच का मध्य-मार्ग ही हमें प्रिय है।' नीलू के शब्द बार-बार उसके मन पर थाप लगाते रहे।

"एक बात देखी, नीलू की माँ! बेचारे गोबिन्दन का कहीं नाम नहीं। क्या गोबिन्दन इतना बुरा है?"

"मैं लिखकर पूछूँगी नीलू से।" यमुना मुस्कराई, "ऐसा भी होता है, जिसका नाम हम छिपाते हैं, उसी के बारे में सबसे अधिक सोच रहे होते हैं।"

"लहर को लाख दबाओ, वह और भी उछलती है। और यही हाल किरन का है जो अन्धकार को चीरकर बाहर आती है। गोबिन्दन बुरा नहीं, अपने ढंग का अच्छा आदमी है।"

"गोबिन्दन भी तो जा रहा होगा दिल्ली। उसे क्या टिकट नहीं मिलेगा?"

"तब तो ठीक है। दिल्ली में गोबिन्दन के सामने मैं नीलू से कह दूँगा कि वह उसका ध्यान रखा करे। आखिर वह गुरुदेव रुद्रपदम् का सुपुत्र है। वरकला को गोबिन्दन पर भी उतना ही गर्व है जितना शंख पर।"

"मैं तो कई बार सोचती हूँ, नीलू के लिए गोबिन्दन अच्छा जीवन-

साथी सिद्ध हो सकता है।"

"उसमें तो हम कुछ नहीं बोलना चाहते। बोलना होता तो पहले ही बोल देते।"

"नीलू और गाबिन्दन के बीच ऐसी कौनसी दीवार है ?"

"यह मैं क्या जानूँ ? नीलू तुम्हारी बेटी है। तुम लिखकर पूछ सकती हो। दिल्ली में मैं तो पूछने से रहा। इतने वर्ष हो गए उन्हें एक ही नगर में रहते, फिर भी बीच की दूरी वैसे ही कायम है, तो मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"यह नीलू की नासमझी है।"

"मेरा भी यह विचार हो सकता है। पर नहीं, इस पत्र को पढ़कर मैं ऐसा नहीं सोच सकता। नीलू नासमझ तो नहीं। गोबिन्दन बहुत बकता-झकता रहता होगा और वह सब नीलू को नापसन्द होगा। पसन्द अपनी-अपनी।"

"वह काम तो करना ही नहीं चाहिए जिस पर दुनिया उँगली उठाए। पर जीवन-साथी तो ढूँढना ही पड़ता है। मैं नीलू को कई बार लिख चुकी हूँ। कला, कला, कला ! हर समय कला की दुहाई भी कहाँ तक ठीक है ? हे भगवान्, आजकल की लड़कियों को क्या हो गया ?"

"तो तुम भी चलो दिल्ली। गोबिन्दन भी आएगा वहाँ। समझा देखेंगे दोनों को। आखिर नीलू को हम अपनी राय तो दे ही सकते हैं।"

"दृढ़ता और साहस की कमी तो नहीं नीलू में।"

"तो कमी किस बात की है ? सब ठीक हो जायगा धीरे-धीरे। समय बलवान है। समय आने पर सब फ़ैसलें हो जाते हैं।

"कला ने नीलू को बाँध रखा है। कला, कला, कला ! मेरी तो समझ में नहीं आती यह बात। चौबीसों घण्टे कोई कला की रट लगाकर कैसे जी सकता है ? इस तरह तो जीवन का रथ आगे नहीं चल सकता। मैं कहती हूँ, गोबिन्दन ने ही अक्ल से काम लिया होता।

साथी सिद्ध हो सकता है।"

"उसमें तो हम कुछ नहीं बोलना चाहते। बोलना होता तो पहले ही बोल देते।"

"नीलू और गाबिन्दन के बीच ऐसी कौनसी दीवार है ?"

"यह मैं क्या जानूँ ? नीलू तुम्हारी बेटी है। तुम लिखकर पूछ सकती हो। दिल्ली में मैं तो पूछने से रहा। इतने वर्ष हो गए उन्हें एक ही नगर में रहते, फिर भी बीच की दूरी वैसे ही कायम है, तो मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"यह नीलू की नासमझी है।"

"मेरा भी यह विचार हो सकता है। पर नहीं, इस पत्र को पढ़कर मैं ऐसा नहीं सोच सकता। नीलू नासमझ तो नहीं। गोबिन्दन बहुत बकता-झकता रहता होगा और वह सब नीलू को नापसन्द होगा। पसन्द अपनी-अपनी।"

"वह काम तो करना ही नहीं चाहिए जिस पर दुनिया उँगली उठाए। पर जीवन-साथी तो ढूँढना ही पड़ता है। मैं नीलू को कई बार लिख चुकी हूँ। कला, कला, कला! हर समय कला की दुहाई भी कहाँ तक ठीक है ? हे भगवान्, आजकल की लड़कियों को क्या हो गया ?"

"तो तुम भी चलो दिल्ली। गोबिन्दन भी आएगा वहाँ। समझा देखेंगे दोनों को। आखिर नीलू को हम अपनी राय तो दे ही सकते हैं।"

"दृढ़ता और साहस की कमी तो नहीं नीलू में।"

"तो कमी किस बात की है ? सब ठीक हो जायगा धीरे-धीरे। समय बलवान है। समय आने पर सब फ़ैसले हो जाते हैं।

"कला ने नीलू को बाँध रखा है। कला, कला, कला! मेरी तो समझ में नहीं आती यह बात। चौबीसों घण्टे कोई कला की रट लगाकर कैसे जी सकता है ? इस तरह तो जीवन का रथ आगे नहीं चल सकता। मैं कहती हूँ, गोबिन्दन ने ही अक्ल से काम लिया होता।

अब तक तो वह नीलू के मन पर छा सकता था।"

"अक्ल का दुश्मन तो नहीं है गोबिन्दन। समय आने दो। नाटक आरम्भ होने में शायद थोड़ी देर है।"

"तुम यह नाटक-वाटक की बात मत कहो। आख़िर तुम नीलू के पिता हो। कुछ तो सोचो।"

"मेरे सोचने में कोई भूल नहीं। नीलू के लिए सोचना मेरा काम नहीं।"

"मैं तुम्हें दिल्ली नहीं जाने दूँगी।"

"अरे क्यों? रूठ गई रानी?"

"तुम भले आदमी की तरह बात ही नहीं करते।"

"अच्छा तो तोता हाज़िर है। पढ़ाओ, तुम्हारे पीछे-पीछे बोलूँगा।"

"वचन दो कि नीलू से साफ़-साफ़ कहोगे।"

"क्या?"

"यही कि अब उसे जीवन-साथी चुनने में देर नहीं करनी चाहिए। गोविन्दन पसन्द नहीं, तो कोई दूसरा लड़का ढूँढ़ ले। लेकिन उसका शादी किये बिना बम्बई जैसे नगर में अकेली पड़े रहना संकट से खाली नहीं।"

"इसकी समझ तुम्हें आज आई? तुम्हें अपनी बेटी के आचरण पर सन्देह है?"

"छिः छिः! मुझे नीलू के आचरण पर क्यों सन्देह होगा?"

"तो फिर? कहने में अर्थ तो रहना ही चाहिए।"

"मैं यह ज़रूर चाहती हूँ कि उसका विवाह हो जाय।"

"दिल्ली जाकर मैं नीलू से तुम्हारी बात अवश्य कहूँगा। और बताओ।"

"एक बात मेरी समझ में नहीं आती। नीलू दिल्ली क्यों जा रही है? वहाँ कौनसा नया संसार बनने जा रहा है?"

"अब यह तो तुम्हारी नीलू ही जानती होगी।"

"तो तुम क्यों जा रहे हो ? मैं कहे देती हूँ, शंख नहीं जायगा।"

"शंख ज़रूर जायगा और मैं भी जाऊँगा। सपने की बात है। कला सपने जगाती है। शंख को ज़रा मिल जाय फिर से, तो कौन बुरा है ? उसे पता चलेगा, तो वह रुकेगा नहीं। यह चिट्ठी पढ़कर फड़क उठेगा।"

"चिट्ठी न हुई, जादू हुआ।"

"जादू ही तो है। तुम्हारा खयाल है, ऐसी चिट्ठी हर कोई लिख सकता है ?"

"मैं तो एक ही बात कहती हूँ, नीलू का अज्ञान जल्दी दूर हो, वह गोबिन्दन को पहचाने।"

"बस, यही बात है न ? मैं उससे कह दूँगा। वह न मानी तो उसी का दोष होगा, मेरा नहीं।"

"तुम्हारी दिल्ली-यात्रा शुभ हो। तब तो शंख को ज़रूर ले जाओ।"

"तुम नहीं चलोगी ?"

"मुझे तो नीलू ने दिल्ली नहीं बुलाया। मैं नहीं जा सकती। अपने लिए वरकला ही अच्छा है।"

"वह बात भी कहूँ नीलू से ?"

"कौनसी ?"

"कि तुम्हारी माँ कहती है, कला से इतना अधिक नाता तो अच्छा नहीं, कला पर ही तन-मन वारना शुभ नहीं।"

"मैंने यह तो नहीं कहा था।"

"तो फिर ?"

"कला को रखे सँभालकर, पर एक जीवन-साथी अवश्य चुन ले।"

"कुछ और कहना है ?"

"नीलू का पत्र एक बार फिर सुनूँगी।"

"छोड़ो। तुम पढ़ लेना। यह मत कहो कि मैं ही इसे पढ़कर सुनाऊँ।"

"तुम्हें सुनाना होगा।"

"क्या सब स्त्रियाँ इतनी ही हठी होती हैं ? बोलने की भी सख्ती है, न बोलने की भी सख्ती है ? कभी सोचा तुमने, नीलू की माँ ! इसी तरह मैंने जीवन के लम्बे वर्ष बिता दिए ! दीवार से सिर पटकने की बात तो नहीं समझा मैंने इस लम्बे जीवन को !"

"आग से आग बुझाने की कोशिश तो तुम ही किया करते हो। सीधी बात को भी उलटा करके देखने की तुम्हारी आदत के मारे लाचार हूँ। बात तो इतनी-सी है कि नीलू का विवाह अवश्य होना चाहिए। सब सुख-सपना एक विवाह के बिना व्यर्थ है। धरी रह जायगी सब कला-कला ! खून-पसीना, मेहनत-हिम्मत, सब घर बसाने की माया ही तो है। यही है बुद्धि का वरदान !"

"अरे नीलू की माँ ! समय आने पर वह भी ठीक हो जायगा। नीलू पर मुझे गर्व है। कार्लाइल के शब्दों में बड़भागी है वह, जिसे अपने जीवन का कार्य करने को मिल जाय—Blessed is he who has found his work; let him ask no other blessedness. मैं चलकर शंख से मिलता हूँ। उसे दिल्ली चलने के लिए तैयार करना होगा।"

ग्यारह

कला में नीलू की गहरी निष्ठा देखकर शंख पुलकित हो उठा। पर दिल्ली जाने की बात उसके मन न लगी।

इरा के दिल्ली जाने की बात न होती, तो वह मान भी जाता।

"भविष्य के कारागार में कैद कोई सपनों की परी तो नहीं है इरा! उससे मिलने मैं दिल्ली क्यों जाऊँ?"

"जब समय बुलाये तो जाना ही होता है। वेद-वचन कितनी जाग्रत प्रेरणा से भरा है—न ऋते श्रान्तस्य सख्याप देवा:, अर्थात् स्वयं परिश्रम किये बिना देवों की मित्रता प्राप्त नहीं होती।"

"सभी देवता आजकल दिल्ली में ही बसते हैं क्या? जिस ग्राम नहीं जाना, उसका पथ क्या पूछना?"

"तुम्हें चलना होगा, शंख! नीलू ने बार-बार आग्रह किया है। यदि आत्मा की पूर्णता का मूर्त रूप है संगीत, तो तुम्हें दिल्ली चलना होगा। दिल्ली में असम की नाट्य-मण्डली भी आयेगी। असम के बारे में महात्मा गांधी ने ठीक ही तो कहा था—'सुन्दर असम की स्त्रियाँ तो अपने करघों पर कविता बुनती हैं।' मेरा मन कहता है, दिल्ली में असम की नाट्य-मण्डली रंगमंच पर कविता बुनेगी।"

"मुझे क्षमा कीजिए, मैं नहीं जा पाऊँगा।"

"समझा करो, शंख! किसीने ठीक ही कहा है। सागर की सतहों को चीरकर जब भी कोई प्रवाल-द्वीप सिर निकालता है, तो

लहरें उससे टकराने के लिए उदात्त भावना ले उठती हैं। दिल्ली की कला-चेतना को तुम एक प्रवाल-द्वीप की संज्ञा दे सकते हो।"

"दिल्ली भी जपती होगी पैसे का नाम ! वाह री दिल्ली ! वहाँ भी होंगी बम्बई-सी क्यूरियो दुकानें, जहाँ बुद्ध और गांधी की मूर्तियाँ एक साथ बिकती होंगी।"

"गांधी की मूर्तियाँ अभी इतनी पुरानी कहाँ हुईं कि क्यूरियो दुकानों में जगह पा सकें ?"

"बम्बई में एक बार बुद्धं शरणं गच्छामि वाले बोल को बदलकर इसका आलाप किया था—मद्यं शरणं गच्छामि, मांसं शरणं गच्छामि, डांसं शरणं गच्छामि ! आप शायद यह कहेंगे कि बम्बई में तो मद्य-पान का खुलेआम प्रचार बन्द कर दिया गया और दिल्ली में भी सप्ताह में एक दिन 'ड्राई डे' घोषित कर दिया गया है, जबकि होटल और 'बार' में मदिरा नहीं परोसी जाती। छोड़िए, मैं दिल्ली नहीं जाऊँगा।"

"यह तो ठीक नहीं। यह तो वही बात हुई कि अफलातून ने लिख दिया—कवि लोग सब झूठे हैं, और कवि लोग सचमुच झूठे हो गए !"

"आप बुरा न मानें। दिल्ली जाने को मेरा मन नहीं होता।"

शंख इन्कार-पर-इन्कार किये जा रहा था। फिर भी लगता था नम्पूतिरिप्पाड पर शंख के इन्कार का कोई प्रभाव नहीं हुआ। "तुम चलोगे, जरूर चलोगे। मुझे निराश नहीं करोगे। मेरे लिए नहीं, तो नीलू के लिए। इरा की बात छोड़ो। इरा की बात तो शायद नीलू ने वैसे ही लिख दी। इरा दिल्ली नहीं जायगी। जीवन में तुम्हारा जो विश्वास है और विश्वास में जो शक्ति है, उसे मैं जानता हूँ, समझता हूँ।"

शंख अब मुँह से न बोला, इन्कार में सिर हिलाता रहा।

सागर की लहरों का घोष सुनाई दे रहा था, मानो यह तालबद्ध घोष भी नम्पूतिरिप्पाड के समान ही शंख से उत्तर माँग रहा हो।

"तुम बम्बई जाकर अपनी जया को ही ले आओ !" नम्पूतिरिप्पाड ने शंख की मनोवृत्ति देखते हुए परामर्श दिया।

"यह तो मैंने भी सोचा है कई बार।"

"खाली सोचने से ही क्या होता है? माता दूध-गाछ है तो पिता क्यों नहीं?"

"मैं कोशिश कर सकता हूँ। पर इरा कभी ऐसा नहीं होने देगी। इसीलिए मैं बम्बई नहीं जाता।"

"शायद तुम्हारी आशंका निराधार है। बम्बई नहीं जाते, तो दिल्ली ही चलो। सब ठीक हो जायगा। दस वर्ष का समय कम तो नहीं होता। आज की इरा वही है, जिसे तुम छोड़ आये थे, यह कौन कह सकता है?"

"यह बात तो ठीक लगती है। बम्बई भी वह नहीं होगी, जिसे मैं छोड़कर आया था। वही होती तो यह कैसे होता कि जिस 'गुरुदेव' को तब खास पसन्द नहीं किया गया था, वह आज पसन्द की जा रही है?"

रात का समय था। आकाश पर तारों-भरी कनात तन गई थी। विचार का पंछी पर तोल रहा था। भाव का पंछी चहक रहा था, मानो वह कह रहा हो—जीवन भावहीन है न लक्ष्यहीन, न अर्थहीन।

शंख का वैरागी रंग दस वर्ष तक कितना गाढ़ा रहा। इधर वह फीका पड़ रहा था। यह बात नम्पूतिरिप्पाड से छिपी हुई तो न थी।

"वैराग भी आदमी को ग्रस लेता है, शंख! थोड़ा साहस बटोरो। दिल्ली चलो। तुम्हारी आँखों में बहुत दिनों से सन्देह और विश्वास का मिश्रण देखता आया हूँ। इरा के पत्र का तुम उत्तर नहीं देते। फिर कैसे बात बने?"

शंख कुछ न बोला। लहरों के प्रहार से दूर हटकर वे सागर-तट पर बैठ गए।

"सुख की मूर्ति फिर से गढ़ने वाली बात है, शंख! पंचानन को तुमने बहुत-कुछ दे डाला। अब अपनी सुध लो। अपने प्रति कर्तव्य सबसे बड़ा होता है। दिल्ली में जन-नाट्य-संघ के अधिवेशन में कवि

जयदेव के 'गीत गोविन्द' पर आधारित नृत्य-नाटिका भी प्रदर्शित की जायगी, ऐसा नीलू ने लिखा था पहली चिट्ठी में।"

"तो मैं वह नृत्य-नाटिका देखने चलूँ?"

"भीतर से टेर सुनो, तो चलो। नहीं तो रस नहीं आयेगा। चलो तो मेरा सौभाग्य है, न चलना चाहो तो अब मैं मजबूर नहीं करूँगा।"

"तो आप मुझे नहीं ले जाना चाहते?"

"यही समझ लो।"

"क्यों, उसका समय नहीं आया?"

"यह प्रश्न अन्तर की श्रद्धा-भक्ति से पूछो।"

"क्या इरा की देह से वैसी ही सहज कान्ति फूट रही होगी? क्या वह अब भी यही उत्तर देगी कि वह मेरे लिए बम्बई नहीं छोड़ सकती? तब तो मेरा वहाँ जाना व्यर्थ है।"

"मैंने बीज बो दिया, फसल अवश्य पकेगी। तुम दिल्ली कैसे नहीं चलोगे?"

"तो चलना ही होगा?"

"न चलकर दिखाओ, शर्त रही।"

"आपका विश्वास है, इरा वहाँ जरूर आयेगी?"

"नीलू ने ऐसा ही लिखा है।"

"बात यह है कि मेरा दिल इरा को देखने को नहीं, जया को देखने को तड़पता है।"

"मैं सब जानता हूँ। और यह कोई बुरी बात नहीं।"

आकाश पर तारों-भरा शामियाना उसी तरह तना हुआ था। सागर की लहरें उसी तरह थाप लगा रही थीं।

"यह विराग-सा क्या है, शंख? यह तुम्हारे मन को सालता है भीतर-ही-भीतर, यह मैं जानता हूँ। अनुराग अच्छा है, जो उदास नहीं होने देता। जीवन-साथी की कमी न संगीत पूर्ण कर सकता है, न नृत्य, न अभिनय। नीलू के विवाह की चिन्ता भी मुझे पहाड़-सी लग रही

। गोबिन्दन उसके लिए ठीक नहीं रहेगा क्या ?"

"गोबिन्दन में तो बहुत सी खूबियाँ हैं जो मुझमें भी न देख सकी इरा। नीलू और गोबिन्दन की जोड़ी ठीक रहेगी।"

"तो दिल्ली चलने की तैयारी करो। शायद कोई सिलसिला बन जाय। हाथ मिलाओ। वचन दो। बोलो, कब चलें ? परसों तक तो हर हालत में चल देना होगा।"

शंख पहले चुप रहा। फिर वह बोला, "इरा को गेटे बहुत पसन्द है। गेटे के कथनानुसार 'कला का अन्तिम और सर्वोच्च ध्येय सौन्दर्य है।' एक बात और। भविष्य के बारे में चिन्ता होना स्वाभाविक है। चलिए, मैं आपके निमन्त्रण का स्वागत करता हूँ।"

बारह

दिल्ली के रामलीला मैदान में 'नटराज पुरी' का सौरभमय वातावरण इस बात का प्रमाण था कि भाषा की दीवारें ढहते देर नहीं लगी। नम्पूतिरिप्पाड प्रसन्न थे। नीलू उनके साथ-साथ घूम रही थी।

बम्बई से इरा आई, न गोविन्दन। इसकी चोट शंख न सह सका। फिर भी वह क्या कर सकता था?

नीलू बोली, "आप देख रहे हैं। प्रतिभा का अभाव तो नहीं हमारे देश में। जन-नाट्य-संघ का यह ऐतिहासिक सम्मेलन याद रहेगा। प्रतिभाओं को जनता के सामने एक मंच पर लाकर खड़ा करने की ज़िम्मेदारी बहुत बड़ी है।"

असमिया कलाकारों ने खम्बा, धोबी, नागा और लासा नृत्य पेश किये, तो आन्ध्र वालों का मछुआ नृत्य उनसे होड़ ले रहा था।

"बंगाल का फसल नृत्य कितना बढ़िया रहा!" नीलू मन्त्रमुग्ध-सी होकर बोली, "मघई ओझा के ढोलकवादन ने कमाल कर दिया। उत्तर प्रदेश का आल्हा कैसा रहा? मुझे तो बहुत अच्छा लगा।"

नम्पूतिरिप्पाड को मैसूर के कर्नाटकी भावपूर्ण लोक-नृत्यों ने मोह लिया था। "उड़ीसा का छऊ नृत्य भी बहुत रसपूर्ण रहा!" वे गद्गद स्वर में कह रहे थे, "राजस्थान का पटोला गीत और नेजा नृत्य भी मन के तार हिला गए।"

शंख चुप था, मानो उसके लिए यहाँ कुछ भी न हो।

बंगाल के कलाकार सुकान्त भट्टाचार्य के एक गीत पर आधारित था, युवक कलाकार शम्भू भट्टाचार्य का 'रनर' नृत्य। उसने रंग-मंच पर जादू-सा कर दिया। "डाकिये की यह करुण कहानी बंगाल तक ही तो सीमित नहीं लगती," नीलू ने बलपूर्वक कहा, "डाकिये का जीवन ही ऐसा है। उसे ये सब मुसीबतें झेलनी ही पड़ती हैं।"

असम के कलाकार बलदेव शर्मा द्वारा प्रदर्शित 'अग्नि-नृत्य' की तो नटराज पुरी में धूम मच गई। उसके हाथों में आग की लपटें उठती दो थालियाँ रहती थीं। क्या मजाल, नृत्य में तनिक भी अन्तर पड़ जाय!

शंख की मुखमुद्रा से लग रहा था कि बंगाल के कलाकार शम्भू द्वारा प्रदर्शित बँगला नाटक 'एक पैसे की बाँसुरी' उसे बहुत पसन्द आया। "काश, इरा भी हमारे साथ यह नाटक देख रही होती, नीलू!" उसकी आँखों से अन्य दर्शकों के समान ही अविरल आँसू बह रहे थे।

"मुझे तो असमिया कलाकार मघई ओझा का ढोल बजाने का प्रदर्शन अनुपम लगा। हर कोई तो ऐसा नहीं कर सकता। इसके पीछे लम्बी साधना बोल रही है। हाथों से, कान से, पैर से, गालों से, सिर से, बदन को तोड़-मरोड़कर, एक साथ तीन-तीन ढोलक बजाना क्या सबके लिए सहज हो सकता है?" नम्पूतिरिप्पाड ने गद्‌गद स्वर में कहा।

नीलू भी चुप न रह सकी, "मघई ओझा का सबसे बड़ा कमाल यह है कि वह एक जादूगर के समान रेलगाड़ी की आवाज़, बादलों की गड़-गड़ाहट, वर्षा की बौछार की आवाज़ तथा अन्य ध्वनियाँ निकालकर दिखाने में समर्थ हो सका।"

शंख टस-से-मस न हुआ। इरा को यहाँ न पाकर वह बहुत उदास था।

नीलू बोली, "शायद इरा आज आ जाय।"

"इरा आई तो शायद गोबिन्दन भी आ जाय!" नम्पूतिरिप्पाड ने नीलू के मुख पर अपनी बात की प्रतिक्रिया देखने की कोशिश की।

अचला सचदेव ने पंजाबी कवि मोहनसिंह की प्रसिद्ध कविता 'अम्बी दा बूटा' पूरे अभिनय के साथ गाई, और दर्शकों के सामने वह सारा दृश्य आ गया कि किस प्रकार पंजाब की एक ग्राम-वधू आम-गाछ के नीचे अपने प्रियतम का स्मृति-चित्र देखती-देखती आकुल हो उठती है। सुचित्रा मित्र ने 'एकला चलो रे' गान द्वारा दर्शकों को मन्त्र-मुग्ध कर दिया।

उत्तर प्रदेश का लोकगीत हिरनी की व्यथा लेकर मंच पर आया। राजा हिरन का बलिदान रोकना स्वीकार नहीं करता। हिरनी अपने मृत पति की खाल माँगती है और उसे वह भी नहीं मिलती। रानी उसकी खंजरी बनवा डालती है। इस खंजरी के बजने पर हिरनी को अपने हिरन के मधुर स्वर सुनाई दे जाते हैं और वह सब-कुछ भूलकर नाचने लगती है। देखते-देखते नीलू की आँखों में आँसू आ गए।

नम्पूतिरिप्पाड सुअवसर समझकर बोले, "बेटी, यह बताओ कि तुम अपने लिए कोई जीवन-साथी क्यों नहीं ढूँढ़ पाईं? तुमसे तो एक हिरनी ही अच्छी है।"

नीलू ने खीझ-भरी दृष्टि से पिता की ओर देखा।

"हम तो सोचते हैं, गोविन्दन ठीक रहेगा।"

"अच्छा, अच्छा! मैं देख लूँगी।"

नटराज पुरी के लम्बे कार्यक्रम में कुछ उच्च कोटि के नाटकों का प्रदर्शन भी हुआ। पंजाब के कलाकारों ने 'शहीद भगतसिंह' खेला, और बिहार वालों ने भी स्वतन्त्रता के लिए मिटने वाले एक शहीद की जीवन-कथा पर आधारित नाटक प्रस्तुत किया। "बंगाल के कलाकारों द्वारा अभिनीत 'यात्रा' उत्तर भारत की नौटंकी के गले मिलती मालूम होती है!" कहते-कहते नीलू की आँखें चमक उठीं।

बम्बई के कलाकारों ने एक नाटक खेला, जिसमें नीलू का नायिका की भूमिका में अभिनय सब पर बाजी ले गया। नम्पूतिरिप्पाड और शंख ने सबसे यही सुना कि बंगाल के कलाकारों द्वारा अभिनीत नील

के बगीचों के प्रसिद्ध विद्रोह पर आधारित 'नील-दर्पण' से भी बम्बई वालों का नाटक उन्नीस के मुकाबले में इक्कीस रहा।

जन-नाट्य-संघ के इस सम्मेलन में एक चित्र-प्रदर्शनी का आयोजन भी किया गया था।

"नाट्य-कला का इतिहास हमारी समझ में आये बिना नहीं रहता। यूनानी रंग-मंच का विकास देखिए। प्राचीन भारतीय रंग-मंच की भावनात्मक और बौद्धिक सम्पन्नता पर भी ध्यान दीजिए। वह रहा शेक्सपीयर का यथार्थवाद। वह रहा मोलियर का नया तत्त्व। अब ज़रा जर्मन-नाटककार वर्थोल्ड ब्रेख का आधुनिक यथार्थ महाकाव्य का चित्रण देखिए।" नम्पूतिरिप्पाड कहते गए, मानो वे कॉलेज की क्लास ले रहे हों।

इस चित्र-प्रदर्शनी में अनेक पोस्टर चार्ट और बहुविध चित्र लगाये गए थे। एक कक्ष में उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस, जर्मनी और ब्रिटेन में हुए जनवाद से सम्बन्धित चित्र-सामग्री से काम लिया गया था। साथ ही इस प्रदर्शनी में यह भी बलपूर्वक दिखाया गया था कि जन-नाट्य-संघ ने किस प्रकार नाटकों, गीतों और आपेरों आदि माध्यमों से जन-जागृति के लिए ठोस काम किया था।

"पूर्ण सज-धज के साथ लोक-रंजन के विविध कलात्मक माध्यम गले मिल रहे हैं।" कहते-कहते नीलू ने बड़े गर्व से शंख की ओर देखा, "आप मेरे साथ बम्बई चलिए। इरा कह रही थी, जया के पिता को लेकर आऊँ। कहो, क्या सलाह है?" लोक-रंजन के माध्यमों के गले मिलने की बात पीछे छूट गई।

नम्पूतिरिप्पाड ने गोबिन्दन की बात छेड़ दी, "हर काम के लिए एक समय होता है, नीलू! देर तो बहुत हो चुकी है पर गोबिन्दन से कहा जाय तो वह मान जायगा। वह यहाँ आया होता, तो मैं पूछ देखता। तुम समझदार हो नीलू! बम्बई जाकर बात कर देखना। मुझे लिखना, अब इस काम में और ढील नहीं होनी चाहिए।"

नटराज पुरी में कई दिन तक नृत्य, अभिनय और संगीत का कार्य-

क्रम चलता रहा।

एक दिन सवेरे ही गोविन्दन आ गया।

शंख और गोबिन्दन गले मिले तो नीलू ने ताली बजाई।

चित्र-प्रदर्शनी में घूमते समय गोबिन्दन बोला, "नीलू, तुम्हारा अभिनय तो श्री एकसौ आठ गोविन्दन अवतार बम्बई में देख लेगा। शंख का संगीत तो यहीं सुनने को मिल सकता है।"

शंख देर तक इन्कार में सिर हिलाता रहा और फिर उसे कहना पड़ा—"मेरी कोई इच्छा नहीं कि संगीत के कार्यक्रम में भाग लूँ, पर गोबिन्दन के आग्रह को टालना भी तो सहज नहीं। मैं गाऊँगा।"

उसे लगा, उसके कान में इरा की पगध्वनियाँ आ रही हैं—सोई शिशु-मुस्कान-सी, अनबोली भाषा-सी, जैसे उसके कण्ठ में आकर वेदना और संगीत एक हो गए।

वह अपने भीतर सिमटकर गा रहा था।

उसे लगा, यह सब बकवास है। जहन्नुम में जाय मेरा संगीत और नीलू का नृत्य। भस्म हो जाय नटराजपुरी, इसकी वह चित्र-प्रदर्शनी भी स्वाहा हो जाय। फिर भी वह गा रहा था, और यही भाव उसके संगीत-प्रवाह में उमड़ रहे थे।

नम्पूतिरिप्पाड ने नीलू का कन्धा झंझोड़कर कहा, "देख रही हो, नीलू! शंख के संगीत में यही भाव उभर रहा है कि हर क्षण अनादि-अनन्त काल का ही मूर्त रूप है।"

नीलू के कान गोबिन्दन की तरफ लगे थे, जो कहे जा रहा था, "मैंने इरा को बहुत समझाया, वह न मानी। वह यहाँ आ गई होती, तो मैं दावे से कह सकता हूँ कि शंख के साथ उसका वियोग संयोग में बदल जाता।"

"इरा की बात छोड़ो," नम्पूतिरिप्पाड ने गोबिन्दन को सम्बोधित करते हुए कहा, "तुम अपनी बात करो। जो बात मेरे मन में है, वह मैं नीलू से पहले ही कह चुका हूँ।"

"रहने भी दो, पिताजी!" नीलू ने लजाकर सिर झुका लिया।

"ऐसी भी क्या बात है ?" गोबिन्दन ने अपने मुख पर भोलेपन की मुद्रा लाते हुए उसमें एक व्यंग-सा उभारकर कहा, "क्या कोई ऐसी भी बात है जो श्री एकसौ आठ गोबिन्दन अवतार के मन को अभी तक नहीं छू सकी ? नहीं बाबा, हम उस चक्कर में नहीं पड़ेंगे, जिसमें हमारा शंख पड़ गया ।"

"शंख ने कोई भूल नहीं की ।" नम्पूतिरिप्पाड ने थाप लगाई ।

"तो क्या इरा ने भूल की ?" गोबिन्दन चुप न रह सका, "मैं मान लेता हूँ, इरा ने ही भूल की । बात साफ है । जो भूल इरा ने की, वह नीलू भी क्यों करे ?"

नीलू ने गोबिन्दन का बायाँ कान प्यार से सहलाते हुए कहा, "बिलकुल ठीक । मैं वह भूल नहीं करूँगी ।"

नम्पूतिरिप्पाड को लगा, बागडोर हाथ से छूट रही है । बोले, "यह भूल किये बिना तो गुज़ारा नहीं बेटी ! भगवान् की यही इच्छा है, सृष्टि की यही लीला है ।"

"सुनो, सुनो !" नीलू ने बलपूर्वक कहा, "हम यहाँ शंख का संगीत सुनने आये हैं । बातें तो किसी भी समय हो सकती हैं ।"

शंख का संगीत यही भाव जगा रहा था—सबसे बड़ी यातना है एकाकी होना, मिलकर बिछुड़ जाना ! हम एकाकी नहीं रहना चाहते । इस तरह तो हम समाप्त हो जायँगे, हमारी चिनगारी चुक जायगी । इस तरह तो हमारे भीतर की अमृत-सहस्रधारा सूख जायगी । हमारे भीतर जो जीवन है, वह बाहर के जीवन से मिलकर एकाकार होना चाहता है ।

नम्पूतिरिप्पाड बोले, "मैंने तो तुम्हारी माँ से भी कहा था, दिल्ली चलो । वह मानी ही नहीं । उसे भी यहाँ होना चाहिए था !"

गोबिन्दन और नीलू की आँखें इस पर एक-दूसरे को जाने क्या कुछ कह गईं । गोबिन्दन ने मूक अभिनय द्वारा नीलू के पिता को ही अपने व्यंग्य का निशान बना डाला—बुड्ढे हो गए, बाल पक गए, फिर

भी जीवन-संगिनी का यह चार दिन का अभाव भी खटक रहा है। और फिर वह दूसरी ही मुद्रा में मानो कह गया—अपने राम हैं कि अभी जीवन-संगिनी मिली ही नहीं।

शंख का संगीत गहन यातना का प्रतीक था। एक कलाकार की व्यथा-लीला; हारकर भी हार न मानने वाले एक प्राणी की गाथा। शायद इसीलिए शंख का कण्ठ बहुत तेज नहीं चल पा रहा था। यह जीवन की एक विराट् अनुभूति का संगीत था।

"शायद यह वह दीपक-राग है जिससे दीये जलाये जा सकते हैं!" पास से कोई बोला।

नीलू ने आँखों-ही-आँखों में इस पर गोबिन्दन की राय पूछी। वह बोला, "दीये जलाने वाली बात तो झूठ है। लाख दीपक गाओ, कोई दीये-वीये नहीं जलते।"

नम्पूतिरिप्पाड चुपचाप बैठे संगीत सुन रहे थे।

गोबिन्दन बोला, "शंख को वापस बम्बई चलना ही होगा, देख लेना नीलू! एक दिन ऐसा होकर रहेगा, नहीं तो यह आदमी मर जायगा। इरा के बिना अब वह अधिक दिन जी नहीं सकता।"

"यह तो तुमने मेरे ही मन की बात कही," नीलू मुस्कराई।

"मैं भी चाहता हूँ एक जीवन-संगिनी!"

"कैसी?"

"है एक। आज मुसीबत तो यह है कि मैं उसे पूरी तरह नहीं जान पाया।"

"उसमें तुमने कोई बुराई देखी?"

"एक बुराई नहीं, बहुत-सी बुराइयाँ। पर सौ बुराइयों की एक बुराई यही है कि वह अपना अहम् झुकाने को तैयार नहीं। अहम् को झुकाये बिना विवाह नहीं हो सकता।"

"अहम् को खो दिया तो फिर बचा क्या? फिर तो समझो सारा व्यक्तित्व ही स्वाहा हो गया।"

"शायद यह बात ठीक है ।"

नम्पूतिरिप्पाड बोले, "संगीत सुनो । ये बातें तो फिर भी कर सकते हो । रुद्रपदम् से एक सौ एक कदम आगे है शंख का संगीत ! यह समझो, शंख में रुद्रपदम् जीवित है ।"

"और गोबिन्दन में नहीं ?" नीलू ने आँखें नचाईं, "गोबिन्दन तो गुरुदेव रुद्रपदम् का सुपुत्र है ।"

"पर शंख ही गुरुदेव का सच्चा मानस-पुत्र है ।"

गोबिन्दन बोला, "इरा को छोड़कर शंख ने सबसे बड़ी भूल की । इरा सच्ची है । मैं कह सकता हूँ, उसने अपने मन में बाल बराबर भी शंख के लिए दूरी नहीं आने दी ।"

नम्पूतिरिप्पाड मानो इसी क्षण के इन्तजार में बैठे थे, "तुम भी वचन दो कि नीलू के लिए कभी अपने मन में बाल बराबर भी दूरी नहीं आने दोगे, तो मैं तुम दोनों की जोड़ी की कामना कर सकता हूँ ।"

"छोड़िए, पिताजी !" नीलू ने खीझकर कहा ।

फिर संगीत का दूसरा झोंका आया । लगता था, दीपक-राग से दीये जल गए ।

शंख गा रहा था ।

वह अपार अग्नि में जल रहा था, फिर भी जैसे वह अग्नि से बच जाना चाहता हो ।

रंग-मंच पर रखे एक सौ एक दीये जन-नाट्य-संघ के अधिकारी की आज्ञा से ठीक समय पर एक साथ जला दिए गए थे ।

दर्शकों की तालियों से नटराजपुरी का यह अस्थायी मण्डप गूँज उठा ।

और फिर नम्पूतिरिप्पाड ने देखा कि गोबिन्दन पास की कुरसी से उठकर कहीं चला गया ।

नीलू बोली, "कहीं बाहर गया होगा, पान खाने ।"

"पान की आदत भी कितनी बुरी है !" नम्पूतिरिप्पाड मुस्कराये ।

थोड़ी देर बाद मंच से घोषणा की गई कि अब बम्बई के कलाकार मल्हार गायेंगे।

मल्हार के स्वर उठे।

थोड़ी देर बाद मंच पर वर्षा होने लगी।

दीये बुझते गए, एक-एक करके ! शंख उस तरफ बैठा था। वर्षा होती रही। शंख अपनी जगह से न उठा, जैसे दीपक-राग की आग बुझाने के लिए यह सब आवश्यक हो।

फिर मल्हार गाने वाले ने उठकर दीपक गाने वाले को गले से लगाया।

नम्पूतिरिप्पाड ने कहा, "अरे वाह नीलू ! यह मल्हार गाने वाला तो हमारा गोबिन्दन ही निकला !"

तेरह

विवाह होते देर न लगी। नीलू ने हँसकर कहा, "मैंने वह बात नहीं मानी—

घर का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध !"

गोबिन्दन बोला, "लेकिन एक बात जरूर हुई। नरगिस ने तो पद्मश्री की उपाधि पाकर ही अचानक सुनीलदत्त के साथ विवाह-सूत्र में बँधकर अपने प्रशंसकों के दिलों में एक विचित्र-सा आन्दोलन खड़ा कर दिया, और तुमने पद्मश्री बनने तक इन्तज़ार करना या यह कहो कि इसके लिए श्री एकसौ आठ गोबिन्दन अवतार का इन्तज़ार करना जरूरी नहीं समझा।"

नम्पूतिरिप्पाड प्रसन्न थे। नीलू और गोबिन्दन ने उनकी आज्ञा का पालन किया। उनका यही विचार था, "तुम दोनों सुखी रहो! यही मेरा आशीर्वाद है।"

शंख ने भी इस विवाह पर स्वीकृति की छाप लगाते हुए कहा, "विवाह तभी विवाह है, जब तुम स्वयं को इसमें डूबे हुए अनुभव करो। तभी जीवन-रथ आगे बढ़ सकता है।"

"तुम्हारा जीवन-रथ भी तो आगे बढ़ना चाहिए," नीलू ने गम्भीर मुद्रा में कहा, "मेरी मानो तो बम्बई चलो। इरा तुम्हें पाकर धन्य हो उठेगी।"

"इरा आज भी शंख की ही है!" गोबिन्दन ने बलपूर्वक कहा,

"वैसे तो औरत ही औरत की बात ज्यादा समझ सकती है, पर श्री एकसौ आठ गोबिन्दन अवतार का भी इरा से थोड़ा परिचय है। मैं जानता हूँ, इरा चाहे भी तो किसी और की नहीं हो सकती। हाँ जया बीच में न होती, तो बात दूसरी थी।"

"तुम बम्बई जाओ, शंख ! मैं अकेला वरकला चला जाऊँगा !" नम्पूतिरिप्पाड ने कहा, "तुम्हारी कर्मभूमि तो अब बम्बई ही हो सकती है। वरकला में तुमने पंचानन को जो देना था, दे डाला। अब जाकर अपनी इरा से मिलो, जाकर जया को गले लगाओ। और फिर यह बात भी तो है कि आज वह बम्बई नहीं है, जिसे तुम दस वर्ष पहले छोड़कर चले आये थे। वहाँ अच्छी फिल्में बनेंगी, जिनमें जीवन अमर हो सके। और अच्छी फिल्मों में अच्छा संगीत ही रखना होगा। वहाँ जाओ। थोड़ा खुद झुको, थोड़ा दूसरों को झुकाओ, यही जीवन है। बिलकुल विवाह वाली बात समझो।"

"आप भी बम्बई चलिए," गोबिन्दन ने सुझाव रखा, "फिर शंख भी चल सकता है ! आपको भी वरकला में ऐसा क्या काम है ? क्या बम्बई आपके अनुभव से लाभ नहीं उठा सकती ?"

"मेरा स्थान तो वरकला में ही हो सकता है। मेरा अभिनय अब और नहीं चलेगा। परदा गिरने से पहले मुझे बम्बई में नहीं वरकला में ही होना चाहिए।" नम्पूतिरिप्पाड कहते चले गए, "शंख, तुम बम्बई जरूर जाओ। मेरा खयाल है कि शीघ्र ही हमारे देश में जागरूक लोग यह विचार फिल्म-निर्माताओं के दिल और दिमाग़ तक पहुँचाकर छोड़ेंगे कि समाज में बुराइयाँ पैदा करने वाली फिल्मों का निर्माण बन्द कर दिया जाय।"

"यह काम तो सरकार को करना चाहिए।" गोबिन्दन ने युक्ति दी "यह बात कहने वालों की बम्बई में कमी नहीं, पर फिल्म-निर्माता इस पर कान नहीं धरते।"

"उन्हें एक दिन इस पर कान धरना ही होगा।" नीलू ने गम्भीर

स्वर में कहा, "जन-नाट्य-संघ का यह सम्मेलन फिल्म-निर्माताओं के लिए एक चुनौती है। वे नहीं बदलेंगे तो उनका काम वैसे ही चौपट हो जायगा। रंग-मंच का काम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेगा और वह भी अच्छे स्तर पर, तो लोग फिल्मों से हटकर रंग-मंच की ओर झुकेंगे। मेरा खयाल है कि अच्छे रंग-मंच की हाजिरी में बुरी फिल्मों का निर्माण अपने-आप सूखे पत्तों की तरह झड़ जायगा।"

गोबिन्दन बोला :

"लोगों को अच्छे मार्ग से भटकाने वाली फिल्मों के निर्माण की छूट वैसी ही है जैसे हमारे देश में यह छूट दे दी जाय कि खुले आम जहर का व्यापार किया जा सकता है। आज जहर बेचने पर लाइसेंस है, बन्दिश है। लेकिन जहर फैलाने वाली फिल्म जो चाहे आजादी से बना सकता है। क्या इसी का नाम आजादी है?"

शंख बोला :

"कहने को तो सभी फिल्म-निर्माता गला फाड़-फाड़कर यही कहते हैं—'जनता जो कुछ चाहती है वही तो हम अपनी फिल्मों में देने की कोशिश करते हैं, हम बेकसूर हैं।' पर सही बात यही है कि हर फिल्म-निर्माता आज पैसे के चक्कर में इतना फँसा हुआ है कि वह विष बेचता है पर अमृत के 'लेबल' लगाकर! एक होड़-सी लगी रहती है कि कौन ज्यादा-से-ज्यादा भद्दे नाच-गाने देता है। कौन अश्लील दृश्यों की भूल-भुलैयाँ में दर्शकों को गुम करके उनकी जेबों से अधिक-से-अधिक पैसे निकालता है। सरकार के बन्दिश लगाने-भर से भी कोई जादू-टोना होने से रहा। हम जागें, और फिल्म-निर्माताओं को जगायें, तभी कुछ काम चल सकेगा।"

"तो इसके लिए आप बम्बई चलो।" नीलू मुस्कराई।

"मेरे वहाँ जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।"

"क्यों?"

"कोयलों की दलाली में हाथ काले करते रहना मुझे एक आँख

नहीं भाता । बम्बई का मीना बाजार बम्बई को ही शुभ हो ।"

"यह कहिये कि आप कायर हैं ।"

"यही समझ लो ।"

"जन-नाट्य-संघ के सम्मेलन से कुछ तो प्रेरणा लीजिए । बम्बई चलो । मैं पहले भी कई बार बता चुकी हूँ, बम्बई में कई बम्बइयाँ हैं । सारी-की-सारी बम्बई तो मीना बाजार नहीं है ।"

"जो भी हो, मेरे बम्बई जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता ।"

"आप वहाँ जन-नाट्य-संघ में काम कर सकते हैं ।"

"वरकला ही अच्छा है ।"

नीलू बोली, " 'मदर इण्डिया' फिल्म का वह गाना सुनाइए शंख को !"

गोबिन्दन ने आँखें नचाकर कहा, "यह हुक्म मुझे दिया जा रहा है—मुझे यानी श्री एकसौ आठ गोबिन्दन अवतार को ?"

"नीलू कहती है तो सुना दो वह गाना !" नम्पूतिरिप्पाड उत्सुकतापूर्वक बोले, "शायद उसमें कोई खास बात हो ।"

गोविन्दन गाने लगा :

नगरी-नगरी द्वारे-द्वारे ढूँढ़ूँ रे सांवरिया,
पिया-पिया रट के मैं तो हो गई रे बावरिया ।
बेदर्दी बालम ने मोहे फूँका गम की आग में,
विरह की चिनगारी रख दी दुखिया के सुहाग में,
पल-पल नयना रोयें, छलके नैनों की गगरिया,
नगरी-नगरी द्वारे-द्वारे···

आई थी अँखियों में लेकर सपने क्या-क्या प्यार के,
जाती हूँ दो आँसू लेकर आशाएँ सब हार के ।
दुनिया के मेले में लुट गई जीवन की गठरिया,
नगरी-नगरी द्वारे-द्वारे···

दर्शन के दो भूखे नैना जीवन-भर ना सोयेंगे,
बिछुड़े साजन तुमरे कारन रातों को हम रोयेंगे।
अब ना जाने रामा कैसे बीतेगी उमरिया,
नगरी-नगरी द्वारे-द्वारे···

नीलू सुनते-सुनते झूम उठी।

"यही भाव इरा के समझो, शंख ! मैं सच कहती हूँ, वह भी अब तुम्हारे बिना नहीं रह सकती।"

"यह बात मैं मान नहीं सकता !" शंख ने बड़े क्षोभ-भरे स्वर में कहा, "इरा को मेरी जरूरत नहीं। फिल्मों में तो वह भी शायद ऐसे-ऐसे गाने गा सकती है, किसी 'प्ले बैक' गायिका की आवाज़ का धोखा देकर। पर जीवन में इरा वही है, जिसका उसने दस वर्ष मुझसे दूर रहकर सबूत दिया। कोई बात नहीं। उसे उसकी कर्मभूमि शुभ हो !" कहते-कहते शंख का गला भर आया।

"तुम्हें बम्बई जाना चाहिए !" नम्पूतिरिप्पाड ने शंख का कन्धा झंझोड़ा, "जागो, सवेरा हो गया। दस वर्ष की लम्बी रात अब समाप्त हो रही है। तुम्हारे सोते-सोते नीलू और गोबिन्दन का विवाह भी हो गया। आज जन-नाट्य-संघ के सम्मेलन का अन्तिम दिन है। दिल्ली छोड़ने की घड़ी सिर पर खड़ी है।"

चौदह

अन्नपूर्णा का झुर्रियों वाला चेहरा खिल उठा। घर में बेटे और बहू को देखकर वह फूली न समाती थी।

गोबिन्दन ने माँ के चरण छुए। माँ ने उनके सिर पर हाथ फेरा।

दस-ग्यारह वर्ष बाद ही सही, बेटा घर आया, बहू भी आ गई। यह क्या कम खुशी थी? "मैंने तुम्हारा विवाह अपने हाथ से किया होता तो और भी खुशी होती, पर सभी खुशियाँ किसके भाग्य में लिखी हैं, गोबिन्दन!"

"पर विवाह का तो एक मुहूर्त रहता है न, माँ!" गोबिन्दन हँस पड़ा, "पूछ लो नीलू से! मैं खुद भी नहीं जानता था कि मुहूर्त इतना पास है। बताकर नहीं आया था मुहूर्त।"

"बहुत अच्छा हुआ, बेटा! आम खाने से मतलब है, गिनने से नहीं।"

मन्दिर बाज़ार के पास रहती थी अन्नपूर्णा, पुराने घर में। संगीत-विद्यालय वाला मकान तो तभी तक रहा, जब तक रुद्रपदम् वहाँ के आचार्य थे।

"आज तो तुम्हारे पिता को भी होना चाहिए था!" अन्नपूर्णा की आँखें भर आईं।

"कितने अच्छे थे गुरुदेव!" नीलू ने थाप लगाई।

अन्नपूर्णा की आँखों के आँसू थमते ही नहीं थे। "सागर की तरह

मन में भी कितने ज्वार-भाटे और तूफान उठते हैं, माँ !" गोबिन्दन बोला, "अब तो हम तुम्हें यहाँ नहीं रहने देंगे। पहले तो मेरा कोई घर-घाट नहीं था बम्बई में। अब नीलू तुम्हारी सेवा करेगी।"

"तुम ज़रूर चलो, माँ !" नीलू ने आग्रहपूर्वक कहा, "हम तुम्हें साथ ले चलने के लिए ही वरकला आये हैं।"

दूर से यमुना को देखकर अन्नपूर्णा बोली, "वह देखो, नीलू ! तुम्हारी माँ आ गई। उठो, गोबिन्दन ! अपनी सास के चरण छुओ !"

गोबिन्दन हँसकर बोला :

"आओ, नीलू ! हम अपनी-अपनी माँ बदल लें !"

यमुना बोली, "सास भी माँ ही होती है बेटा ! मुझसे बड़ा भाग्यवान दूसरा नहीं होगा आज सारे वरकला में ! यह जोड़ी शुभ हो।"

गोबिन्दन ने हँसकर कहा :

"माँ ! शंख ने बम्बई में एक कविता लिखी थी, सुनोगी ?"

"सुनाओ !" अन्नपूर्णा और यमुना एक साथ बोलीं।

गोबिन्दन डायरी खोलकर ऊँचे स्वर से पढ़ने लगा :

लो बजे ब्याह के ढोल और गूँजी शहनाई अलसाई-सी,
ज़रा रेडियो को ऊँचा कर दीजो, दुलहिन !
एक हाथ पर ठोड़ी टेके, एक हाथ से परदा थामे,
शायद सोच रही हो तुम—
अब कभी नहीं लौटेंगे प्रथम मिलन के क्षण
सेमल की हल्की आवारा रूई के गालों-से।
जो भी हो, ये ढोल बजेंगे, नहीं रुकेंगे, दुलहिन !

नीलू बोली, "शंख ने जो बात इरा को सामने रखकर कही थी, वह तो किसी भी दुलहिन पर पूरी उतर सकती है।"

गोबिन्दन आँखें नचाते हुए पढ़ता चला गया :

केसर रंग रंगे ये गान और नूपुर-ध्वनि तरल जुन्हाई-सी,
ज़रा रेडियो को ऊँचा कर दीजो, दुलहिन !

ये ढोल बजें ज्यों बरसें मेघ मूसलाधार
ये ढोल सुहाने लगते जैसे वीणा की झंकार
वंशी की लय ठण्डी ओले-सी अब जमी-जमी-सी,
आलस-भरे अन्धेरे में ज्यों झुक जाए दीये की बाती।
जो भी हो, ये स्वर उभरेंगे, नहीं दबें, दुलहिन !

परी-कथा की राजकुमारी जागी उधर,
इधर यौवन ने ली अंगड़ाई-सी,
ज़रा रेडियो को ऊँचा कर दीजो, दुलहिन !
यह ध्वनि जो छू-छू जाती अल्हड़ मन के तार,
यह ध्वनि जो लाँघ आई है बीहड़ पथ कान्तार,
जाने फूलों के हिय में यों मधु-पराग क्यों खिल-खिल उठता ?
जाने गृह-द्वार नगर वन में ये उत्सव-दीपक कौन संजोता ?
कुछ भी हो, ये भेद खुलेंगे, नहीं छिपेंगे, दुलहिन !

अन्नपूर्णा और यमुना चुप-चुप-सी एक-दूसरी को देख रही थीं। कुछ-कुछ बातें तो उनकी समझ में आ रही थीं। नीलू ने व्याख्या-सी करते हुए कहा, "धन्य है इरा, जिसे सम्बोधित कर शंख ने ये भाव प्रकट किये। पर इस कविता में व्याह के ढोल तो देश-काल की कैद से परे हैं।"

गोबिन्दन कविता के अगले चरण पढ़ने लगा :

छिः ये कागज़ी फूल अरे छिः वेणी सेंट से महकाई-सी
ज़रा रेडियो को ऊँचा कर दीजो, दुलहिन !
ढोल उधर औ' इधर मशीनी युग के मानव,
ढोल उधर औ' इधर फौलादी युग के दानव,
प्रेम नया क्या होगा रे यह वही कारबन कापी !
'कल' से 'आज' भला कितना नूतन हो सकता, प्रेयसि !
जो भी हो, छल छद्म चलेंगे, नहीं रुकेंगे, दुलहिन !

नीलू बोली, यहाँ कवि का व्यंग्य जरा तीखा हो गया !" और फिर हँसकर कहा, "ठीक है, जब भी कोई लड़की विवाह के लिए हाँ करेगी, ये ढोल जरूर बजेंगे।"

अन्नपूर्णा बोली, "शंख कवि भी है, यह तो यहाँ किसी को मालूम नहीं। उसने विवाह किया था तो उसे थोड़ा धैर्य रखना चाहिए था, बेटा ! छोड़कर आना तो कायरता हुई। मैंने उसे सदा यही समझाया, बम्बई जाओ।"

नीलू ने आँखें नचाकर कहा, "उसे भी बम्बई ले चलेंगे। पहले तुम तो तैयारी करो, माँ !"

यमुना हँस पड़ी, "हमें तो कोई नहीं कहता, बम्बई चलो।"

नीलू बोली, "तुम भी चलो, माँ !"

"अन्नपूर्णा को ही जाना चाहिए।" यमुना ने गम्भीर स्वर में कहा, "नीलू बेटी, एक बात याद रखना, बड़ों की छत्रछाया में ही सुख है। सास को ही माँ मानना। मेरे पास शिकायत नहीं आनी चाहिए।"

"तुम बम्बई चलने की तैयारी करो, माँ ! गाड़ी का समय हो रहा है।" गोबिन्दन ने बलपूर्वक कहा, "मैं सदा यह सपना देखता रहा हूँ कि जब मेरा घर-घाट होगा, तो माँ को भी साथ रखूँगा।"

"यहाँ रहने पर भी तो तुम ही सेवा करते आये हो, बेटा ! भीतर से वरकला छोड़ने को जी नहीं होता। वचन दो कि बम्बई में मेरा जी न लगा तो मुझे यहाँ छोड़ जाओगे।"

"अब यह बात तो गलत है, माँ ! अब तो तुम्हें बम्बई में ही रहना होगा हमारे पास !" गोबिन्दन ने बलपूर्वक कहा, "बम्बई और वरकला के बीच चक्कर काटता रह जाऊँ, यह तो नहीं होगा !"

"सही बात तो यही है माँ कि अब तुम हमारे पास ही रहोगी !" नीलू मुस्कराई।

"शाबाश, नीलू !" यमुना ने गर्व-सा अनुभव करते हुए कहा, "चलो उठो, बहन ! सामान बाँधो ! शंख और नीलू के पिताजी सीधे स्टेशन

पहुँचने की बात कह रहे थे।"

वे स्टेशन पहुँचे, तो गाड़ी आने में अधिक समय नहीं था।

नम्पूतिरिप्पाड बोले, "मैं अब भी कहता हूँ, शंख ! तुम इनके साथ चले जाओ।"

शंख इन्कार में सिर हिलाता रहा।

गाड़ी आई। नीलू, अन्नपूर्णा और गोविन्दन डिब्बे में जा बैठे। खिड़की से सिर निकालकर नीलू बोली, "मान भी जाओ, शंख ! चलो हमारे साथ ! इरा तुम्हारी है, जया तुम्हारी है, बम्बई तुम्हारी है !"

इंजन ने सीटी बजाई। शंख टस-से-मस न हुआ।

गाड़ी चली गई।

नम्पूतिरिप्पाड बोले, "शंख, तुम अब वरकला में नहीं रह सकते। तुम्हें जाना ही होगा बम्बई। समय की यही पुकार है। तुम कब तक अनसुनी करते रहोगे ?"

पचपन

"इरा, तुम एक बार वरकला जरूर जाओ !" नीलू ने बलपूर्वक कहा, "नारी झुक जाती है, इसलिए कहती हूँ, तुम झुक जाओ। मैं देख आई, शंख बहुत उदास है। वह झुकना नहीं चाहता। तुम जाओ एक बार, और उसे लेती आओ !"

नीलू की यह सीख इरा को अच्छी लगी, भले ही ऊपर से उसने यही कहा, "देखा जायगा।"

गोबिन्दन ने दावत दी थी। उर्वशी और जयन्त प्रसन्न थे। मनोज और मुक्तिबोध अलग गोबिन्दन को छेड़ रहे थे। राज राज अनुपम से गोबिन्दन ने कहा, "अब यह बताओ कि तुम्हारा घर-घाट कब बसेगा ? जहाँ शादी की बात चली थी, वहाँ मामला ढीला मालूम होता है क्या ?"

इरा नीलू के पास वाली कुर्सी पर बैठी थी। वह आत्म-सन्तोष की मूर्ति-सी प्रतीत हो रही थी, यही बात उसे इस दावत में दूसरों से अलग दरशा रही थी।

गोबिन्दन खूब चहक रहा था। "श्री एक सौ आठ गोबिन्दन अवतार को दूल्हे के रूप में देखकर मैं आज फूली नहीं समाती !" इरा ने सुख की साँस लेकर कहा, "मैं नीलू से कहूँगी कि वह गोबिन्दन को कसकर रखे।"

मुक्तिबोध ने हँसकर कहा, "तब तो गोबिन्दन भी वरकला चला

जायगा शंख की तरह !"

उर्वशी और जयन्त ने ताली बजाई।

मनोज बोला, "शंख तो कभी भी लौट सकता है। जया अपने डैडी को बुलाकर छोड़ेगी।"

इरा मुस्कराई।

"मैंने शंख को कभी गुलाम बनाना नहीं चाहा था, और न मैंने गुलाम बनना ही कभी स्वीकार किया।"

उर्वशी बोली, "गुलाम बनने का तो आज की नारी के सामने सवाल ही नहीं उठता। क्यों नीलू ?"

नीलू कुछ-कुछ लजा-सी गई, जो सबको उचित ही प्रतीत हुआ।

दावत का प्रबन्ध ताजमहल होटल में किया गया था, जिसकी खिड़कियों से सागर साफ दिखाई देता था।

इरा ने कहा, "नीलू, शायद मैंने बदतमीजी की, जो सारी दुनिया में घूम आई, लेकिन शंख की बात नहीं पूछी।"

"तुमने उसे चिट्ठियाँ तो लिखीं !" नीलू ने मानो इरा का पक्ष लेते हुए कहा, "मुझे शंख ने सब बता दिया। उसने किसी चिट्ठी का उत्तर नहीं दिया। बदतमीजी तो उसने की, यह बात मैंने उससे साफ कह दी थी।"

"खैर इसकी तो कोई बात नहीं कि शंख ने चिट्ठी का जवाब नहीं दिया। वैसे वह क्या कह रहा था ?"

"कहता भी कुछ नहीं। बस बम्बई आने को राज़ी नहीं हुआ। शायद वह इसी बात पर अड़ा हुआ है कि जन्मभूमि ही आदमी के लिए सबसे बड़ा वरदान है। वैसे उसके पास तुम्हारी अनेक मधुर स्मृतियाँ हैं।"

"स्मृतियों से क्या होता है ? पर यह इन्सान की पुरानी आदत है। वह साहस से काम नहीं ले पाता, तो स्मृतियों में उलझकर ही रस लेने की कोशिश करता है।"

शेष अतिथि अपना-अपना प्रसंग ले बैठे थे ।

होटल का आरकेस्ट्रा स्वागत-संगीत बजाए जा रहा था ।

दावत में अनेक तरह के भोजन पेश किये गए ।

भोजन के बाद अतिथि कोको पी रहे थे, और आँखों-ही-आँखों में यह शिकायत कर रहे थे कि आजादी के बाद बम्बई को सरकार ने 'ड्राई' बनाकर रख दिया ।

इरा बार-बार दोनों हाथों से अपना जूड़ा ठीक करने लगती थी ।

स्वागत-संगीत ऊँचा होता गया ।

इरा बोली, "एक बात है, नीलू ! मुझे पता होता कि शंख दिल्ली आ रहा है तो मैं भी तुम्हारे साथ जरूर गई होती । वहाँ मैंने तुम्हें दुलहिन बनते भी देखा होता । अब तो मैं शंख की यादों को ताश के पत्तों की तरह फेंटकर ही खुश हो लेती हूँ । जया की अजीब बात है । उसने शंख को देखा नहीं । उसकी बातें मुझसे भी ज्यादा वही करती है । उसकी आदतें भी बिलकुल शंख पर गई हैं । भोजन में जो-जो चीजें शंख को पसन्द हैं, वही तो जया को भी अच्छी लगती हैं । यह सब कैसे सम्भव हुआ ? प्रकृति के बलिहारी जायँ !"

"तुम जरूर एक बार वरकला हो आओ, इरा ! जया को भी साथ ले जाना !"

"अभी तो सोचा नहीं ।"

"मेरी बात मानो ।"

"पूछ देखूँगी मन से ! क्या उसके सामने जाकर गिड़गिड़ाना होगा ?"

"इसकी तो जरूरत नहीं होगी । जाना ही काफी होगा ।"

"और अगर जया को यहीं छोड़ जाऊँ ?"

"जया को साथ रखना ।"

आरकेस्ट्रा का स्वागत-संगीत भी जैसे यही कह रहा हो—जया को साथ रखना !

अतिथि अपनी-अपनी बातों में खो गए। मुड़-मुड़कर उनकी दृष्टि नीलू पर जम जाती। नीलू दुलहिन थी। हर किसी को अपने विवाह की याद आ रही थी, यह भाव उनकी मुख-मुद्रा पर अंकित था। सब पीछे छूट गया, स्मृतियों के खेवा-घाट पर! ऐसा ही उत्सव हुआ था तब भी, ऐसी ही दावत दी गई थी, ऐसा ही स्वागत-संगीत बजा था।

राज राज अनुपम ने सब मित्रों को सम्बोधित करते हुए मानो किसी गीत का बोल गुनगुना दिया :

चाँदी के वरक लगे
सोने के वरक लगे
आये दिन बहार के
रंग गुलनार के

उर्वशी बोली, "गीत में नीलू का नाम जोड़ना होगा।"

राज राज अनुपम आशु कवि के अन्दाज़ में गुनगुनाने लगा :

बदलते रहे हैं, बदलते रहेंगे,
ये नीलम-से नीलू के रंगीन सपने
शादी की दावत का किस्सा है न्यारा!
करो याद यारो, ब्याह अपने-अपने।

मुक्तिबोध बोला, "अब गीत के एक बोल में हमारी इरा जी की थोड़ी तारीफ हो जानी चाहिए, कवि जी!"

और अनुपम ने झट यह बोल गुनगुनाया :

पुकारो शंख को इक उम्र होने आई है
इरा के कंठ में यह गीत आज लहराए!

मनोज भी चुप न रह सका, "उर्वशीजी की तारीफ में भी होना चाहिए एक बोल!"

अनुपम ने खिले चेहरे से उर्वशी की तरफ देखा। सब खिलखिलाकर हँस पड़े। अनुपम झूमकर गा उठा :

सलाम लिखता है शायर तुम्हारी जुल्फ के नाम !
बनी रुबाई बनी गज़ल जबकि ठुमरी ने
तुम्हारे प्यार के पोखर में पा लिया सुख-धाम
तुम्हारे हाथ में है बागडोर फिल्मों की
हमारा गीत तुम्हारे हुसन का है जाम
सलाम लिखता है शायर तुम्हारी जुल्फ के नाम !

होटल का आरकेस्ट्रा अब दूसरी ही धुन बजा रहा था। सभी अतिथियों ने उर्वशी को ध्यान से देखा, जिस पर अनुपम के गीत ने जादू-सा कर दिया था।

होटल से बाहर आकर नीलू ने फिर से इरा को अपनी बात याद दिलाई, "इरा, तुम एक बार वरकला जरूर जाओ।"

सोलह

"शंख से मिलने जा रही हो, इरा ! आख़िर तुम्हें ही झुकना पड़ा। नारी को ही झुकना पड़ता है।"

"मैं नहीं झुकी, जया झुकी है। उनकी जया को उनके पास ले जा रही हूँ। या तो वे साथ आ जायँगे या इसे उनके पास छोड़ आऊँगी।"

आज सवेरे-सवेरे नानी की कहानी सुन रही थी जया :

एक था राजा। उसकी थीं सात रानियाँ। पर एक भी रानी के सन्तान नहीं थी। एक दिन राजमहल में एक ऋषि आ निकला। सबसे छोटी रानी ने आँखों में आँसू भरकर ऋषि की ओर देखा और कहा, "महाराज ! सन्तान-प्राप्ति का कोई उपाय बताइए !" ऋषि ने रानी को एक सेब दिया। रानी ने यह सेब ताक में रख दिया, यह सोचकर कि वह स्नान करके ही इसे खायेगी। पर जब वह स्नान करके वापस आई, तो सेब ताक से ग़ायब था।···

इरा ने भी सुनी थी यह कहानी बचपन में। माँ ने इन्हीं शब्दों में सुनाई थी यह कहानी। आज सवेरे-सवेरे जैसे फिर वही रिकार्ड लगा दिया गया था। कहानी की समस्या यही थी कि वह सेब कौन ले गया। पर जैसे कुछ क्षणों के लिए उस समस्या से छुटकारा पाकर इरा ने दोबारा कहा, "मैं नहीं झुकी, जया झुकी है।"

माँ कुछ न बोली।

जया सो गई थी।

माँ खिड़की में खड़ी नरीमान पाइंट की तरफ़ देख रही थी। सागर का दृश्य माँ को प्रिय था। "जुहू वाली बात यहाँ कहाँ ?"

"शंख इसी बात को यों कहता—वरकला वाली बात यहाँ कहाँ ?"

"उसका उलाहना तो उसी को देना, तुम वरकला जा ही रही हो।"

"सीधी वरकला नहीं जाऊँगी, माँ ! पहले एलोरा और अजन्ता, फिर मद्रास, महावलीपुरम्, तंजौर, त्रिची और मदुरा। फिर कन्याकुमारी, और वहाँ से लौटकर वरकला।"

"कोई जगह रह न जाय। कितने दिन के लिए जा रही हो ?"

"अब जितने दिन भी लग जायें। एक बात बताओ, माँ ! रानी का वह सेब कौन ले गया था ? यह कहानी तो तुमने मुझे भी सुनाई थी बचपन में, पर भूल गई।"

"तो शंख से पूछ लेना। उसकी माँ ने भी तो सुनाई होगी उसे यह कहानी।"

इरा का ध्यान गोबिन्दन की तरफ़ चला गया। कल जब मनोज मिलने आया तो ऊपर से गोबिन्दन भी आ निकला। मनोज ने हँसकर कहा था, "कैबरे' में यूरोपीय ट्यून पर यूरोपीय नाच की छाप दिखाते वक्त क्या आप 'नाच-नाच रे मयूरा !' वाला गीत देना चाहेंगे ?" और गोबिन्दन ने झट उत्तर दिया था, "बिलकुल नहीं, मनोज साहब !" ठीक कहा था गोबिन्दन ने ! फ़िल्म के विषय पर ही निर्भर रहेगी फ़िल्म की भाषा, और नाच-गीत की धुन। इरा ने माँ की तरफ देखकर कहा, "कौन ले गया था वह सेब ?"

माँ कुछ न बोली। वह इरा को जाने से रोक तो न सकती थी, पर वह अपने भावों को छिपाकर रखने की भी अभ्यस्त न थी।

इरा ने माँ को यह भी नहीं बताया था कि वह हाल ही में शंख को दो चिट्ठियाँ लिख चुकी है। यह बात तो उसने शंकर से भी छिपाकर रखी थी।

शंकर ने बाहर जाते-जाते पुराना व्यंग्य चुस्त कर दिया, "क्यों दीदी, तुम अकेली आई हो ? जीजाजी नहीं आये ?"

शंकर हँसते-हँसते नीचे उतर गया। नटखट, पहली बात भूलता ही नहीं—दस वर्ष पहले की बात। उस समय तो जया का कहीं पता न था। इरा को लगा कि जो सेब उसे मिला था ऋषि से, उसे उसने फौरन खा लिया था। लोक-कथा की रानी की तरह उसने सेब को ताक में रखने का 'रिस्क' नहीं लिया था। उसने जैसे सेब खाकर ही स्नान किया था।

इरा दृढ़-संकल्प थी। आज रात की गाड़ी से वह जा रही थी। दक्षिण भारत की यात्रा करके वह मालूम करना चाहती थी कि वह चट्टान किस तरह की है जिससे शंख को घड़ा गया। वह शंख को दो पत्र लिख चुकी थी। पहला पत्र लिखने के दूसरे ही दिन उसने दूसरा पत्र लिख दिया था। विचार तो आया था, शंख क्या सोचेगा ? दस साल तक चुप रही। लिखने पर आई, तो उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना हर रोज ही पत्र लिखने लगी।

माँ खिड़की से सागर की तरफ़ देख रही थी। वह उदास थी। इरा ने सोचा, इतनी उदास तो माँ तब भी नहीं हुई थी जब मैं पाँच वर्ष पूर्व अमरीका, एशिया और यूरोप की सैर पर निकली थी, जया को साथ लेकर। इतनी उदास तो माँ तब भी न हुई थी, जब मैं पिछले दिनों रूस गई, फिल्म डैलीगेशन में, जया को साथ लेकर! माँ को मालूम होना चाहिए कि मैंने अपने सेब का 'रिस्क' नहीं लिया था, मैंने तो ऋषि से मिला हुआ सेब नहाने से पहले ही खा लिया था।

"टेप रिकार्डर साथ रहेगा, माँ!"

"किस-किसकी आवाज़ रिकार्ड करोगी ?"

"जिसकी भी आवाज़ पसन्द आ गई।"

"उधर की भाषा तू खाक समझेगी ? जितनी मलयालम सीखी थी, सब तो भूल गई।"

इरा ने कुछ उत्तर न दिया। उसने सोचा, कहानी का अन्त तो अभी दूर है। कहानी में 'सस्पेन्स' की ही तो सारी बात है।

"सबसे छोटी रानी का वह सेब किसने चुरा लिया था, माँ!"

माँ ने जैसे सुना ही नहीं। चुप खड़ी सागर की ओर देखती रही।

"एक चट्टान वह भी है माँ, जिससे एलिफेण्टा की त्रिमूर्ति घड़ी गई।" इरा कहती चली गई, "एलोरा में तो, सुना है, पूरा मन्दिर ही पहाड़ को छील-छीलकर बनाया गया। कैलाश, यही उस मन्दिर का प्यारा-सा नाम है। मनोज अकेला ही उसे देख आया। वह तो अजन्ता भी देख आया। अजन्ता की नर्तकी का ठप्पा तो आज की फैशनेबल औरत की साड़ी के बॉर्डर पर भी नज़र आ जाता है। 'होंठो पर लिपस्टिक; साड़ी पर अजन्ता की नर्तकी।' मनोज मेरा मज़ाक उड़ाता है। कहता था मनोज—'अजन्ता गये बिना, अजन्ता को समझा ही नहीं जा सकता। वहाँ की गुफाएँ कैसे बनाई गईं पहाड़ को भीतर से काट-छीलकर! कैसे उन गुफाओं की छतें बनाई गईं! वैसी ही छतें, जैसी माडर्न बिल्डिगों में सीमेंट-कंकरीट की समस्त चौकोर छतें होती हैं। एक गुफा वहाँ अधूरी ही पड़ी है, मनोज कह रहा था। उस अधूरी गुफा से पता चलता है, कैसे छीलते-काटते थे ये गुफाएँ। ऊपर से काट-काटकार नीचे को आते थे।...."

माँ कुछ न बोली।

"तुम सुन नहीं रहीं माँ! मैं एशिया देख आई, यूरोप देख आई, अमरीका देख आई। रूस भी हो आई। अपना ही देश नहीं देखा। दक्षिण भारत नहीं देखा, जहाँ मनोज के कथनानुसार हमारी संस्कृति की आत्मा बसती है। मैं दक्षिण भारत की यात्रा पर जरूर जाऊँगी। जया को भी दिखा लाऊँगी कन्याकुमारी की आखिरी चट्टान,..." कहते-कहते इरा हंस पड़ी। "सातवीं चट्टान के मछुवे से बम्बई की एक्ट्रेस ने ब्याह किया। ऋषि का सेब भी खाया एक्ट्रेस ने। सेब खाने का प्रसाद ही तो है हमारी जया। वाह-वाह! जया को मालूम

ही नहीं कि ममी ने सेब खाया था !" वह हँसती चली गई। हँस-हँस-कर दोहरी हो गई।

"तुम पागल हो जाओगी, इरा ! मैं कहती हूँ, आज तो तुम हरगिज नहीं जा सकतीं। नीलू और गोबिन्दन पूना गये हैं। कहते थे, सिंहगढ़ का किला देखकर आयेंगे। वे आ जायँ तो उनसे सलाह कर लेना। वे साथ जायँ तो तुम्हें आराम रहेगा।" माँ की मुख-मुद्रा बहुत गम्भीर थी।

"मैं तो आज ही जाऊँगी। अब मैं रुक नहीं सकती।"

माँ तानपूरा लेकर बैठ गई, और गाने लगी :

मोरे मन्दिर अब लौं नहीं आये।

यह थी जयजयवन्ती, इरा के डैडी की प्रिय रागिनी। इसके गाने का समय तो नहीं था सवेरे-सवेरे ! हर रागिनी का अपना समय था। जयजयवन्ती का भी अपना समय था। आज माँ बिना यह सोचे ही गाने वैठ गई।

माँ को जैसे स्वयं भी रस आ रहा था। आज उसकी कला चरम सीमा को छू रही थी। "कितनी टिकी हुई है तुम्हारी आवाज, माँ !" इरा बोली, "तुम आज भी कितना अच्छा गा सकती हो !"

माँ गाती रही। इस रागिनी में जैसे वह अतीत को निहार रही थी। पर यही अतीत रागिनी इरा के लिए वर्तमान के ताम्रवर्ण आकाश पर कोई सिन्दूर की रेखा खींच रही थी, जैसे नारी माँग में सिन्दूर भरती है।

इरा बैठी सुनती रही। धीरे-धीरे जया ने आँखें खोलीं। इरा ने प्यार से जया को गोद में लेकर कहा, "आज रात की गाड़ी से हम चलेंगे।"

"डैडी के पास !" जया का मुखकमल खिल उठा।

"नानी को भी ले चलेंगे, शंकर को भी।" जया चुप न रह सकी

"नहीं, हम अकेले ही चलेंगे।" इरा मुस्कराई, "जया अपने डैडी से

"नारी को ही झुकना पड़ता है !" माँ कहती चली गई, "अपने मन्दिर में बैठकर वह जयजयवन्ती गाती है। जब मन्दिर का स्वामी लौटा आता है, तब भी कहानी खत्म थोड़े ही हो जाती है। सेब की तलाश तो रहती ही है। मुश्किल से तो ऋषि से सेब मिलता है, पर ताक में से सेब चोरी चला जाता है। याद है न, जया !"

"एक था राजा। उसकी थीं सात रानियाँ···" जया ने नानी से सुनी हुई कहानी शुरू कर दी।

सत्रह

त्रिवेन्द्रम पीछे छूट गया था। गाड़ी पश्चिमी घाट के साथ-साथ ऊपर जा रही थी।

बम्बई से चलकर इरा सीधी अजन्ता और एलोरा गई, फिर मद्रास पहुँची। फिर उसने कुम्भकोणम्, त्रिची, मदुरा, रामेश्वरम् और कन्या-कुमारी के मन्दिर देखे। मद्रास में उसने एक सप्ताह बिताया था, जहाँ वह सागर के किनारे घूमने के लिए हर रोज ट्रिप्लीकेन जाया करती थी। मद्रास का सुविस्तृत सागर-तट जया को कितना पसन्द आया था! बम्बई में जुहू सागर-तट के साथ-साथ नये ज़माने के डिजाइनों वाली ये भव्य इमारतें कहाँ हैं? बम्बई में मैरीन ड्राइव पर ऊँची इमारतें तो थीं, पर वहाँ तो पालतू-से सागर का दृश्य ही नजर आता था। बम्बई में इण्डिया गेट के समीप भी सागर-तट ऊँची इमारतों से सटा हुआ था, पर वहाँ भी सागर मद्रास के ट्रिप्लीकेन की तरह तो क्या, बम्बई के जुहू की तरह भी विशाल नहीं था।

"सच-सच कहो, जया! तुम्हें मैरीन ड्राइव अच्छा लगता है या जुहू? मद्रास का ट्रिप्लीकेन या कन्याकुमारी?" इरा ने जया की ठोड़ी उठाकर पूछा।

उत्तर में जया केवल मुस्करा दी।

"अब तुम वरकला का सागर-तट देखोगी।" इरा ने मानो आस्था की थाप लगाई।

इरा को डिब्बे में बैठे-बैठे याद आया, मद्रास से वह महाबलीपुरम् भी गई थी। वहाँ के प्रकाश-स्तम्भ पर चढ़कर उसने जया को पूर्वी घाट के साथ-साथ दूर तक फैले हुए पूर्वी सागर का दृश्य दिखाया था। जया तो वहाँ से हिलना ही नहीं चाहती थी।

लगता था इस दृश्यपट के साथ जया का मन युग-युग से जुड़ा हुआ है। यह कैसी आस्था थी? इरा सोच रही थी, यह वही आस्था है, जिसने अजन्ता और एलोरा की कला को जन्म दिया। अजन्ता की एक गुफा में अवलोकितेश्वर बोधिसत्व का चित्र देखा था—हाथ में कमल का फूल, मुख पर अपार शान्ति! एक गुफा में भगवान् बुद्ध की विशाल मूर्ति देखी थी, जिस पर कई कोणों से प्रकाश डाल-डालकर म्यूज़ियम के गाइड ने दिखाया था कि एक ही मूर्ति पर कैसे मुखमुद्रा बदल जाती है, कैसे मुख के भाव अलग-अलग नज़र आते हैं। एलोरा में कैलाश का कलामय रूप। पहाड़ को काट-काटकर पूरे मन्दिर की सृष्टि। यह किसकी देन थी? इस पर भी आस्था की छाप थी। महाबलीपुरम् में चट्टानों को तराश-तराशकर बनाये गए, पञ्च पाण्डव रथ! कुम्भ-कोणम्, त्रिची और मदुरा के मन्दिर, ये भी तो किसी सत्य के प्रतीक थे। क्या आस्था की कोख से जन्मी स्वीकारोक्ति ही महामहिम कला की जननी हो सकती है?……इरा ने जया की ठोड़ी उठाकर उसे चूम लिया और प्यार से कहा, "भूख तो नहीं लगी, जया?"

"नहीं, ममी!"

इरा को याद थी एक दिव्य-मुख मनीषी की बात, जिसने कन्या-कुमारी के बलुए टीलों पर सूर्यास्त देखने की प्रतीक्षा में बैठी मित्र-मण्डली को सम्बोधित करते हुए कहा था, "स्वाधीनता के बाद हमारी राष्ट्रीय एकता की भावना बहुत पतली हो गई। आज कोई गांधी दीखता है न रवीन्द्रनाथ ठाकुर!" उस मनीषी ने एकाग्र भाव से बोलते हुए यह बात स्पष्ट की कि हम नई पीढ़ी के लोगों को धार्मिक पृष्ठभूमि से रहित करके अनास्था की खाई को जन्म दे रहे हैं। अनास्था की

यह खाई एक विशाल शून्यता की प्रतीक बनकर रहेगी।

जया एकाग्र भाव से खिड़की के बाहर का दृश्य देख रही थी। जहाँ दृश्य बहुत ही अछूता लगता, वह दोनों हाथों से तालियाँ बजाकर हर्षोद्रेक का परिचय देने लगती। साथ-साथ वह कहती चलती, "देखो ममी, देखो !"

इरा को याद आ रहा था कि कन्याकुमारी के बलुए टीले पर बैठे उस मनीषी ने कहा था, "ठीक वैसे ही जैसे हम अपने मन-प्राण के विचार अपनी मातृभाषा में व्यक्त करते हैं, हमारे बच्चों को अपने ही धर्म के माध्यम से अल्पावस्था में ही आध्यात्मिक पृष्ठभूमि प्राप्त कर लेनी चाहिए।" फिर इरा को ध्यान आया, उस मनीषी ने मानो अपने उस महान् विचार को स्वयं ही पतला करके कहा था, "मेरा मतलब है, अपने ही धर्म के माध्यम से अल्पावस्था में ही बालक आध्यात्मिक नहीं तो कम-से-कम नैतिक पृष्ठभूमि तो अवश्य प्राप्त कर सके, हमारी शिक्षा में यह व्यवस्था होनी चाहिए। हमारा देश अब स्वतन्त्र है। अब तो बल्कि इस ओर हमारा ध्यान अवश्य जाना चाहिए।" आगे चलकर उस मनीषी ने कहा था, "एक शिक्षाशास्त्री के नाते मेरा संकेत उस धर्म की ओर नहीं, जो संकीर्णतापूर्ण अन्धता उत्पन्न करता है; मेरा आग्रह तो उस धर्म के लिए है, जो व्यापक सहिष्णुता का प्रतीक हो। क्या हमें चरित्रवान् और दृढ़-संकल्प लोगों की जरूरत नहीं रही ? श्रद्धा और आस्था को खोकर हम जाने कहाँ-कहाँ भटक रहे हैं।"

खिड़की से बाहर रूप-रस-गन्धमय संसार के दृश्यपट पर जया की आँखें बराबर जमी हुई थीं। कितनी आस्थावान बच्ची है, यह सोचकर इरा मुग्धनयन उसकी ओर देखती रही।

जया से हटकर इरा की दृष्टि समाचारपत्र पर जम गई। एक प्रसंग उसकी दृष्टि में खुभकर रह गया। हिस्ट्री कांग्रेस के सभापति के भाषण का उल्लेख करते हुए किसी ने लिखा था :

"हिस्ट्री कांग्रेस के प्रधान ने नूह के जलप्लावन, जिसका वर्णन

हिब्रू और सुमेरियन पौराणिक गाथाओं तथा ब्राह्मणों द्वारा वर्णित मनु के जलप्लावन में आया है, का मनोरंजक विवरण पेश किया। वह बाढ़, जिससे भगवान् ने मत्स्य रूप धारण कर हम सबको बचाया, मानव-जाति की बहुमूल्य स्मृतियों में से एक है। मैं इस सवाल में दिलचस्पी नहीं रखता कि ऐसा हुआ या नहीं, और यदि हुआ तो किस प्रकार? परन्तु मैं तो मनु के स्थान पर होना पसन्द करता, जहाँ मेरे अतिरिक्त और सभी डूब जाते, और मतस्यावतार मेरी नौका उस जल-प्रलय से पार पहुँचा देते। फिर वह पवित्र मत्स्य रुकती, मैं नौका से उतरता और चारों ओर जल-ही-जल होता; पर फिर पानी घटता, भूमि दिखाई देती और चिड़ियाँ उड़ने लगतीं, पर मेरे सिवा वहाँ और कोई न होता। फिर मेरी यन्त्रणा और वेदना बढ़ जाती।

"कुछ हो, नूह तो मनु की अपेक्षा सुखी थे। उन्होंने अपनी नाव में ही जीवधारियों के नर और मादाओं को जोड़ रखा था; इस तरह उनके पास न केवल उनकी पत्नी बल्कि बातचीत करने के लिए साथी भी थे; पशुओं को खा जाने वाले सिंह; मछलियों को खाने वाले मगर। पर मनु तो अकेले थे। उन्हें पत्नी कैसे मिली, यह मैं नहीं समझ सकता। पत्नी पाने तक तो उन्होंने दुःख का ही अनुभव किया होगा।"

समाचार पत्र बन्द करके इरा अपने जीवन पर विचार करने लगी। पर नूह और मनु के जलप्लावन की कथा अब जैसे ध्यान से ओझल ही न हो सकती हो।......मनु तो अकेले थे, उन्हें पत्नी कैसे मिली?... वैसे ही जैसे शंख को इरा मिली!......पर शंख के जीवन में दोबारा जल-प्लावन आया, जब वह मुझे मेरे हाल पर छोड़कर भाग गया।... दस वर्ष पहले की वह घटना इरा की आँखों में तैर गई।

जया थैले से निकालकर बिस्कुट खा रही थी। "तुम खाओगी ममी?" उसने पूछ लिया। पर इरा ने इन्कार में सिर हिलाकर कहा, "खाओ मेरी बच्ची!"

इरा को लगा कि शंख की बात उस समय न मानकर उसने भूल की थी। शंख उसे छोड़कर चला आया, क्योंकि उसका कर्तव्य उसे बुला रहा था। बम्बई उसे पसन्द न थी। उसका कहना था कि बम्बई में कला का दूध-गाछ नहीं पनप सकता। मैंने लाख समझाया, उसने एक न सुनी। वह हमें छोड़कर चल दिया।

किसी ने कहा, "पाँच स्टेशन छोड़कर है वरकला।"

"ठीक है!" इरा ने मन-ही-मन कहा, "वरकला तो आज पहुँच-कर रहूँगी।"

इरा की कल्पना में अपना गाँव घूम गया—रेणुका। आगरा से मथुरा की ओर बारह मील, दाहिनी ओर मुड़ जाओ, यमुना के किनारे। वाह-वाह, पुराने सुन्दर वृक्ष, टूट-फूटे घाट, एक मन्दिर, एक टीला। सात पीढ़ियों से उनका परिवार रेणुका को अपने हाल पर छोड़कर बम्बई चला आया था। बचपन में एक बार माँ उसे रेणुका दिखाने ले गई थी, जैसे अब मैं जया को वरकला दिखाने ले जा रही हूँ।

"हम तुम्हारे पापा को साथ ले चलेंगे बम्बई, जया!" उसने मानों अपने विचार को प्रौढ़ता देते हुए कहा, "फिर हम रेणुका चलेंगे।"

रेणुका की कथा तो वह जया को पहले भी कई बार सुना चुकी थी। आज उसका सुनाना और भी आवश्यक हो गया।

"रेणुका में ही था कभी जमदग्नि ऋषि का आश्रम। ऋषि के साथ रहती थी ऋषि-पत्नी रेणुका। रणुका भी दूध-गाछ थी, जया, सुन रही हो न?"

उसने बिस्कुट खाते हुए सिर हिला दिया। उसका ध्यान बाहर की तरफ था।

"हाँ तो भगवान् परशुराम उसी दूध-गाछ का दूध पीकर बड़े हुए थे। कन्धे पर फरसा रखकर परशुराम दुष्ट राजाओं की जीवन-लीला समाप्त करने निकले थे। रेणुका से एक ही मील पर है वह जगह, जहाँ परशुराम ने सहस्रार्जुन को मार डाला था•••।"

"पर परशुराम ने अपनी माँ को क्यों मार डाला था, माँ ?" जया ने चंचल आँखों से कहा।

इरा ने ठण्डी सांस भरकर कहा, "इस कहानी से यह प्रसंग तो अब कैसे निकाला जा सकता है जया ? जमदग्नि किसी बात से नाराज हो गए थे। उन्होंने परशुराम को आज्ञा दी, अपनी माँ को मार डालो। सब भगवान् की लीला है। रेणुका पतिव्रता पत्नी थी। उसने पति की आज्ञा मानते हुए अपने पुत्र परशुराम के हाथों अपनी हत्या कराने से संकोच नहीं किया था। पिता का आज्ञाकारी पुत्र था परशुराम। पिता की आज्ञा कैसे टालता ? पिता ही सबसे ऊपर है बेटी !" कहते-कहते इरा रुक गई। अकस्मात उसने स्वयं को इस कहानी में डाल दिया। यदि पुत्र पाने की उसकी इच्छा पूरी हो जाती तो क्या वह यही पाठ उसे भी दे सकती थी ?

"पर पिता को इस बात के लिए राजी करने से चूका तो नहीं था परशुराम कि ऋषि फिर से अपनी पत्नी को जीवित कर दे।"

"तो रेणुका फिर जी उठी थी, माँ ?"

"हाँ, जया !"

जया की आँखों में आस्था और विश्वास की ज्योति थिरक रही थी।

"यह सब भूमि परशुराम क्षेत्र कहलाती है, जया !" इरा मुस्कराई, "वरकला, जहाँ हम जा रहे हैं, इसी परशुराम क्षेत्र में है।"

"अब और कितनी दूर है वरकला ?"

"अब ज्यादा दूर नहीं।"

इरा ने पूर्व असम में ब्रह्मपुत्र के तट पर स्थित परशुराम-कुण्ड की कथा छेड़ दी। "वहीं स्नान करके परशुराम ने अपने मन से दूध-गाछ की हत्या का पाप धो डाला था। पश्चिमी घाट के साथ-साथ खम्भात से लेकर कन्याकुमारी तक ऐसे कई स्थान हैं जिनके साथ परशुराम की कथा जुड़ी हुई है। पृथ्वी पर विजय पाकर इसे दान में दे डालना परशुराम का ही काम था। फिर वे कोंकण में रहे जिसे सागर ने उनके

लाभ के लिए दिया था। फिर उन्होंने अपना फरसा वरुण देवता के संकेत पर सागर में फेंका और वह कन्याकुमारी के समीप जाकर गिरा। जहाँ वे खड़े थे, वहाँ से लेकर कन्याकुमारी तक केरल की भूमि परशु-राम के फरसा फेंकने से ही निकल आई थी, जया!"

और जया को जैसे विश्वास नहीं हो रहा था। यह कैसी अनास्था है, यह सोचकर इरा चुप बैठी रही।

गाड़ी के पहिये दनदनाते हुए आगे-ही-आगे जा रहे थे। इरा ने जया की ठोड़ी प्यार से ऊपर उठाई, "अब अगला स्टेशन होगा वरकला।"

जया को जैसे विश्वास न हो रहा हो।

इरा सोच रही थी—दस वर्ष पूर्व जो व्यक्ति मुझे छोड़कर चला आया, जिसने कभी मेरी सुधि न ली, उससे मिलन होगा। क्या यह मंगल-मिलन होगा?

एक धचके के साथ गाड़ी वरकला स्टेशन पर रुक गई।

अठारह

मूर्तिकार दामोदरन के हाथ अब मूर्ति बनाते काँपने लगे थे। पर माँ-बेटे की मूर्ति में नूतन भाव-भंगिमा लाने की साध वैसी ही चली आ रही थी, जैसे वे इस यज्ञ-वेदी पर अन्तिम आहुति डालकर ही विदा होंगे।

मूर्तिकार की पत्नी अब बुढ़िया ही तो थी। माथे पर झुर्रियों का जाल, केशों में श्यामवर्ण आधे से भी कम—धौले बाल फैल रहे थे। शान्त-मन बुढ़िया दुकान पर भी आ जाती। खीझ-भरी लालसा थी तो यही कि बेटे ने विवाह नहीं किया, वंश-वेल आगे नहीं बढ़ी। कह-कहकर हार गई। कोई सुने ही नहीं तो क्या करे?

मूर्तिकार अब भी आँखें ऊपर चढ़ाकर बात करता था। देशमुख डाकबाबू उसका मित्र था। कई बार बदली हुई, अब फिर वरकला आ गया। अब तो यहीं से पेन्शन पायेगा। हर रोज़ कोई-न-कोई पुस्तक अथवा पत्रिका उठाये रहता है। कभी विवाह पर संगीतकार का मत सुनाता, "एक संगीत-गोष्ठी, जिसमें प्रेम बाँसुरी बजाता है, बच्चे ढोलक पर ताल देते हैं, पड़ोसी अपनी-अपनी नफीरी पर सुबह-शाम एक कर देते हैं, और दूल्हा अपनी सहस्र-तार सारंगी पर राग छेड़ने की प्रतिज्ञा में जीवन बिता देता है।" कभी विवाह पर अभिनेता का दृष्टिकोण उभारता, "शोक-हर्ष का नाटक, जिस पर देखने वाले तालियाँ बजाते हैं।" कभी वह नेपोलियन की यह सूक्ति हवा में उछालता, "इतिहास

क्या है ? मात्र एक नानी की कथा, जिसे सबने मान रखा है !" कभी वह कथा-शिल्पी ओ० हेनरी का मरते समय वाला बोल सुनाता, "बत्ती मत बुझाओ, मुझे अंधेरे में जाते डर लगता है ।" कभी किसी लोकोक्ति पर अटक जाता, "ईर्ष्या की मात्रा ही तो नारी के प्रेम की भी मात्रा है !" देशमुख से सुनी हुई ये सब बातें दामोदरन की विचारधारा को छू-छू जातीं, जब भी बुढ़िया पत्नी उस पर व्यंग्य कसती ।

आज दोपहर से ही बुढ़िया दुकान में चली आई थी । बोली, "देवी-देवताओं की मूर्तियाँ ही बिकती हैं, तो तुम यह माँ-बेटे की मूर्ति पर क्यों समय नष्ट किया करते हो ?"

"जिस काम की तुम्हें समझ नहीं, उसमें क्यों दखल देती हो ?" मूर्तिकार ने आँखें ऊपर चढ़ाकर कहा, "मूर्तिकला को भी तुमने नानी की कथा समझ लिया ?"

"बूढ़े हो गए, पर तुम मेरा सम्मान करना न सीख पाए ।"

"सम्मान ? अरे मैं तो अब तक दूल्हा बना सहस्र-तार सारंगी पर राग छेड़ रहा हूँ !"

"जाने की बेर समीप है । अभी तक दूल्हा बने बैठे हैं ?"

"अरे सुनो । जब मैं गाने लगूँ तो बत्ती बुझा देना । मुझे अँधेरे में जाते डर नहीं लगेगा ।"

"हे भगवान् ! बूढ़ा हो गया, बात करनी न आई । मैंने सोच लिया, दोपहर बाद नहीं रहा करूँगी । फिर देखूँगी, तुम मूर्ति लेने आई किसी स्त्री से कैसे चबा-चबाकर बातें करते हो ।"

"यह तुम्हारी ईर्ष्या कभी मौन तो होने से रही । बुढ़िया होकर भी पल-पल की पहरेदारी की इतनी चिन्ता ! हे भगवान् !"

"तुम नहीं मानोगे तो क्लेश नहीं मिटेगा ।"

"क्लेश तो बुरा है, रानी ! जिस घर में क्लेश रहे, चूल्हे से भागती है आग, घड़े से दौड़ता है पानी !"

"उपदेशक का धन्धा कब से आरम्भ कर दिया ?"

दामोदरन को हँसी आ गई। प्रेम-भरी दृष्टि से उसने बुढ़िया की ओर देखा। बोला, "परसों देशमुख सुना रहा था किसी लेखक का वचन—पति-पत्नी सम्बन्ध ऐसा विषय है जिस पर नारियाँ सभी एकमत हैं और पुरुष अनेक मत !"

बुढ़िया बोली, "तब तो स्पष्ट है, स्त्रियाँ समझदार हैं, पुरुष बुद्धू।"

मूर्तिकार बोला, "वह बात भी देशमुख ने मुझे बताई थी। कौन जाने यह मेरी अन्तिम मूर्ति हो—यह माँ-बेटे की मूर्ति। आयु-भर की यही तो मेरी कमाई है ! सोचा था, शंख लौट आया है तो मेरे काम में सहायक होगा। उसका छोटा भाई था, उसे भगवान् ने ले लिया। शंख को मेरी चिन्ता नहीं। उसके मन-प्राण तो मुत्तु बाबा के पोते पंचानन में बसते हैं। उसे न खाने की सुध है न पीने की। बुद्धिमान होता तो गुरुदेव की जगह संगीत-विद्यालय का आचार्य बना होता। उस पद पर आ विराजा कोई और। चिलाक्कोर की संगीतशाला को चला रहा है शंख, जिससे धेले की कमाई नहीं होती। जब तक मैं बैठा हूँ, घर में चूल्हा जल रहा है। मेरे पीछे क्या होगा ?"

बुढ़िया ने दूर से देखा, एक नील-वसना स्त्री बच्ची की अँगुली थामे चली आ रही है। स्त्री देखने में लम्बी थी। इकहरा शरीर, गौर वर्ण, बच्ची की आयु दस वर्ष के लगभग। गोल-चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें।

माँ-बेटी दुकान के सामने रुक गईं। स्त्री ने कहा, "मूर्तिकार की दुकान इतनी दूर होगी, यह नहीं सोचा था।"

बच्ची ने मूर्तिकार के हाथ वाली मूर्ति की ओर देखकर कहा, "मैं वही मूर्ति लूँगी, ममी !"

बुढ़िया ने पति के हाथ से मूर्ति लेकर बच्ची को दे दी, "अब तो प्रसन्न हो, बेटी ?"

स्त्री ने पूछा, "यहाँ बस एक ही मूर्तिकार है न ?"

"यहाँ बस मैं ही यह काम करता हूँ !" मूर्तिकार मुस्कराया।

स्त्री ने पहले मूर्तिकार के पैर छू लिये, फिर बुढ़िया के।

"हैं, हैं !" बुढ़िया पीछे हट गई, "यह क्या कर रही हो, बेटी ?"

"हमारे देश में बड़ों का सम्मान करने की यही प्रथा है।" स्त्री दृढ़-संकल्प रही, "मेरी बच्ची माँ-बेटे की मूर्ति पर लट्टू है, इसके लिए मुझे बम्बई से आना पड़ा।"

मूर्तिकार ने बुढ़िया की ओर देखकर कहा, "आगे को मुझे माँ-बेटे की मूर्ति बनाने से मना न करना। कितनी दूर से—बम्बई से ग्राहक आते हैं इसके लिए !" और फिर उसने स्त्री को सम्बोधित करते हुए कहा, "तुमने एक चिट्ठी लिख दी होती। यह मूर्ति मैं पार्सल कर देता।"

"नहीं, आपके दर्शन भी तो करने थे।"

और फिर बातों-बातों में स्त्री ने पूछा, "तुम्हारी कोई सन्तान तो होगी ?"

बुढ़िया बोली, "मेरा बेटा है शंख। वह सागर-किनारे घूमने गया है।"

बुढ़िया के आग्रह से स्त्री ने गगन चौक में स्थित गगन होटल से अपना सामान मंगवा लिया। बुढ़िया ने उसे एक-दो दिन अपने घर पर रहने के लिए राज़ी कर लिया।

बुढ़िया ने लाख कहा कि बेटी, तुम अतिथि हो, भोजन मैं बनाऊँगी, पर स्त्री ने एक न सुनी।

स्त्री की पीठ आँगन की ओर थी। वह भोजन बनाने में व्यस्त थी।

बुढ़िया कहे जा रही थी, "तुम क्यों कष्ट करती हो बेटी, तुम तो अतिथि हो ?"

इतने में शंख आ गया। माँ की आवाज़ उसके कान में पड़ी। उसने पास आकर कहा, "कौन अतिथि आ गए, माँ ?"

और उसकी दृष्टि इरा पर पड़ी। वह चौंककर बोला, "इरा, तुम कैसे ?"

उन्नीस

वरकला का सागर-तट हँस पड़ा। दस वर्ष पूर्व बम्बई का जुहू-तट मुग्ध-नयन, मोह-मदिर मदनोत्सव उषा-सा मुस्करा दिया था। तब कोई तीसरी आत्मा न थी पति-पत्नी के बीच। अब तो जया थी—अलिखित इतिहास-गाथा-सी, मनियार सजाती, घुँघरू बाँधती, मुड़-मुड़ जाती, प्रवाहमयी, छकाछक ठुमरी-सी।

जया गा रही थी :

> **अम्मायुम् एनि किल्ला**
> **अच्छनुम् एनि किल्ला**
> **उण्मानुम् उडुक्कानुम् वलियुमिल्ला**

शंख को यह गीत अटपटा-सा लगा। जया तो अनाथ बालिका न थी। गीत में उसकी घोषणा—'न माता, न पिता; न अन्न है, न वस्त्र!' मानो अर्थ की लय में ठीक नहीं बैठ रही थी। पर यह थी शंख के सर्वप्रिय गीत की उठान, जिसे सागर-संगीत की लहरिया धुन में गाकर उसने त्रिवांकुर के एक संगीत-सम्मेलन में ख्याति प्राप्त की थी। जया एक नई मुरकी के साथ लय में स्वर पिरो रही थी। एकाएक शंख बोल उठा, "अरे इरा, इस बिटिया ने तो मेरे संगीत की आत्मा को पा लिया—इतनी जल्दी पा लिया। पंचानन पर तो मैं व्यर्थ ही माथा-पच्ची करता रहा। ऐसी मुरकी लेकर वह कभी न गा सका।"

इरा का मुख खिल उठा।

सागर नाच रहा था। शरद् पूनो का चन्दा सिर पर, सामने था गाता-नाचता सागर। आनन्द-विभोर मन-प्राण—यह था दस वर्ष के बिछुड़े पति-पत्नी का मंगल मिलन। चुलबुलिया, मुखर-मन बालिका गन्ध-मदिर अठखेलियों के चौक पूर रही थी, रंग-रंग की रंगोली सजा रही थी।

पति-पत्नी में बहुत बातें हुईं। जो मोहिनी माया दस वर्ष पीछे छूट गई थी, फिर उनकी मुट्ठी में थी।

शंख को यह विचार बदलना पड़ा कि अभिनेत्री इरा अहम् की मूर्ति बनी बम्बई से ही चिपकी रहेगी। वह फिर से इरा का आराध्य देव बन गया था।

जया को पाकर वह धन्य हो उठा। बम्बई में उसे इतनी छूट कहाँ रहती होगी! तीन दिन हुए उसे वरकला आये। वरकला का यह चमत्कार। नाच-नाच उठती है जया। काजू-बन उसे प्रिय है। गगन चौक से वह हिलना नहीं चाहती। कभी कहती है, नाव में बैठकर सुरंग से गुजरती नहर देखूँगी। एक बार हो भी आई है। मुत्तु बाबा उसे नाव में बिठाकर बीच सागर में ले गए और जाल में फँसती मछलियाँ दिखा लाए। संगीत-विद्यालय में गुरुमाता ने गुरुदेव के पुराने चित्र दिखाये। संगीत-विद्यालय के नये आचार्य ने उसके कण्ठ-स्वर की प्रशंसा की। प्रिंसिपल नम्पूतिरिप्पाड नीलू की बातें पूछते रहे; वह मज़े से बताती चली गई। गुरुमाता ने गोबिन्दन का हाल पूछा। जया ने मानो अलबम खोलकर गोबिन्दन का एक-एक चित्र दिखा दिया। देशमुख डाकबाबू कहते हैं, तुम बम्बई लौट जाओ, जया को छोड़ जाओ। तीन दिन का चमत्कार। वरकला के साथ जैसे जया की पहचान युग-युग से चली आ रही हो।

"हम पापा का गीत सुनेंगे।" जया ने हाँक लगाई।

"सुनायेंगे, बेटा!" शंख मुस्कराया।

इरा के मन में भी यही बात थी। उसकी इच्छा थी, शंख गाये।

पर जया चंचल स्वर में कह उठी, "ममी, ममी, दीया बरकखो !"

शंख की दृष्टि जया के मुख पर पड़ी। शरद् पूनो में जया का रूप खिल उठा। वह बोला, 'अकखो-मकखो, दीया बरकखो, जो मेरी जया को तक्के, उसकी फूटें दोनों अक्खो !" शंख ने पूरा अभिनय किया। किसी काल्पनिक दीये पर हाथ ले जाकर वह जया के मुख पर हाथ फेरता रहा। जया हँस पड़ी। इरा मानो रूप-गन्ध-स्पर्श की मूर्ति-सी अपलक नयन पति की ओर देखती रही। शंख को लगा, इस अप्सरा-सी किन्नरी की मुख-श्री वैसी-की-वैसी बची रह गई है, जैसी वह दस वर्ष पूर्व छोड़ कर आया था। कुछ भी अन्तर नहीं आया। अनन्त-यौवना की लावण्य-मयी देह-लता पहले से कहीं अधिक कमनीय प्रतीत हुई, भले ही अब वह माँ बन गई थी। वह सोच-सोचकर बोला, "गेटे ने जाने किस जादू-भरी लेखनी से लिखा था···।"

इरा समझ गई, "बस, बस। रहने दो।"

"अरे तुम शकुन्तला से कम तो नहीं, इरा !" और शंख ने गेटे के शब्द दोहरा दिए, "यदि तुम युवावस्था के फूल और प्रौढ़ावस्था के फल एक जगह खोजना चाहो, और यदि तुम स्वर्ग और मर्त्यलोक का एक साथ दर्शन-लाभ चाहो, तो मैं एक ही शब्द में उत्तर दूँगा,—वह है शकुन्तला, और मैंने सब कह दिया।"

"यह तो महाकवि की प्रतिभामयी लेखनी को प्रणाम है !" इरा बात टाल गई।

माता-पिता की बातें जया की समझ में नहीं आईं। बोली, "अकखो मकखो, दीया बरकखो, जो मेरी ममी को तक्के···" और इरा ने उसका मुँह बन्द कर दिया।

मुत्तु बाबा, देशमुख और प्रिंसिपल नम्पूतिरिप्पाड आ रहे थे। आगे-आगे था पंचानन।

"लो वे आ गए।" शंख खुशी से उछल पड़ा, "अब कौमुदी महोत्सव की याद उभरेगी।"

मुत्तु बाबा पास आकर हँस पड़े, "बड़ी मुश्किल से पकड़ पाया। देशमुख बाबू तो आते ही नहीं थे। नम्पूतिरिप्पाड पहले राजी हुए। पंचानन तो मेरा पोता है, और आपका शिष्य। वह कैसे इन्कार करता? अब जमाइये गोष्ठी। वरकला का गाना तो रोज ही सुनते हैं, बम्बई का गाना होना चाहिए।"

"जरूर!" इरा मुस्कराई।

शंख बोला, "क्यों देशमुख बाबू, आप नहीं आना चाहते थे?"

"आते कैसे नहीं थे?" नम्पूतिरिप्पाड कह उठे, "चिट्ठियों पर मोहरें लगाकर ही चले। इनकी मोहर की स्याही बहुत पक्की है। इनकी बातों पर भी तो डाकघर की मोहर लगी रहती है। क्या मजाल, यह मोहर उतर जाय! पक्की स्याही का एक प्रमाण यह भी है।"

इरा को लगा, ये लोग बड़े वाचाल हैं। जैसे फिल्म के डायलॉग लिखे जाते हैं सोच-सोचकर, वैसे ये लोग कैसे बोलेंगे?

वाणी को वश में रखना क्या हर समय सम्भव है? हमारा कोई-न-कोई वाक्य तो सीप का मोती बन सके। सीप में कहाँ से आती है चमक? मोती को आबदार कौन बनाता है? उमर खैय्याम की यह सूक्ति इरा के मन के टेप रिकार्डर पर बज उठी—'तुम कहते हो, हर सुबह हजारों गुलाब के पुष्पों की भेंट लाती है, पर सोचो तो, कल के गुलाब क्या हुए?' वाणी में भी गुलाब खिलने चाहिएँ, यह सोचकर इरा मन-ही-मन मुस्करा दी।

"प्रिंसिपल भी तो प्रिंसिपली नहीं छोड़ते। ऐसे बात करेंगे जैसे हम सब कालेज के विद्यार्थी हों। एक ही पुण्य कार्य किया कि गुरुदेव की आत्मकथा छाप दी। बाकी रहे मुत्तु बाबा। वह तो बोल-बुलक्कड़ हैं। प्रिंसिपल जो रिकार्ड भर देते हैं, बजने लगता है।"

"आज तो टेप रिकार्डर की बात करो!" प्रिंसिपल महोदय ने ज्ञान बघारा, "मशीन का युग है। इरा देवी टेप रिकार्डर लिये बैठी हैं। यह ड्राई बैटरी से चलने वाला टेप रिकार्डर है। ग्रामोफोन रिकार्ड बनाने

के लिए तो बड़ी मशीनरी चाहिए। टेप रिकार्डर में टेप पर आवाज भरते जाओ। इसीमें मशीन लगी है। टेप बजाया भी जा सकता है उस पर। उसी टेप को चाहो तो इरेज़ करके उसी पर दूसरी आवाज भर लो।"

"मैं इरेज़ नहीं करूँगी।" इरा बोली, "मैं अपने साथ बहुत से टेप लाई हूँ।"

"तब तो और भी ठीक है।"

"प्रिंसिपल की बात क्या डाकघर की मोहर से कम पक्की है?" देशमुख हंस पड़ा।

शंख ने अभिवादन के स्वर में कहा, "यह हमारा अहोभाग्य कि आप लोग पधारे। बैठिये, स्थान ग्रहण कीजिए।"

मुत्तु बाबा बोले, "बेटा पंचानन, आज सबको प्रसन्न कर दो अपने संगीत से। एक बार तो गुरुदेव रुद्रपदम् का स्वर गूँज उठे। दिखा दो कि गुरुदेव की आत्मा का तुम्हारी देह में वास है। मशीन में भरा जायगा तुम्हारा संगीत, जिसे सारा संसार सुनेगा।" और फिर इरा की ओर देखकर बोले, "आज सवेरे पापनाशा पर स्नान करके तुम्हारी दुबिधा जाती रही होगी, बेटी!"

दुबिधा पर विजय पाना परम आवश्यक है। इरा ने एक बार एक ज्योतिषी को हाथ दिखाया था। उसे याद आया, उसने भी यही बताया था कि दुबिधा ही उसका रोग है। दुबिधा क्या माँ के दूध से आती है? हमारे स्वभाव-निर्माण में माँ के दूध का क्या स्थान है? माँ जैसा प्यार और कहाँ मिल सकता है? जिसे माँ का प्यार नहीं मिला, उसके मन की वह रिक्तता कहाँ जाकर भरेगी? उसकी बातों में गुलाब नहीं खिल सकते। इरा सोच रही थी, शंख बम्बई चला चले, तो मेरी रिक्तता दूर हो जाय। फिर दुविधा भी उतनी नहीं रहेगी। मुस्कान बनकर माँ का प्यार उमड़ आया। उसने ठोडी दबाकर जया की आँखों में झाँककर देखा। वह मुत्तु बाबा की गोद में बैठी अठखेलियाँ करती रही।

इरा का ध्यान बम्बई की ओर गया। मन का टेप रिकार्डर बज रहा था—हमें इरा की एक्टिंग प्यारी लगती है !···इरा फिल्मों की चाँद-चाँदनी है !···इरा, तुम जादू हो, तुम टोना हो ! तुम सपनों की रानी हो !···तुम हँसती हो तो खिल-खिल जाते हैं गुलाब के फूल !··· यह कैसा वक्त आया, डार्लिंग इरा ! हमारी कड़वी आलोचना की शीशी तुम तक पहुँच नहीं पाती !···तुम्हें हम प्यार करते हैं, इरा ! तुम्हारी फिल्म आने पर, शहर-भर में तुम्हारा नाम जपते हैं। तुम्हारा प्रापेगेण्डा करते हम डुग्गी बजाते हैं !···

प्रिंसिपल बोले, "जिस जलवायु में मनुष्य का जन्म होता है, वही जलवायु उसे रास आ सकती है—विशेष रूप से तब, जब बुढ़ापा सिर पर आ पहुँचे।"

देशमुख ने अपनी ही हाँकी, "जया का जन्म तो हमारी बम्बई में हुआ। जया वहीं रहेगी जहाँ इरा देवी रहेंगी। दूध-गाछ को छोड़कर जया वरकला में रह जाय, इसकी तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकता।"

"जया से पूछो न !" मुत्तु बाबा कह उठे, "पूछो वह क्या कहती है। क्यों जया बिटिया, तुम्हें पापा पसन्द हैं या मम्मी ?

"ममी !" जया ने हँसकर कहा। और सब हँस पड़े। पर प्रिंसिपल गम्भीर मुद्रा में बोले, "एक बात तो सोलह आने सत्य है। मनुष्य का जन्म जिस ममता से होता है, आयु-भर मनुष्य उसी गोद के लिए छटपटाता रहा है। संसार का बहुत सा साहित्य इसका साक्षी है। कला में भी इसके प्रमाण मिलेंगे। जिस दूध-गाछ का दूध पीकर मनुष्य फलता-फूलता है, उसी दूध-गाछ की छाया में फिर से आ बैठने के लिए मनुष्य आयु-भर लालायित रहता है। उसकी इस साध से अनेक कथाएँ उपजीं। इन कथाओं में से कुछ, जिनमें बौद्ध साहित्य की जातक कथाएँ भी आती हैं, मूर्तिकारों की छैनियों द्वारा शिलाओं पर अंकित की गईं। उन कथाओं में से एक का चमत्कारपूर्ण चित्र मुझे पिछले दिनों देखने को मिला। कुछ न पूछिए। दूध-गाछ की इतनी सुन्दर उपलब्धि

अन्यत्र नहीं मिलेगी।"

मुत्तु बाबा ने प्रसंग बदलकर कहा, "नीलू और गोबिन्दन तो हाल ही में यहाँ भी आये थे। उनकी जोड़ी ठीक रही। इसमें आप क्या कहते हैं?"

इरा के मन का टेप रिकार्डर बज उठा—हाँ, हाँ, यही तो लीक है। विवाह करो, माँ बनो! माँ बनने से बढ़कर कोई पुण्य नहीं, नारी लाख करे अभिनय! असल में नारी माँ है, माँ नारी है! माँ ही नारी है, यही लीक है। दुर्दिन हो, चाहे सुदिन, नारी को माँ बनना होगा!...

"यह सब होगा, ठीक ही होगा!" देशमुख ने मानो डाकघर की मोहर लगा दी।

जया मुत्तु बाबा की गोद में बैठी उनके घुंघराले बालों में हाथ से कंघी कर रही थी। प्रिंसिपल बोले, "जया का वरकला में जी लग गया, यह चमत्कार कम नहीं।"

इरा अपलक भंगिमा से शरद् पूनो के चन्दा की ओर देख रही थी। बोली, "आज को जागरी की रात है। घर-घर, द्वार-द्वार आती हैं लक्ष्मी आज रात। पूछती हैं—कौन जाग रहा है?—को जागरी?"

देशमुख बोला, "संस्कृत 'को जागर्ति?' से बिगड़कर बना 'को-जागरी?'—आश्विन पूर्णिमा 'को जागरी' व्रत के लिए प्रसिद्ध है। खीर के पतीले का ढकना उठाकर रख देना चाहिए, जिससे शरद् पूनो के चाँद की किरणें खीर में अमृत घोल सकें।"

घी का दीप जलाकर इरा ने लक्ष्मी-पूजन किया। पछवा ने दीप बुझा दिया। चन्दा को खीर का भोग लगाया गया। फिर दिन-भर का व्रत खोलते हुए इरा सबके साथ प्रीति-भोज में सम्मिलित हुई। खीर का स्वाद सबने लिया, पर इसका आधे से अधिक भाग चन्दा की अमृतमयी किरणें पड़ने के लिए छोड़ दिया गया। देशमुख देर तक समझाता रहा कि शरद् पूनों के चन्दा की किरणों वाली खीर खाने से बड़े-

बड़े रोग कट जाते हैं।

मुत्तु बाबा बोले, "पंचानन बेटा, गुरुदेव ने जो सिखाया वह आज के लिए ही था। तुम्हारा संगीत मशीन में भरा जायगा, यह ध्यान रखना।"

आलाप लेकर पंचानन ने गाना आरम्भ कर दिया। टेप रिकार्डर लगाकर इरा अनमनी-सी बैठी रही।

पंचानन का संगीत समाप्त हुआ, तो इरा बोली, "पहला टेप इरेज़ भी किया जा सकता है। प्रिंसिपल महोदय बता ही चुके हैं. पहला संगीत इरेज़ करके दूसरा संगीत उसी टेप पर भर सकते हैं। पर मैं टेप की बचत नहीं करूँगी, मैं बहुत से टेप साथ लाई हूँ।"

"मैं पापा का संगीत सुनूँगी!" जया ने टेर लगाई।

प्रिंसिपल बोले, "मैं कहता था न, गुरुदेव की आत्मा पंचानन में नहीं आ पाई।"

"कैसे नहीं आ पाई?" मुत्तु बाबा झुँझलाकर बोले, "आप बच्चे को चिढ़ाया न करें। पंचानन को भी आप अपना ही बेटा समझें।"

पंचानन कुछ न बोला। वह समझ गया, आज उसका संगीत जमा नहीं। प्रिंसिपल बोले, "अगला टेप लगाओ, इरा!"

देशमुख ने शरद् पूनो के चन्दा की ओर अपलक देखते हुए कहा, "खीर में अमृत का बास होगा, और संगीत की मिठास भी तो उसमें जानी ही चाहिए।" सागर की लहरों ने भी जैसे देशमुख की बात दोहरा दी। सागर की लहरें मानो शरद् पूनो के चन्दा को छू लेने की साध लिये गज-गज ऊँची उछल रही थीं। लहर-पर-लहर सवार हो रही थी, जैसे खेल में एक बालक घोड़ी बनकर झुक जाता है और दूसरा बालक बिना पलान डाले उस पर चढ़ जाता है।

इरा चाहती थी कि शंखअरन का संगीत आरम्भ हो, जिससे उसकी ऊब दूर हो।

शंख बोला, "आप लोग वरकला का संगीत सुनते ऊब गए। आज

हम बम्बई का संगीत सुनेंगे। क्यों इरा, तुम वह टेप भी तो लाई हो न, जो हमारे विवाह पर भरा गया था ?"

"अवश्य !" इरा मुस्कराई, और शीघ्र ही उसने वह टेप निकाल-कर चढ़ा दिया।

इरा ने इसे विवाह से अगली रात बम्बई में जुहू के सागर-तट पर भरा था। पार्श्वभूमि में सागर की लहरें आरकेस्ट्रा बजा रही थीं।

यह शंख का सबसे प्रिय गीत था, यद्यपि वह उसे भुला चुका था।

शरद् पूनो की इस संगीत-गोष्ठी के श्रोता यह न समझ सके कि यह शंख का गीत हो सकता है। इरा ने वस्तुस्थिति स्पष्ट करते हुए कहा, "यह है बम्बई का संगीत। और बम्बई के संगीताचार्य हैं आपके शंख-धरन।"

प्रिंसिपल ने हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कहा, "जौहर की परख और शोभा जौहरियों में ही होती है। हमारा शंख अनमोल हीरा है !"

देशमुख बोला, "हम शंखधरन और उसकी कला की पूजा करते हैं। बम्बई तो पीछे रह गई—बहुत पीछे। आप यहाँ वरकला में सागर-तट पर बैठकर इनका संगीत सुनिए और देखिए, शंखधरन कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचा।"

देशमुख ने शरद् पूनो के चन्दा की तरफ हाथ उठाकर कहा, "खीर में तुम्हारे अमृत के साथ-साथ संगीत की मिठास कैसे नहीं घुल सकेगी, चन्दा मामा ?"

शंख ने व्यंग्य की हँसी हँसते हुए कहा, "इरा, तुम अपना टेप-रिकार्ड लगा लो। मेरे संगीत की मिठास खीर में तो क्या जायगी, टेप रिकार्ड पर जरूर जा सकती है।"

शंख गाने लगा। लगता था, उसने सागर-संगीत की थाह पा ली। अपलक नयन इरा यह संगीत सुनती रही। यह संगीत निश्चय ही बम्बई वाले संगीत से भिन्न था। इसका जन्म आस्था से हुआ था। कला की स्वीकारोक्ति में दूध-गाछ झूम उठा। यह बम्बई वाले शंखधरन के संगीत

से आगे था, उसी अर्थ में, जिसमें मूर्तिकार दामोदरन की माँ-बेटे की हाल की बनाई मूर्ति इस शैली की, इसी भाव को व्यक्त करने वाली पहली सभी मूर्तियों से आगे थी।

इरा को बम्बई का स्मरण हो आया, जहाँ लोग शंखधरन को आँखों पर उठा लेंगे। उसकी ख्याति संसार-भर में फैलेगी। गुरुदेव की आत्म-कथा वाली फिल्म पर देश-विदेश की कितनी ही संस्थाओं की ओर से मैडल और प्रमाण-पत्र मिल चुके थे, भले ही देश में शिक्षा का स्तर नीचा होने के कारण देश के सिनेमा-घरों में वह उतनी लोकप्रिय नहीं हो पाई थी। यह हालत बदलेगी, बदलकर रहेगी। उसे लगा, वह शंख-धरन को बम्बई चलने के लिए राजी कर लेगी।···

संगीत बन्द हुआ, तो प्रिंसिपल ने कहा, "शंख, तुम बम्बई में ही रहे होते, तो तुम्हारा संगीत इससे भी कहीं ऊपर पहुँचता। क्यों इरा देवी, मैंने क्या ठीक बात नहीं कही ?"

इरा चुप थी।

देशमुख ने कहा, "समुद्र बम्बई में भी है, पर वरकला के सागर का राग और ही है। और इसीसे वास्तविक संगीत सीखा जा सकता है। हमारे संगीताचार्य बम्बई नहीं जायँगे, यह आप निश्चय रखिए। वे आप लोगों की चाल समझ गए हैं।"

जया सो गई थी। शरद् पूनो का चन्दा मुस्करा रहा था। सागर हँस रहा था। सागर की लहरें मुक्तहास किन्नरियों-सी छकाछक ठुमरी अलाप रही थीं।

सब चुप थे। इरा ने सबकी ओर देखा। शंख की आँखों में उसे कोई भंगिमा दिखाई न दी, जो उसे यह आश्वासन दे सकती हो कि वह बम्बई चलने को राजी हो सकता है।

मुत्तु बाबा बोले, "गोविन्दन को भी झक मारकर वरकला में आना पड़ेगा। कब तक बम्बई उसे झकझोरती रहेगी ! नीलू भी आयेगी। कब तक नीलू बम्बई की लड़कियों को कथकलि और भरतनाटयम्

सिखाती रहेगी ? हमारी तरफ से दोनों को समझाना इरादेवी ! दोनों मिलकर कोई रास्ता पा लें ! प्रिंसिपल बाबू कोई विरोध नहीं करेंगे ! क्यों प्रिंसिपल बाबू ?"

सब चुप हो गए।

लहरों के जयघोष पर किसी जल-पक्षी का स्वर गूँज उठा।

देशमुख बोला, "लगता है इस जल-चिड़िया ने भी को जागरी व्रत रखा है। वह भी जाग रही है, लक्ष्मी की प्रतीक्षा में, जो उसके पास आकर भी अपना प्रश्न दोहरायेगी—को जागरी ?"

इरा का मन ये बातें सुनते-सुनते एकदम ऊब गया था। उसने शंख की ओर देखा। उसके मुख पर किसी प्रकार के समझौते का आभास नहीं हो पाया। उसने टेप रिकार्डर बन्द कर लिया था।

टेप रिकार्डर उठाये वह खड़ी हो गई।

जया सो रही थी।

"तो मैं जाती हूँ ! तुम्हारी जया को तुम्हारे पास छोड़े जा रही हूँ !"

इरा काजू-बन की ओर हो ली।

शंखधरन पहले कुछ न बोला। जब इरा लम्बी डग भरने लगी, तो उसने पीछे से हाँक लगाई, "इरा, तुम लौट आओ !"

इरा ने दोबारा पीछे मुड़कर कहा, "यह लो वह चिट्ठी, जो तुम्हारे मित्रों ने दी थी। इच्छा हो तो बम्बई आ जाना !"

और वह चल दी। शंख को जैसे काठ मार गया।

तीस

इरा काजू-बन से होती वरकला रेलवे स्टेशन की ओर जा रही थी। हाथ में था टेप रिकार्डर। को जागरी की रात। शरद् पूनो का चन्दा सिर पर, पीछे से सागर-संगीत की थाप।

सबकी मुक्ति होती है, नारी की भी। कर्म-बन्धन से छुटकारे का नाम तो मुक्ति नहीं। अनुचित कर्म-बन्धन से छुटकारा मिल जाय। उचित कर्म में संलग्न हो जायें, यही मुक्ति है। अब मैं मुक्त हूँ। मैं हूँ अभिनेत्री! व्यर्थ ही मैंने माँ बनने की चेष्टा की। मुझे उन कोटि-कोटि प्रशंसकों का ध्यान रखना होगा जो मेरी एक-एक अदा पर मन-प्राण न्योछावर करने को उत्सुक रहते हैं। बम्बई से छुट्टी लेकर वरकला में आ बैठना तो कला का अनर्थ होता। मेरा अभिनय तो चलना ही चाहिए। जया का दायित्व उस पर, जिसने उसे इस संसार में आने का बुलावा दिया। अब मैं जया की चिन्ता से मुक्त हूँ। जैसी पहले थी, जया के जन्म से पहले, वैसी ही हूँ। न कम न ज्यादा। मैं अभिनेत्री इरा हूँ—वैभव-विलासिनी बम्बई की अभिनेत्री, माँ की बेटी। माँ मुझे पाकर प्रसन्न होगी। मेरी कला छीजने न पाये, माँ को इसकी चिन्ता रहती है।

'पहले के विश्वास बाद के विश्वासों के लिए जगह छोड़ने को बाध्य होते हैं!' किसी की यह सूक्ति इस समय उसके पैरों की बेड़ी नहीं बन सकती थी। इस विचार को वह अपने मन से उसी प्रकार 'इरेज़'

कर सकती थी, जैसे 'टेप' पर 'रिकार्ड' किये हुए स्वर को 'इरेज़' करते हुए उस पर दूसरा स्वर भरा जा सकता है। इस समय तो यह विचार उसके मन के 'टेप रिकार्डर' पर 'रिकार्ड हो रहा था कि कोई भी व्यक्ति संसार को ठीक उसी रूप में नहीं देखता जिस रूप में दूसरा व्यक्ति देखता है। जो सिद्धान्त सर्वमान्य है, उसके सम्बन्ध में भी तो विभिन्न प्रकृति के लोग विभिन्न निष्कर्षों पर पहुँचते आये हैं, युग-युग से ऐसा ही होता आया है, ऐसा ही होता रहेगा।

चलते-चलते चाँदनी रात में उसकी दृष्टि मानो अपनी छाया पर टिक-टिक जाती। उसे ध्यान आया, आज की रात तो को जागरी की रात है। लक्ष्मी घर-घर, द्वार-द्वार आकर पूछेंगी—को जागरी? जो अभागा सो रहा होगा, उसके घर में लक्ष्मी का प्रवेश नहीं होगा। उसे खीर के पतीले का ध्यान आया। उसमें चन्दा की किरणें बराबर अमृत घोल रही होंगी। लक्ष्मी-पूजन के बाद प्रीति-भोज में वह देर तक नारियल का टुकड़ा चबाती रही थी, फलाहार किया था। घी का दीप जलाकर रखा था। गाय का घी डाला था दीप में!

को जागरी व्रत की कथा तो जैसे उसके मन के टेप-रिकार्डर पर बार-बार 'इरेज़' हुई, और बार-बार रिकार्ड होती रही। साधारण-सी कथा थी। वलित ब्राह्मण की कर्कशा पत्नी। दुखी होकर ब्राह्मण का घर से चल पड़ना। यह प्रतिज्ञा—जब तक लक्ष्मी का दर्शन मुझे प्राप्त नहीं होगा, अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। जंगल में आश्विन पूर्णिमा। एक नाग-कन्या का आगमन। लक्ष्मी-पूजन के बाद नागकन्या द्वारा वलित को जूआ खेलने का निमन्त्रण। वलित का इन्कार। अन्त में वलित की स्वीकृति। जूए में वलित की हार। लक्ष्मीनारायण का लक्ष्मी से कहना—तुम्हारी प्रजा के कारण ही इस बेचारे ब्राह्मण की यह दशा हुई, इस पर अपना वरदहस्त उठाओ! लक्ष्मी के आशीर्वाद से वलित को कामदेव-सदृश सुन्दर रूप की उपलब्धि। नागकन्या का वलित पर मुग्ध हो जाना। नागकन्या का दोबारा जूआ खेलने का आमन्त्रण और

यह शर्त कि "तुम जीत गए तो मेरे पति हो जाना, मैं जीत जाऊँ, जो चाहूँगी तुम्हारे साथ करूँगी।" वलित की जीत। नागकन्या वलित का गन्धर्व विवाह। नागकन्या का अपार धन-राशि लेकर वलित के साथ उसके घर पर आगमन। वलित की कर्कशा स्त्री की प्रसन्नता ......इस मनःस्थिति में इरा पूछना चाहती थी—कर्कशा पत्नी को सौतिया डाह कैसे नहीं हुआ होगा ?

चलते-चलते जैसे टेप-रिकार्ड बज उठा—'एक ही व्यक्ति सदा एक ही विचार पर जमा नहीं रह सकता !' वह जल्दी-जल्दी पग उठाने लगी। उसकी छाया उसके साथ-साथ चल रही थी। काजू के पेड़ों पर शरद्-पूनो के चन्दा की किरणें अमृत बरसा रही थीं। इन्हीं पेड़ों के काजू बम्बई पहुँचते हैं, उसने सोचा, वहाँ काजू डालडा में तलकर नमकीन बनाकर परोसे जाते हैं ग्राहकों के सामने !...फिर जैसे टेप-रिकार्डर बज उठा—'एक आदमी जो कुछ सोचता है और कहता है, उसे प्रत्येक परीक्षा में उत्तीर्ण होना ही होगा, यह कुछ आवश्यक नहीं है—बशर्ते वह अपने और दूसरों के प्रति भी ईमानदार रहे !' यह विचार महान् जर्मन-मनीषी गेटे का था। यह भी उसे स्मरण था। गेटे की लेखनी उसे सदा प्रिय रही थी।

चलते-चलते मानो वह गेटे से पूछ रही हो मन-ही-मन—मैं जया को पीछे छोड़ आई, मैंने अच्छा किया न ?...और जैसे गेटे बोल उठा—तुम अपने प्रति ईमानदार हो तो !...अपने प्रति ईमानदार रहने के लिए ही तो मैंने ऐसा किया ! क्यों विचारक प्रवर ? बोलो, क्या कहते हो ?...

उसे ध्यान आया, बम्बई में उसने जया से पूछा था—अगर तुमसे कोई कहे कि तुम ममी के साथ रहो या डैडी के साथ, तो तुम किसको चुनोगी ?...उसे याद था, मन के टेप पर जैसे जया का बोल बज उठा—'ममी को !' यही जया का उत्तर था। उसने तो मुझे चुना था। मैं उसे छोड़ आई। माँ-बेटे की जिस मूर्ति को खरीदने का

मैंने तीन दिन पहले बहाना किया था, अब तो जया वैसी ढेर-की-ढेर मूर्तियों से खेलेगी—माँ-बेटे की मूर्ति।···पर मुझे न पाकर क्या जया माँ की मूर्ति से सन्तुष्ट हो पायेगी ?

पीछे से आते सागर-संगीत की हलकी-सी थाप अब भी सुनाई दे रही थी।

चलते-चलते उसने सोचा, दूध-गाछ तो केवल मैं ही नहीं हूँ। कलाकार भी दूध-गाछ है।···पर वह तो पंचाचन में ही गुरुदेव की आत्मा का पूजन-अर्चन करने में लगा है।

अब वह गगन चौक में पहुँच गई थी। रेस्तराँ अभी बन्द नहीं हुए थे। दुकानों को पीछे छोड़ वह स्टेशन की ओर बढ़ती गई।

'टेप रिकार्डर' उसके हाथ में था। वह लम्बे-लम्बे डग भर रही थी। मन के 'टेप रिकार्ड' से आवज़ें आने लगीं—ऊर्ध्वगामिनी इरा। बम्बई की प्रसिद्ध अभिनेत्री। वाक्‌मधुर फिल्म-स्टार! फिल्मों की रानी। रूप की अग्निशिखा। क्षिप्र-चरण। जाज्वल्यमान रूपसी। जगमग-जगमग कल्याणी। कान्ति। ब्यूटी स्टार। आलोकिनी। सुजाता। प्रियम्वदा। स्वनामधन्या!···वही इरा अब बम्बई की रूप-रस-गन्ध स्पर्श-स्वर की मायाभूमि की ओर जा रही थी।

इक्कीस

"प्रिय शंख,

आपको यह सुनकर खुशी होगी कि हम लोगों ने मिलकर, सहकारिता के आदर्श को अपनाकर एक फ़िल्म बनाने का फ़ैसला किया है।

फ़िल्म का नाम होगा—मछली-जाल। इसमें बरसोवा के मछुओं का जीवन रहेगा। आज हमें यह सोचकर अफ़सोस होता है कि 'गुरुदेव' जैसी फ़िल्म का संगीत-निर्देशक बम्बई छोड़कर घर जा बैठा है।

जैसा खुदा वैसे फरिश्ते वाली बात है। हम कब तक पैसे वालों के हाथों में खेलते रहेंगे?

बम्बई के अनेक नये-पुराने कलाकार हमारे साथ हैं। बहुत से टेकनीशियन भी हमारे साथ मिल गए हैं। हम सब एक नाव में आ बैठे हैं। युग की यही पुकार है, 'देर आयद दरुस्त आयद!'

यह तो सभी मानते हैं कि सिनेमा आज की दुनिया में सबसे महत्त्वपूर्ण मनोरंजन है। स्त्री-पुरुष, बच्चे, बूढ़े, जवान सभी फ़िल्म देखते हैं। फ़िल्मों के गीत आज के नये लोक-गीत बनते जा रहे हैं।

सिनेमा में संगीत, नाटक, 'कामेडी', नाच, सभी मसाले रहते हैं। ये चीज़ें एक जगह इतने सस्ते दामों हमारे देश की निर्धन जनता को भला और कहाँ नसीब होंगी? युवकों और युवतियों की प्रेम की भूख भी सिनेमा-हाल में बैठे-बैठे किसी हद तक तृप्त हो जाती है, इससे

भी आज कोई भला आदमी इन्कार नहीं कर सकता। वस्तु-स्थिति तो यही है, पर हम कब तक हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहेंगे ?

कला हमारी संस्कृति की माँ है। हम उन लोगों से सहमत हैं, जो यह कहते हैं कि हमारे देश में आज से बीस-बाईस वर्ष पहले अधिक अच्छी फ़िल्में बनती थीं और दूसरा महायुद्ध शुरू हो जाने से सिनेमा की प्रगति ठण्डी पड़ गई, इससे फ़िल्मों का स्तर गिरता चला गया और फ़िल्में बनाने वाले पैसा कमाने को ही अपना आदर्श बना बैठे।

'मछली-जाल' का निर्माण हमारे अपने ही पैसे और मिले-जुले परिश्रम से किया जायगा। इसके लिए हम किसी सेठ के आगे हाथ नहीं फैलायेंगे। हम स्वयं इस फ़िल्म के निर्माता, निर्देशक और कलाकार होंगे। इसका नफा-नुकसान हमारा ही होगा।

हम 'देवदास' के सहगल की याद ताजा करेंगे। 'सीता' में काम करने वाले पृथ्वीराज और दुर्गा खोटे के अभिनय का आदर्श अपनायेंगे। हम 'अमृत-मन्थन' के चन्द्रमोहन की मिसाल कायम करेंगे। हम फिर से 'बड़ी दीदी' के पहाड़ी सान्याल जैसा सफल अभिनय फ़िल्म के मंच पर ज़िन्दा कर दिखायेंगे। हम फिर से बरुआ जैसे अभिनेता लायेंगे।

हमारी फ़िल्म की कहानी इस युग की महान् कहानी होगी। पिटी हुई लकीर पर नहीं चलेगी हमारी कहानी। हम यह मानकर चलेंगे कि एक सफल फ़िल्म का निर्माण असम्भव है, जब तक एक महान् और सफल कहानी हमारे हाथ नहीं लगती। नीलू ने लिखी है बरसोवा के मछुओं की कहानी। मछुआ सच्चा सागर-पुत्र है। वह सागर के दिल और दिमाग की भाषा समझता है।

कहानी यों आरम्भ होती है कि एक बूढ़ा मछुआ, जिसकी पत्नी बहुत वर्ष पहले मर चुकी है, अपना पुराना जाल अपने बेटे को देकर कहता है, 'बेटा, मैं इतने वर्षों तक बाप बनने के साथ-साथ तुम्हारी माँ भी बना रहा। अब मेरे हाथों में मछली-जाल फेंकने की ताकत नहीं

रही। यह जाल सँभालो। तुम जानो, तुम्हारा काम। मेरा तो न जाने कब दम निकल जाय। आगे से तुम सागर को ही अपनी माँ समझना, उसे ही अपना बाप समझना। अब सागर ही तुम्हारा गुरु होगा।'

कहानी का अगला दृश्य है बम्बई का विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन। यहाँ एक चाय-स्टाल पर खड़ा चाय पी रहा है वह बूढ़ा मछुआ। वहीं एक युवक चाय पीने चला आता है। वह युवक बताता है कि वह पहली बार बम्बई आया है। वह पूछता है, 'मछली की बू कहाँ से आ रही है?' चाय-स्टाल वाला हँसकर कहता है, 'यह तो कोई मछुआ ही बता सकता है।' बूढ़ा मछुआ चुपचाप चाय पीता रहता है, अपना परिचय नहीं देता। चाय वाला हँसकर कहता है, 'बाबू, तुम्हारा क्या यह खयाल है कि मछली की बू चाय की प्याली से आ रही है? भाई साहब, यह बम्बई है। और मछली की बू भी बम्बई का उतना ही हिस्सा है, जितना यहाँ की फिल्म-एक्ट्रेसों का रूप-शृङ्गार और उनके मेक-अप का मोल-तोल। खैर छोड़िये। आप नये-नये बम्बई आये हैं, इसलिए खोलकर बताता हूँ। यह है विक्टोरिया टर्मिनस का मेन स्टेशन। और यहाँ से बहुत दूर नहीं स्टेशन का सबर्बन भाग, जहाँ सैकड़ों टोकरियों में भरी मछलियाँ उतारी गई हैं। जानते हैं यह मछलियाँ कहाँ से आती हैं? बरसोवा से आती हैं। बरसोवा ज़रूर जाना। वहाँ मछुए मिलेंगे। मछुओं की अपनी दुनिया है, जो हमारी बम्बई का ही एक हिस्सा है। पर नहीं, आप तो जुहू जायेंगे जहाँ सागर होगा, मछुए नहीं होंगे, मछलियों की बू नहीं होगी। क्यों, बाबू?' फिर वह बूढ़ा मछुआ बोल उठता है, 'बरसोवा चलना चाहो तो मेरे साथ चलो। मैं तो अब जाल नहीं डाल सकता। अपना जाल मैंने बेटे को सँभाल दिया। वह जाने, उसका काम!'

वह बाबू उस बूढ़े मछुए के साथ हो लेता है। वह बताता है, 'मैं कश्मीर से आ रहा हूँ। हमारे गाँव की भी एक कहानी है। पर वह कहानी तो बहुत लम्बी है। सच पूछो तो वह उस राजा की कहानी से भी लम्बी है जिसके बारे में हमारे गाँव में कहा जाता है कि वह साँप

बन गया था और उसे यह शाप दिया गया था कि जब तक वह पूरी महाभारत न सुन ले, वह साँप से दोबारा आदमी नहीं बन सकता।' बूढ़ा मछुआ हंसकर कहता है, 'तब तो हमें भी किसी का शाप ही लगा हुआ है कि हम मछुए ही बने रहेंगे, जब तक हम मछली खाना छोड़कर निरामिष नहीं बन जाते। अब तुम्हीं बताओ बाबू, कि बूढ़ा होने के कारण मैं जाल नहीं फेंक सकता, इसलिए मैंने अपना जाल अपने बेटे को सँभाल दिया। मैं मछली खाना कैसे छोड़ सकता हूँ? सागर में तूफान का सामना करने की ताकत नहीं रही। अपनी जान किसे प्यारी नहीं लगती? अपनी जान तो मछली को भी प्यारी लगती होगी। पर छोड़ो बाबू! मछली के लिए हम कहाँ से दर्द लायेंगे? मछली का दर्द समझने लगेंगे जिस दिन, उस दिन तो हमें मछुआगिरी छोड़नी पड़ जायगी। उस दिन तो समझो हम सारी महाभारत सुन चुकेंगे और साँप की जून से राजा फिर आदमी की जून में आ जायगा।'

ज्यों-ज्यों बूढ़ा मछुआ उस बाबू को बरसोवा के समीप ले जा रहा है, मछली की बू तेज होती जाती है। बूढ़ा मछुआ यह नहीं समझ सकता कि मछली की बू इतनी ही बुरी होती है।

हमारा विचार है कि मछली-जाल की कहानी सफल रहेगी। इस में सागर का गुस्सा भी दिखाया जायगा। मछुओं का जीवन तो रहेगा ही। पर मछुओं का जिन लोगों से वास्ता रहता है, उनके जीवन में कैसे बैलगाड़ी से मोटर आई और मोटर से रेलगाड़ी, रेलगाड़ी से हवाई-जहाज। कैसे वे लोग आज राकेट और एटमी राकेट की बातें करते हैं। कैसे ये लोग बातों-बातों में इस पर तान तोड़ते हैं कि आज जो आदमी जमाने के साथ नहीं चलेगा वह पीछे रह जायगा और दुनिया उससे सौ मील आगे निकल जायगी। पर बरसोवा के मछुए तो आज भी उसी जाल से मछलियाँ मारते हैं, जिसे उनके पुरखा उनके हाथों में थमा गए। इसमें युग-चेतना तो रहेगी ही। संगीत भी होगा और नृत्य भी। नृत्यों का निर्देश नीलू करेगी। संगीत आपका रहेगा। शीघ्र आ जाइए। हम

आपका इन्तज़ार कर रहे हैं।

हम अपने जी में ठान चुके हैं कि फ़िल्म इण्डस्ट्री को आगे ले चलें। आप दूध-गाछ की बात कहा करते थे। वह बात आज हमारी चेतना को छू चुकी है। आज हम कला की सृजन-शक्ति पर माँ की छाप लगाकर ही आगे बढ़ना चाहते हैं। हमारे कलाकार और टैकनीशियन भाई हमारे आदर्श को अपनी कला के साँचे में ढालकर फिल्म-जगत् के सामने एक नया स्तर स्थापित करने जा रहे हैं।

गीत लिखने के लिए राज राज अनुपम की सेवाएँ हमें मिल चुकी हैं। उन्होंने यह शर्त रखी है कि संगीत आपका ही रहे।

हम हैं आपके मित्र
गोबिन्दन, नीलू, इरा, जयन्त,
राज राज अनुपम, दामन, मनोज, मुक्तिबोध, पूनम"

बाईस

जया ने जागते ही 'ममी' के लिए रोना शुरू कर दिया। गेरुआ माटी वाले वरकला के साथ मानो उसका कोई नाता न जुड़ सकता हो। "डैडी, ममी कहाँ है ?" शंख कैसे बताता कि 'ममी' ने झूठा सच नहीं, सच्चा सच बोलकर दिखा दिया। कैसे बताता कि इरा बम्बई चली गई। कैसे बताता, इरा कठोर दिल रखती है। एक हाथ से जया के आँसू पोंछता, एक हाथ से अपने आँसू पोंछता वह सागर-तट पर बैठा रहा। सागर के जल की तरह ही आँसू भी खारी थे। आँसू का खारीपन नहीं बदल सकता था। सृष्टि का नियम ठहरा। आँसू को लेकर कहे गए अनेक कवि-वचन उसकी स्मृति में घूम गए। जया रो रही थी। उसका क्रन्दन सागर की लहरों के गर्जन में गुम नहीं हो पा रहा था। उसे याद आया। गुरुदेव कहा करते थे—'माँ ही नहीं, कलाकार भी दूध-गाछ है। अनुभूति के लिए चिरन्तन सत्य को भी प्रसव-वेदना तो सहनी ही पड़ती है। पुरानी सूक्ति है : हर समय, हर जगह उपस्थित नहीं रह सकते थे भगवान्, इसीलिए उन्होंने माताएँ बनाईं। माँ ही महान् है। शिशु हो चाहे कला-कृति, दोनों को ही प्यार-दुलार चाहिए। कलाकार को माँ बनना ही पड़ता है—" इसी गुरुवाणी की प्रेरणा से वरकला को शंखधरन मिला, पंचानन मिला। पंचानन इस परम्परा को आगे चलायेगा, इसका उसे विश्वास था।

जया रो रही थी। उसे कैसे चुप कराये, शंखधरन को यही समस्या

थी। "ममी कहाँ हैं ?" वह तो यही रट लगाये जा रही थी।

• जया को लेकर वह काजू-वन में घूमता रहा। उसे मुड़-मुड़कर गुरुदेव के शब्द याद आते रहे—'वरकला का एक-न-एक बालक सागर-तट पर रेत के घरौंदे बनाते समय सागर-संगीत की कुछ-न-कुछ थाह पाता आया है और बड़ा होकर संगीत-मार्ग पर चल पड़ा है—' जया का जन्म तो बम्बई में हुआ, उसने सोचा, जया तो वरकला की नहीं हो सकती। उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया, "प्रणाम, अन्नपूर्णा ! प्रणाम, स्नेहमयी ! प्रणाम, स्वर्ण-मेखला ! प्रणाम, वरकला की गेरुआ धरती !"

गगन चौक के समीपवर्ती एक रेस्तराँ में शंख ने जया को चाय पिलाई। वह उसे मिठाई खिलाकर 'ममी' की सुधि विसारने की प्रेरणा देता रहा। वह उससे पूछता रहा कि अब तक उसने क्या पढ़ा है। वह उससे उसकी दादी अम्मा की बातें पूछता रहा। पर उसकी तो एक ही रट थी, "डैडी, ममी कहाँ चली गई ?"

"दोपहर ढली, साँझ हुई, और वह जया को लेकर स्टेशन पर चला आया।

जया के आँसू थम गए थे। उसका चेहरा उतर गया। वह बार-बार पूछ रही थी, "डैडी, बम्बई की गाड़ी कब आयेगी ?"

"अब देर नहीं, बेटी !" वह ढाढस बँधाता, "हम बम्बई पहुँचकर ममी से मिलेंगे। अच्छी बेटी, रानी बेटी, अच्छे बच्चे रोते नहीं हैं।"

उसे नीलू की बात याद आई—"एक बम्बई के भीतर कई बम्बइयाँ बसी हुई हैं। उनमें एक बम्बई फिल्मोंवाली भी है, वह है मीना बाजार। सारी बम्बई तो मीना-बाजार नहीं है। और सच तो यह है कि मीना-बाजार के भीतर भी मीना-बाजार ही मीना-बाजार नहीं है।"

उसे लगा, ये दस वर्ष बड़ी साधना के वर्ष रहे। गेरुआ माटी वाले वरकला का यह सागर-पुत्र अब एक नये आदमी के रूप में बम्बई जायगा, परिस्थितियों से होड़ लेगा। वरकला में गुरुदेव की परम्परा

को आगे चलायेगा पंचानन। मुझे भी कर्मभूमि पर उतरना है। जया का भविष्य मेरे साथ बँधा है; इरा के साथ बँधा है मेरा भविष्य। ईरा हमें पाकर प्रसन्न होगी। बोलेगी, भोर के भूले साँझ को घर लौटे। मेरा घर वहीं है, जहाँ इरा है, जहाँ मेरी जया की 'ममी' है। मैं तो जया का 'डैडी' ही बना रहा, 'ममी' तो न बन सका।

"डैडी, गाड़ी कब आयेगी ?" जया ने उसका हाथ खींच लिया, "बम्बई में ट्राम चलती है, डैडी ! बम्बई में अच्छा-अच्छा गाना होता है।"

वह बिना बताये ही चला आया था। 'को जागरी' की चाँदनी रात उसके लिए वरदायिनी नहीं बन सकी थी। उसकी इरा उसे छोड़कर चली गई थी, मानो वह स्वयं लक्ष्मी की तरह केवल यही पूछने आई हो—'को जागरी ?' [कौन जाग रहा है ?] पर उसके लिए तो ये दस वर्ष भी 'को जागरी' की रात की तरह बीते थे।

जैसे वह एक बहाना चाहता था। इरा आकर वह बहाना दे गई। वरकला में उसका जीवन शेष हो गया था। वह किसी का गुरुदेव नहीं बनना चाहता था। गुरुदेव की छाया के पीछे चलने में कोई रस नहीं रह गया था।

उसने कोई सामान नहीं उठाया था। जया ने फिर पूछा, "डैडी, गाड़ी कब आयेगी ?"

"अब गाड़ी में देर नहीं, बेटी !"

काम-काजी चहल-पहल तो वरकला में भी कम न थी। निर्जन और उजाड़ जगहों पर नये मकान बन गए। आत्मा की भूख से भी पहले है पेट की भूख। ऋतु-मंगल और त्यौहार-उत्सव की बात तो कारोबार की पूर्ति के रूप में ही आती है। पहले पेट में कुछ पड़े, फिर संगीत भी अच्छा लगता है। जया को बाँहों पर उछालकर वह बोला, "मैं भी तुम्हारी 'ममी' हूँ, बेटी !"

"तुम तो डैडी हो, तुम ममी नहीं हो।" जया हँस पड़ी।

साँझ ढल रही थी। हवा वस्त्र उड़ा रही थी। नारियल-गाछ डोल रहे थे। वरकला की गेरुआ माटी उड़ रही थी।

"प्रणाम, लाल माटी वाले वरकला!" शंखधरन ने आत्मविभोर होकर कहा, "मैं बम्बई जा रहा हूँ।"

जया प्रसन्न थी। सवेरे की तरह भयभीत नहीं थी।

"डैडी, ममी कन्याकुमारी गई है। हम भी वहाँ जायेंगे। कन्या-कुमारी बहुत अच्छी है, डैडी!"

"नहीं, जया! वह बम्बई गई है। वरकला उसे अच्छा नहीं लगा। अब हम कभी वरकला नहीं आयेंगे।"

"तुम पहले बम्बई क्यों नहीं आये थे, डैडी?"

उसके हाथ में बम्बई के टिकट थे। तेज हवा इन टिकटों को छू-छू जाती थी।

"हमारे घर में तुम्हारी फोटो भी रखी है डैडी, और नर्मी के डैडी की फोटो भी!"

बच्चे की कल्पना सजग थी। बच्चे का दिमाग वरकला की गेरुआ माटी पर नहीं, बम्बई के उस घर पर था, जहाँ दो फोटो रखे थे।

जया की मुस्कान दुनिया-भर के बच्चों से नाता जोड़ रही थी। "ममी से हम रूठ जायेंगे, डैडी! हम ममी को पिक्चर नहीं दिखावेंगे, हम तुम्हें बम्बई से नहीं आने देंगे।"

हवा अब अधिक जोर से चल रही थी। सागर की ओर से आ रही थी। इसमें नमक का स्वाद था।

"हम बम्बई से कभी यहाँ नहीं आयेंगे, डैडी!"

"मुत्तु बाबा तुम्हें पसन्द नहीं?"

"नहीं, डैडी!"

"वह तुम्हें मछलियाँ दिखायेंगे।"

"मछलियाँ हम बरसोवा में देख लेंगे, डैडी! सूखती मछलियों की बदबू तो अच्छी नहीं होती।" वह हँस पड़ी, जैसे उसके मुँह से इरा

बोल रही हो।

"तुम बड़ी शरारती हो, जया!"

"हमारी 'ममी' भी शरारती है।"

जया प्लेटफार्म पर लट्टू की तरह घूम रही थी। तेज हवा जैसे उसी के साथ खेलने आई हो।

"दस वर्ष तक मैं जया के प्यार से वंचित रहा!" वह मन-ही-मन पछता रहा था। "मुझसे बड़ा मूर्ख दूसरा न होगा!"

सिगनल हो चुका था। उसी समय कुछ जाने-पहचाने चेहरे नजर आये। देशमुख, नम्पूतिरिप्पाड और मुत्तु बाबा बाँहें उठा-उठाकर उसे रुक जाने का आदेश दे रहे थे। पंचानन ने पास आकर पूछा, "आप जा रहे हैं, गुरुदेव? फिर कब आओगे?"

"फिर नहीं आयेंगे।" जया बोल उठी।

"तो हमें भी क्यों नहीं बम्बई ले चलते?" पंचानन आँसू पोंछ रहा था।

शंखधरन के अन्तर की करुणा पिघल रही थी। मुत्तु बाबा की आँखों में भी आँसू आ गए। उसने चिल्लाकर कहा, "जल्दी लौटना, शंख बेटा!"

शंखधरन कुछ न बोला। उसने हाथ जोड़ दिए। उसके अन्तर में 'को जागरी' का वादक थाप लगा रहा था।

जया प्रसन्न होकर ताली बजा रही थी।

शंख अटपटे-से स्वर में जुहू की चाँदनी का गीत गाने लगा:

जुहू की चाँदनी मछुए का जाल रे
मछुए की रागिनी उदासिनी।
बच के चलो, मछलियो!
मिल के चलो, मछलियो!

मिल के फंसो, मछलियो !
मछुए की रागिनी उदासिनी।

गीत की गली में आज किसका भाग्य खो गया ?
लाज-लजी दुलहन का स्नेह-दीप सो गया !
जुहू की लहरों की थाप अभिलाषिनी
मछुए की रागिनी उदासिनी।

गीत की गली में आज आई नृत्य-बेला :
गीत का है अन्त कहाँ ?
नृत्य का है अन्त कहाँ ?
मछुए की रागिनी का अन्त कहाँ ?
मछुए की रागिनी उदासिनी।

मछुए के जाल में भूख की कहानियां
मछुआ भी मछली, मछली भी मछुआ !
कौन कहे, कौन सुने, कौन रोये, कौन हँसे ?
मछुए की रागिनी उदासिनी।

मछुए के पुत्र हुआ सिर पै धरे जाल रे !
रो रही मछलियाँ हाल-बेहाल रे—
मछुए की रागिनी उदासिनी।

मछुआ हो चाहे अभिनेता चलचित्र का
चाहे बनजारा संगीत गीत चित्र का
अभिनय है, अभिनय है !
दर्द-वेदना की बात, चाँद-चांदनी की रात
मछुए की रागिनी उदासिनी।

देशमुख और नम्पूतिरिप्पाड मन्त्रमुग्ध-से खड़े थे । जया चाहती थी कि जुहू की चाँदनी वाला गीत बराबर चलता रहे ।

देशमुख बोला, "मछुआ भी मछली, मछली भी मछुआ ! यह तो बहुत अच्छा भाव है ।"

गाड़ी आई, तो शंख जया को लेकर एक डिब्बे में जा बैठा ।

जया प्रसन्न थी ।

शंख की आँखें भीग गईं । वह कुछ न बोला ।

गाड़ी ने विसल दी और चल पड़ी । शंख ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया । उसका प्रणाम पीछे छूट गया । गाड़ी बढ़ चली । गाड़ी के पहियों की आवाज भी मानो 'को जागरी' की थाप लगा रही थी ।

शंख वह चिट्ठी निकालकर पढ़ने लगा, जो इरा छोड़ गई थी । उसने मन-ही-मन कहा, 'इरा, आखिर तुमने मुझे हरा ही दिया ! तुम आदि-शक्ति हो, इरा ! तुम दूध-गाछ हो !' यही सोचकर उसने जया को अपनी छाती से लगा लिया ।